ऋण-परिशोध

गाँधी हिन्दी-पुस्तक भण्डार

हिन्दी-गौरव-ग्रन्थ-माला २७ वाँ ग्रन्थ ।

ऋण-परिशोध ।

(सामाजिक उपन्यास)

मूल लेखकः-

काली प्रसन्नदास गुप्त.

अनुवादकः-

पंडित रामेश्वरप्रसाद पाण्ड्ये.

प्रकाशक,

गाँधी-हिन्दी-पुस्तक-भण्डार,

२९७, कालबादेवी-बम्बई.

प्रथम संस्करण—

मूल्य १।।।)

सजील्द २।)

माघ १९८१. सन १९२५.

ऋण-परिशोध ।

प्रथम खण्ड ।

पहला परिच्छेद ।

यमुना ।

सार्वभौम ठाकुर पूजा कर रहे हैं; बगलमें यमुना बैठी है। यमुना अभी ही स्नान करके आई है। वह गुलाबी रगकी साड़ी पहने हुए है। उसके बाल खुले हैं, ललाट पर रक्तचन्दन लगा है। उसके भक्तिभरे, उज्ज्वल, प्रफुल्ल मुखकी कान्तिसे एक अपूर्व दिव्य ज्योति फूट कर निकल रही है। यमुना मानों यमुना नहीं है, कोई देवबाला सार्वभौम ठाकुरकी भक्तिसे आकृष्ट होकर उनकी पूजाके आसनके बगलमें आ बैठी है। पूजाका नियमित अनुष्ठान समाप्त कर सार्वभौम ठाकुर आँखें मूँद कर ध्यान करने लगे। यमुनाने गाया—

नगेश-वंश-वर्द्धिनी, महेश-अंक-शोभिनी,
गणेश-अंक-धारिणी, करो सहाय अम्बिके।
मृगेन्द्र-पीठ-वाहिनी, सुरेन्द्र–कार्यकारिणी,
नरेन्द्र-सिद्धिदायिनी, करो सहाय अंबिके।
प्रचण्ड खड्ग धारिणी, प्रचण्ड शंखवादिनी,
प्रचण्ड शूल-शोभिनी, करो सहाय अंबिके।
निशुंस चंडनाशिनी, सुरारि–मुण्डमर्दिनी,
निशुंभ-शुंभ-घातिनी, करो सहाय अंबिके।
असह्य संकटाद्रिका, सखेल भारहारिणी,
अहो प्रसन्न आज हो, करो सहाय अंबिके।

सितभ्र रेख-रागमें, स्वदेश-चातकारि जो,
पगे उन्हें सुमुक्ति दे, करो सहाय अंबिके।
अकाल-मेघ जोरसे, निजास्त्र छोड़ मारते,
सहायहीन जीव हो, करो सहाय अंबिके।
न आँख है न कान है, न शब्द है न वाणि है,
न हाथ है न पाँव है, करो सहाय अंबिके।
न शौर्य है न वीर्य है, न पूर्ण आर्य-तेज है,
न वृद्धि है न दक्षता, करो सहाय अंबिके।
चलो मृगेन्द्र-पीठ पै,-चढ़ो तुरन्त अम्बिके
स्वकीय शक्ति दान दे, करो सहाय अम्बिके। *

पूजाके कमरेमें, आँगनमें, पुष्पोद्यानमें, आकाशमें मधुर गीतकी मधुर झंकार, मधुर तान भर गई। नौकरोंने हाथका काम छोड़ कर मुग्ध कर्णोंसे गाना सुना। कमरेके कोनेमें बैठी बिल्लीने गाना सुन कर आँखें बन्द कर लीं। दरवाजे पर कुत्ता आकर मुँह ऊपर उठाये खड़ा हो गया। पुष्पित वृक्ष-शाखाओं पर बैठी हुई चिड़ियाँ अपना कलरव बन्द कर चुप हो रहीं।

मुग्ध, आत्म-विस्मृत सार्वभौम गहरे ध्यानमें निमग्न हो निश्चल, निष्पन्द, निस्तब्ध अवस्थामें आसन पर बैठे रहे। भक्तिके उच्छ्वाससे पूर्ण मुग्ध नेत्रोंसे यमुना उनके भक्ति-उच्छ्वसित मुखकी ओर ताकती रही। भक्तिके उच्छ्वाससे भक्तिका उच्छ्वास मिला। पूजाके छोटेसे कमरेमें अपनी लहरें लहरा भक्तिकी गंगा बह निकली। उसी भक्तिकी गंगामें गोते लगा कर, भक्ति-गंगाजलपानमें निमग्न सार्वभौम ठाकुरने गद्‌गद् कंठसे देवीके स्तोत्रकी आवृत्ति कर प्रणाम किया। यमुनाने भी उनके साथ प्रणाम किया। आँसू भरे नेत्रोंसे सार्वभौम यमुनाकी ओर देख कर मुस्कुराये। जगत्-दुर्लभ इस हँसी और आँसुओंके संयोगसे मुग्ध हो मानों स्वर्गके देवताने आ, हँस कर उस छोटेसे कमरेको देवात्ममय देवपुरी बना दिया।

यमुनाने कहा—"दादा, फिर ध्यान करो, फिर स्तव पढ़ो।"

---

* मेरे मित्र भिकाजी बिलोरे बी० ए० ने कृपा कर इस पुस्तकमें प्रकाशित करने लिए इस कविताकी रचना की है।

सार्वभौमने कहा—" तू भी फिर गा,—फिर तेरे मुँहसे भगवतीका नाम सुनूँ, नहीं तो ध्यान न लगेगा। यमुना, तूने ही मुझे ध्यान करना सिखाया है। पहले जब ध्यान करता था तब मन निमग्न न होता था; ऊपर ही उतराता था। अब तेरे भक्तिभरे मीठे गलेसे भगवतीका नाम सुनते ही मेरा मन आप ही भगवतीके ध्यानमें निमग्न हो जाता है। समग्र मन और प्राण इस तरह एक बारगी ही भगवतीमय हो जाता है कि मैं अपने आपको पहचान नहीं सकता; अपनेमेंसे अपनेको पृथक् नहीं कर सकता। मेरा समस्त अहमत्व मानों अहमत्वकी सीमाको लाँघ कर भगवतीमें जा मिलना चाहता है। आहा, यमुना, अब समझा हूँ कि यमुनाके तीर, कदम्बके नीचे, उस वंशीवाले ठाकुरकी वंशीकी ध्वनिसे व्रजवासी क्यों उन्मत्त हो जाते थे!"

यमुनाने फिर गाया,—

नचत यमुना-निकट नँदनन्द।
बेनु बजावत जिय तरसावत करत अनेकन फन्द,
गावत स्वर प्रत तालन लै गति घूँघर बाजत मन्द,
मृदु मुसक्यान भृकुटि करि बाँकी मुख-छवि आँनद-कन्द,
नचत यमुना-निकट नँदनन्द।
मधुर मनोरम मुदमय मूरति मोहन मोहक चन्द,
जके छके से ठाढ़े निरखत गोप–गोपिका-वृन्द,
पीते कान-मलिन्द कान्हकी मुरलीको मकरन्द,
नचत यमुना-निकट नँदनन्द,

गाना सुनते सुनते सार्वभौम ठाकुर ध्यानस्थ हो गये। फिर उसी तरह उन्होंने भक्ति-गद्गद कंठसे स्तव पढ़ा; प्रणाम किया। यमुनाने भी प्रणाम किया, प्रणाम कर निर्माल्य माँगा। सार्वभौम ठाकुरने यमुनाको निर्माल्य दे कर आशीर्वाद दिया।

इसी समय एक विधवाने आकर पुकारा—" पूजा हो गई, बाबा?"

विधवाकी अवस्था ३०।३२ वर्षकी होगी। उसके दुबले शरीर पर, मलिन मुख पर, अतीतका अतुलनीय सौन्दर्य चिह्न अब भी वर्तमान है। चेहरे पर गहरे विषादकी छाया होने पर भी उसमेंसे शान्ति और तृप्तिकी मीठी झलक झलकती हैं। अनेक दुःखोंके बाद मानों उसने किसी शान्ति-छायामें, निराश-व्यर्थ जीवनमें, चरम सान्त्वना प्राप्त

की है। उसी सान्त्वनाकी शान्ति, उसी सान्त्वनाकी तृप्ति उसके जीवनमें व्याप्त हो गई है। अतीतकी दुःखमय स्मृति मानों उसको कभी व्यथित नहीं कर सकती।

यह अनाथा, अज्ञात-कुलशीला विधवा ब्राह्मण-पुत्री सार्वभौम ठाकुरके आश्रयमें पड़ी है। सार्वभौम ठाकुर पुत्रीकी तरह उसका प्रतिपालन करते हैं। सार्वभौम इसे गंगा कह कर पुकारते हैं। यमुना इसीकी कन्या है।

गंगाने कहा—" पूजा हो गई, बाबा ? "

सार्वभौमने कहा-" हाँ बेटी, पूजा हो चुके बहुत देर हुई। यमुना बेटी मेरी पूजाको रोज रोज बढ़ाती जाती है, देखता हूँ पीछे रात-दिन पूजाके आसन पर ही बैठा न रहना पड़े। "

गंगाने मुस्कुरा कर कहा—" यमुना बिलकुल पगली है। और बाबा, आप भी उसके साथ पागल हो गये हैं। "

सार्वभौमने कहा—" यही प्रार्थना करो बेटी, जिससे यमुना पगली बनी रहे और मुझे भी पागल बना दे। "

इसके बाद गंगाने यमुनाकी ओर देख कर कहा—हाँ यमुना, दिन बहुत चढ़ गया। पूजाके सब बर्तन माँज कर धोला। फिर हम सब स्नान कर खाने-पीनेका प्रबन्ध करेंगी।

यमुना पूजाके बर्तन एकत्र कर घाटको चली गई।

सार्वभौम ठाकुरने कहा—"बेटी, यमुनाके विवाहकी बड़ी चिन्ता है। श्रीनाथ मनुष्य न हुआ। मेरा तो अन्तकाल है, और कितने दिन हूँ। यमुनाको किसी सत्पात्रको दे देता तो निश्चिन्त हो कर मर सकता था। तारा ब्रह्ममयी, तुम जैसा चाहो करो। "

गहरी लम्बी साँस छोड़ कर गंगाने कहा—" बाबा, जो भाग्यमें लिखा होगा वही होगा। आप इसके लिए कुछ चिन्ता न करें। "

" चिन्ता क्या शौकसे करता हूँ। चारों ओर दृष्टि दौड़ानेसे भय होता है। घोर कलिकाल है। जिधर देखता हूँ, उधर ही अधर्मका ही जय-जयकार है। यमुना अब युवती है, परम रूपवती है, तुम अनाथ विधवा हो, तुम्हारा कुल-शील किसीको मालूम नहीं। मेरे आँख बन्द करते ही तुम कैसी विपदमें फँसोगी, कह नहीं सकता। मैं जब यमुनाका ब्याह करनेकी चेष्टामें कृतकार्य नहीं हो रहा हूँ, तब तुम यमुनाको किस सत्पात्रको दे सकोगी ? यदि ब्याह न कर सकी तो

गाँवमें कितने ही बदमाश हैं—श्रीनाथ मनुष्य नहीं है—नहीं, बेटी, उस बातका खयाल आने पर भी मेरे शरीरके रोयें खड़े हो जाते हैं ! आहा ! यमुना मेरी साक्षात् गौरी है ! तारा ब्रह्ममयी, तुम जैसा चाहो करो । ”

गंगाने धीर स्वरसे उत्तर दिया—बाबा, इतनी चिन्ता कर आप क्यों कष्ट पाते हैं ? अनाथकी सहायिका भगवती हैं । यदि विपदमें पड़ूँगी तो उनको पुकारूँगी, वे ही सहायक होंगी, वे ही किनारे लगायेंगी । ”

सार्वभौमने कहा—“ अवश्य लगायेंगी । यदि न लगायेंगी तो जानना बेटी, धर्म मिथ्या है, पुण्य मिथ्या है, भगवती भी मिथ्या हैं । ”

गंगाने कहा—“ कुछ भी मिथ्या नहीं है बाबा । यह सच है कि चारों ओर अधर्मका जय-जयकार है । किन्तु इस जय-जयकारके ऊपर धर्मका जय-जयकार एक दिन होगा ही । घोर कलिके बाद सत्ययुग फिर आवेगा ही । ”

विस्मित और पुलकित नेत्रोंसे गंगाके चेहरेकी ओर देख कर सार्वभौमने कहा—“ बेटी, तुम्हारे इस अटल सरल भक्ति-विश्वासके आगे हम लोगोंका पाण्डित्य और शास्त्रज्ञान सब हार मान जाता है । यमुनाने मुझे ध्यान करना सिखाया है, तुम अपने इस सरल भक्ति-विश्वासकी मुझे शिक्षा दो । जानता नहीं बेटी, तुम मेरे आश्रयमें हो, या तुमने मुझे अपने आश्रयमें रक्खा है । प्रायः यह खयाल मनमें दौड़ने लगता है कि तुम लोग कोई देवी हो, मुझे छलने आई हो । ”

गंगाने अत्यंत सकुचा कर कहा—“ छिः बाबा, ऐसी बात कहते हैं ? ऐसी बात सुननेमें भी पाप है । आहा ! पूजा करके आप बहुत देरसे बैठे हैं । जलपानके लिए जगह करके बुलाने आई थी, यह भूल ही गई । पित्त बढ़नेसे आप बीमार हो जायँगे । चलिए बाबा । ”

सार्वभौम ठाकुर उठे और गंगाके साथ साथ आहार-स्थान पर गये ।

पाण्डित्य, महाप्राणता और चरित्र-गौरवमें पीताम्बर सार्वभौम ठाकुर ऋषितुल्य पुरुष हैं । संकीर्ण-हृदय और अर्थ-लोलुप एक ब्राह्मण पण्डित-सम्प्रदायके सिवा कालिकापुर गाँवकी आबाल-वृद्ध-वनिता सभी उन पर देवताकी तरह भक्ति-श्रद्धा रखते हैं । बाहर भी लोग भक्ति-पूर्वक उनका नामोच्चारण करते हैं ।

ब्रह्मोत्तर भूमिसे उनके परिवारका निर्वाह होता है । पण्डित होनेके कारण जो दान मिलता है, उससे वे अपने गृहस्थित पाठशालाके छात्रोंका पालन करते हैं । उस

दानका एक पैसा भी, नौकरोंके अतिरिक्त, सुख-सच्छन्दताके लिए वे खर्च नहीं करते। कारण वे इसे दानका अपव्यवहार समझते हैं। बूढ़े और रोगी होनेके कारण वे अब अध्यापनका कार्य नहीं कर सकते, इस लिए उन्होंने पाठशाला उठा दी है। पाठशाला उठा देनेके कारण साधारणतः अब वे दान नहीं लेते। किन्तु किसीके बहुत दुःखित होने पर कुछ ले लेते हैं, परन्तु उस दानसे वे पाठशालाओंकी सहायता या दुःखियोंका दुःख-मोचन करते हैं।

सार्वभौम ठाकुरकी पत्नी अब इस लोकमें नहीं है। गंगा, यमुना, पुत्र श्रीनाथ, पुत्र-वधू, दो दरिद्र शिष्य, जमींदारी और घरका काम करनेके लिए दो तीन नौकर, ये ही उनके वर्तमान छोटे परिवारके लोग हैं। ये दोनों छात्र उनसे विद्याध्ययन करते हैं, जरूरत पड़ने पर काम-काज भी कर देते हैं और वे यदि कहीं जाते हैं तो उनके साथ रहते हैं।

पारिवारिक जीवनमें सार्वभौमके विशेष कष्टका कारण यही है कि उनका पुत्र श्रीनाथ मनुष्य न हुआ। ऐसे पिताका पुत्र होने पर भी, शास्त्रालोचना या सत्कर्मकी ओर श्रीनाथकी प्रवृत्ति या आसक्ति नहीं है। लड़कपनसे ही कुसंग और कुक्रियाओंकी ओर ही उसका, उसके मनका स्वाभाविक आकर्षण था। अब वयस्क होने पर गाँवके चंडूखानेमें ही उसका प्रायः सब समय बीतता है। नशाखोर होने पर भी, श्रीनाथ कुछ निरीह प्रकृतिका मनुष्य है। घरमें, महल्लेमें या गाँवमें कभी कोई उत्पात नहीं करता। पितासे भी डरता है। भोजनके वक्त चोरकी तरह घरमें आकर खा जाता है। रातमें कभी घर आता है, कभी चण्डूखानेमें ही रह जाता है। सुधारनेकी सब चेष्टायें व्यर्थ होने पर सार्वभौमने अब उसकी खोज-खबर लेना बिलकुल छोड़ दिया है। घरमें कभी आने या रहने पर वे उसे निकाल बाहर नहीं करते, न आने पर खोज भी नहीं करते हैं। जमीन, घर-द्वार और अन्यान्य जो कुछ सम्मति थी वह सब उन्होंने पुत्र-वधू और गंगाके नाम वसीयत कर रक्खी है। गंगा और पुत्र-वधूके रहते श्रीनाथ कभी भूखों न मरेगा। किन्तु श्रीनाथके हाथ सम्पत्ति पड़नेसे उसको और अन्यान्य सब लोगोंको दरिद्र हो कर गली गली भटकना पड़ेगा।

दूसरा परिच्छेद ।

जया ।

" यह जया जीजी आई,—पपीते लाई हो ? पपीते अच्छे तो हैं ? "

" अभी ही बाबा जलपान करने बैठे हैं; गंगा, उनके लिए एक पपीता तो काट दे।"

एक प्रौढ़वयस्का सधवा स्त्री कई अच्छे, बड़े बड़े, पके हुए पपीते लाई थी, उसीको गंगाने जया जीजी कह कर सम्बोधन किया है।

सार्वभौम ठाकुरने पपीते देख कर कहा—" वाह ! बड़े अच्छे हैं ! इन्हें कहाँ पाया बेटी ?"

जयाने कहा—" घरमें इनके पेड़ हैं। आपको ये पपीते पसन्द हैं। कई दिनसे लानेके लिए सोच रही थी। महल्लेके लड़के-बच्चे आते हैं और तोड़ते-खाते हैं, रखवाली नहीं कर सकती। और रखवाली करूँ भी किसके लिए ? माणिक घरमें रहता नहीं; लड़के-बच्चोंके खानेकी चीज हैं, वे खावें। फिर भी आपके लिए उनको कह-सुन कर इन्हें बचा रक्खा था। आपका नाम लेते ही किसीने इन पर हाथ नहीं लगाया।"

गंगाने कहा—" जया जीजीकी छोटी बाड़ीमें फल-फूल और तरकारी बहुत होती है। इनको तो मेहनत-मजूरी ही बदी है। खाते तो सब दूसरे ही हैं।"

जयाने कहा—" क्या करूँ बहन ? खाली बैठे बैठे क्या दिन कटते हैं। अब माणिक दो पैसे कमा कर लाता है, पेटके लिए अब घर घर काम करने नहीं जाना पड़ता। और माणिक यह करने भी नहीं देता। जो कुछ जमीन है, उसमें फल-फूल, तरकारी ही पैदा करती हूँ। मैं अकेली कितना खाऊँ ? माणिक तो सात दिनमें एक दिनके लिए घर आता है और कभी आता भी नहीं है। लड़के-बच्चे आनन्दसे खाते हैं, ले जाते हैं, यही तो सुख है। जो बचता है और अधिक होता है तो बेच देती हूँ। माणिक अब दो पैसे लाता है, बेचनेकी अब वैसी गरज भी नहीं है।"

सार्वभौमने कहा—"यह अच्छा करती हो बेटी। मेहनत करके यदि पाँच जनोंको खिलाया जा सके तो वह मेहनत सार्थक है।"

जयाने कहा—" आहा, आशीर्वाद दीजिए बाबा, माणिक दो पैसे लाये, पाँच जनोंको खिला-पिला और खा-पी कर सुखसे गृहस्थी करे । मेरा जन्म बड़े दुःखका है, देख कर जरा सार्थक होऊँ।"

गंगा पपीता काट-काट कर सार्वभौम ठाकुरकी थालीमें रखती जाती थी। यह सुन कर गंगाने गंभीर श्वास छोड़ कर कहा—" आहा, दुर्गा करें, यही हो जया जीजी। माणिक दस जनोंमें अग्रगण्य हो, सुख-सम्मानसे रहे। तुमने बहुत दुःख पाया है, अन्तमें जरा सुखी होओ।"

जयाने उत्तर दिया—" आहा, दुखीके सिवा दुखीका दुःख और कोई नहीं समझता। तुम्हारी जिन्दगी भी तो मेरी ही तरह दुःख-पूर्ण है। मैं भी आशीर्वाद देती हूँ, यमुना तेरी अच्छे घर जाय, जिससे उसके सुखसे तू अपना दुःख भूल सके।"

सार्वभौमने हँस कर कहा—" तुम्हारे परस्परके इन आशीर्वादोंको मा जगम्दबा सुनें। मैं सुन कर बड़ा ही सुखी हुआ। चाहे कितना ही दुःख मिला हो, तुम दोनोंकी गोदमें एक एक रत्न है। ऐसे रत्न जगदम्बाने जिन्हें दिये हैं, उन्हें वे सुखी करेंगी ही।"

सार्वभौम ठाकुर जलपान कर बाहर गये। जया घर लौटी।

दीवारोंसे घिरे, खूब सुन्दर एक पक्के मकानके पीछे, तलाबके किनारे जयाका घर है। घरमें रहनेके लिए दो कमरे हैं, एक रसोई-घर है और एक गोशाला है। रसोई-घरके बगलमें चावलकी एक ढेंकी है। घर सब साफ-सुथरा है। जया घरको रोज झाड़—बुहार कर और गोबरसे लीप कर साफ-सुथरा रखती है। रसोई-घर और ढेंकी-घरकी खपरैलों पर कितने ही कुम्हड़े लदे हैं। आँगनमें एक ओर जवा-फूलके दो पेड़ हैं, दूसरी ओर सेफालिकाका एक पेड़ है। इनके अतिरिक्त स्थान स्थान पर मालती, मल्लिका आदि छोटे छोटे फूलोंके भी कुछ पेड़ हैं। घरके पीछे दोनों ओर नारियल, सुपारी, आम, कटहल आदिके कुछ पेड़ हैं। बाहरकी ओरके कमरेके सामने, तलाबके किनारे साग—भाजीकी एक बाड़ी है और उसके दोनों ओर केले और पपीतेके कुछ पेड़ हैं। घर यद्यपि छोटा है, फिर भी सफाईके साथ जो आवश्यक साग—भाजी, फलफूल आदि पैदा किये जा सकते हैं, जयाने उसमें सब लगाये हैं। जयाने घरमें आकर पुकारा—"ताराकी मा! ओ ताराकी मा!"

ताराकी मा उसकी पड़ोसिनी है, बूढ़ी है, ग्वालेकी लड़की है । कालू नामके एक बारह वर्षके पोतेके सिवा उसके और कोई नहीं है । कालू जयाकी गौएँ चराता है, रातमें बुढ़िया पोतेको लेकर जयाके घरमें सोती है । जया उन दोनोंको खाने देती है । जयाके दो गाय हैं, ताराकी माके आ जाने पर जयाने उसकी मददसे दोनों गायोंका दूध दुहा । दोनों गायोंका दूध ६।७ सेर होता था । जिनके बच्चोंको दूध न मिलता था, जिनके घरमें रोगी होते थे और दूध खरीदनेको पैसा न होता था, ऐसे दो-एक गरीब गृहस्थोंके घर जया कुछ दूध भेज देती थी । ताराकी मा और कालूको भी वह थोड़ासा दूध खानेको देती थी । बाकी दूधसे घी-मक्खन तैयार करती थी । माणिक जिलेके कस्बेमें नौकर था । वहाँ खाने-पीनेकी चीजोंका कष्ट था । जब वह घर आता था, तब घरसे घी-मक्खन ले जाता था । जो बच जाता उसे बेच कर जया गौओंका खर्च चलाती थी ।

जयाने दूध दुह लिया था, इसी समय महल्लेके कुछ लड़के जो नहाने जा रहे थे, उसके घर आये । दूध देख कर लड़कोंने कहा—" जया मासी, यह बरतन भरा दूध रक्खे हो, थोड़ा पिलाओगी नहीं ? "

जयाने मुस्कुरा कर कहा—" दूध पीओगे ? आओ लो । "

लड़के जयाको घेर कर खड़े हो गये । जयाने मुस्कुराते हुए, सब लड़कोंको कटोरेमें दूध देदे कर पिलाया । ताराकी मा मन ही मन बहुत नाराज़ हुई । बिलकुल पागल है ! प्रायः सब दूध लड़कोंको ही पिला दिया । जो बचा है वह भी बँट जायगा । जान पड़ता है आज उसके और उसके कालूके भाग्यमें दूध नहीं बदा है । वे गरीब हैं, दूध न भी मिले तो कुछ रंज नहीं । पर उन्हें जो अभ्यास हो गया है, इससे कष्ट होता है । और जयाने ही दूध खिला खिला कर बड़े आदमियोंके जैसा उनका अभ्यास बना दिया है । नहीं तो ग्वाली होने पर भी उसके गाय-भैंस नहीं हैं, दूध तो उन्होंने कभी आँखोंसे भी नहीं देखा । जो हो मन ही मन नाराज होने पर भी ताराकी माने मुँहसे कुछ बोलनेका साहस न किया । फिर ताराकी मा ऐसी अनुदार भी न थी, किन्तु आहार-सम्बन्धी कोई त्रुटि उससे सही न जाती थी । पर क्या करे ? जया खानेको देती है, पहननेको देती है, थोड़ा सह कर न चले तो गुजर कैसे हो ।

तीसरा परिच्छेद

जया कौन है ?

जया कौन है, अब तक हमने उसका कोई परिचय नहीं दिया। यदि पाठकोंको कौतूहल होता होगा तो इस परिच्छेदमें, हम उसका संक्षिप्त परिचय देंगे।

धन-सम्पदमें, पद-गौरवमें और मान-मर्यादामें शूलपाणि चौधरी ही कालिकापुर गाँवके प्रधान व्यक्ति हैं। शूलपाणि बाबू कलकत्ता हाईकोर्टके एटर्नी हैं। और गवर्नमेण्टकी ओरसे मैनेजर-रूपमें जयरामपुरकी विस्तृत जमींदारीका सम्पूर्ण प्रबन्ध उनके हाथमें है। इस लिए उनकी अवस्था खूब अच्छी है। पैतृक धनसम्पत्ति जो कुछ थी, उसे उन्होंने बहुत बढ़ा लिया है। उनकी तालुकेदारीकी सालाना आमदनी ही इस वक्त ८।१० हजार रुपया होगी। नगद रुपये-पैसेके सम्बन्धमें लोग नाना प्रकारकी बातें कहते हैं। कोई कहता है जयरामपुरकी जमींदारी लूटे ला रहा है, लाख रुपयेसे कम उसके संदूकमें न होंगे। कोई कहता है, नहीं, नहीं, इतना कहाँ होगा ? सरकारके हाथ जमींदारी है; पक्का बन्दोबस्त है; हिसाब किताब सब कौड़ी कौड़ी समझाना पड़ता है। फिर भी चालाक फन्देबाज आदमी है, कुछ रुपया जमा किया ही है, किन्तु तीस चालीस हजारसे अधिक न होगा। कोई कहते हैं—उनको सब भीतरी बातें मालूम हैं। नकद कुछ अधिक नहीं है, जो कुछ था वह लड़केको विलायत भेजनेमें प्रायः खर्च हो गया है। लड़का बैरिष्टर होकर आया है, कुछ कमाता नहीं है, बड़े साहबी ढंगसे रहता है, महीनेके महीने उसको बहुत कुछ खर्च देना पड़ता है, इस लिए इस वक्त अधिक रुपया जमा नहीं कर पाते। शूलपाणिके पास नकद रुपया कितना है, इस सम्बन्धमें नाना मनुष्य नाना प्रकारकी बातें करते हैं। ठीक हाल हम भी नहीं बता सकते। कारण शूलपाणि बाबू इस विषयको बहुत गुप्त रखते हैं।

जया इन्हीं शूलपाणि बाबकी एक मात्र भगिनी है। जिस सुन्दर पक्के मकानके पीछे जयाका घर है। वहीं उनके भाई शूलपाणिका घर है।

कलकत्तेमें जयाका विवाह हुआ था। स्वामी रामतारणराय अत्यन्त दुश्चरित्र और उच्छृङ्खल प्रकृतिका मनुष्य था। एक दिन भी जया स्वामीके व्यवहारसे सुखी नहीं हुई।

जब माणिक पैदा हुआ पाषाण-हृदय रामतारणने उसकी ओर एक बार भी स्नेहकी आँखोंसे नहीं देखा। घरमें और कोई न था। लड़केको गोदमें लिये जया दिन-रात रोया करती थी। शराबकी हालतमें जब रामतारण घर आता तो जया इस डरसे मर-सी जाती कि कहीं बच्चेको पटक कर मार न डाले। रामतारणमें सैकड़ों दोष होते हुए भी उसमें असाधारण चतुरता, साहस और तेजस्विता थी। देहमें भी पुरुषोचित शक्ति और सौन्दर्य्य पूर्ण मात्रामें दिखाई देता था। बड़ी बड़ी चौड़ी आँखोंकी उज्ज्वल तीक्ष्ण दृष्टिसे, सतेज और सरल वार्तालापसे और सर्वत्र अबाध एवं अप्रतिम व्यवहारसे उसमें एक ऐसी शक्ति प्रगट होती थी, जिससे लोग सहज ही उसके वश हो जाते थे। चतुर रामतारण अपनी क्षमता समझता था। अपनी अर्थ-लालसा, भोग-वासना और अन्यान्य दुष्प्रवृत्तियोंको चरितार्थ करनेके लिए वह कलकत्तेके धनिकोंके नौजवान चतुर लड़कोंके साथ रहता था। ये सहजमें ही रामतारणकी ऐन्द्रजालिक शक्तिके वशीभूत हो जाते थे और बहुत जल्दी ही पापके फिसलनेवाले रास्ते पर पाँव रख अधःपातके गढ़ेमें गहरेसे भी गहरे उतर जाते थे। इस तरह रामतारणने कितने धनवान युवकोंका सर्वनाश किया, और कितने धनवानोंको निर्धन और ऋणी बनाया, जिनकी गिनती नहीं। अनन्तर रामतारणने जयरामपुरके जमींदार जनार्दन मैत्रके छोटे लड़के हरगोपालका कंधा पकड़ा। जब तेजस्वी जनार्दन किसी तरह पुत्रको रामतारणके संसर्गसे अलग कर सत्पथ पर न ला सके तो उन्होंने पुत्रका परित्याग कर दिया। हरगोपाल अपनी स्त्रीको लेकर रामतारणके साथ कहीं चला गया। कुछ समयके बाद खबर मिली कि हरगोपालका खून कर और उसकी स्त्रीको लेकर रामतारण कहीं चला गया। इसके बाद कोई १५।१६ वर्ष बीत गये हैं। १०।११ वर्ष पहले काशीमें जयाके दूरके नातेके एक देवरसे रामतारणकी भेट हुई थी; इसके बाद अब तक उसकी कोई खबर नहीं मिली।

रामतारणके ला-पता हो जाने पर ७।८ वर्षकी उम्रके माणिकको लिये जया भाईके घर आई। किन्तु भाई और भाभीने जया और माणिकके प्रति पहले जैसा आदर प्रकट नहीं किया। जया दासीकी तरह गृहस्थीका सब काम करती थी, रसोईदारिनकी तरह दोनों वक्त रसोई बनाती थी। माणिक भाभीके बाल-बच्चोंको सँभालता था और नौकरकी तरह हुक्म बजाता था।

जयाने देखा कि भाईके घरमें उसे आजीवन दासी और रसोईदारिनका काम करके ही दिन काटने पड़ेंगे। माणिकको भी सदा मामाके घर हाट-बाजार करते

रहने और बाल-बच्चोंको संभालते रहनेसे भोजन मिलेगा। भाई माणिकको पढ़ा लिखा कर मनुष्य बनायँगे, ऐसा कोई लक्षण दिखाई नहीं देता।

इस पर भी भाभीका तिरस्कार धीरे धीरे उसे असह्य मालूम होने लगा। माणिकसे कोई त्रुटि होने पर, या बाल-सुलभ कुछ चपलता दिखाने पर उसके पिताकी बातें उठा कर प्रायः भाभी ऐसी कठोर बातें कहती थी, जिन्हें जया सह न सकती थी। भाई भी इसका कोई प्रतिकार न कर, बिना विचारे बहन पर ही दोष मढ़ते थे।

बहुत कुछ सोच-विचार कर अन्तमें जयाने स्थिर किया कि निष्ठुर भाई और भाभीके आश्रयमें और उनके घरमें वह न रहेगी। दूसरेके घर काम-काज कर भोजन-वस्त्रका प्रबन्ध करेगी और लड़केको लिखना-पढ़ना सिखायेगी।

उसी दिन दो पहरको भाभीसे जयाकी बड़ी लड़ाई ठनी। बच्चा रो रहा था, इससे भाभीकी नींदमें बाधा पड़ रही थी। भाभीने माणिकको बच्चेको गोदमें लेकर वहाँ घूमनेकी आज्ञा दी। दुष्ट माणिकने उसके हुक्मको नहीं सुना। वह दौड़ कर अमरूदके झाड़ पर चढ़ गया और अमरूद खाने लगा। क्रोधसे भाभी माणिकको पकड़ने बाहर चली। गुस्सेके कारण, असावधानीके साथ चलनेसे, लड़का हाथसे गिर पड़ा और जोरसे रो उठा। भाभीके क्रोधानलमें घृतकी आहुति पड़ी। अमरूदके पेड़ पर माणिकको चढ़ा देख कर उसने हाथका कटोरा उस पर फेंक मारा। कटोरेका किनारा माणिककी नाक पर जाकर लगा, जिससे रक्त बहने लगा। माणिकने रोते रोते जाकर मासे फरयाद की।

निष्ठुरता-पूर्वक मारनेसे माणिकके नाकसे जो खूनकी धारा बह रही थी उसे जयाका हृदय न सह सका। जयामें तेज था। सहन करने पर उसके समान कोई सहन भी न कर सकता था, और नाराज होने पर कलह करनेमें वह साक्षात् रणचण्डिकाकी मूर्ति भी धारण कर सकती थी। जयाने इतने दिन सब कुछ सहा, अब वह भाई और भाभीका आश्रय नहीं चाहती, तो इतना क्यों सहे? माणिकको वह गोदमें ले कर और आँचलसे उसके नाकका खून पोंछते हुए जो मुँहमें आया वही कह कर भाभीको गालियाँ देने लगी। जया सदा चुपचाप सहन कर लिया करती थी। आज भाभी जयाके ऐसे अभावनीय असम साहसिक आचरणसे कुछ काल तक विस्मयसे ठिठक रही। अनन्तर उसने भी मुँह खोला। दोनोंमें तुमुल युद्ध हुआ। महल्लेके लोग आ जुटे। भाभीने ननदको घरसे निकल जानेका हुक्म दिया। और न निक-

लने पर यह घर उसके माणिकका श्मशान है, घरके चूल्हेकी आग माणिककी चिता है, एक मुट्ठी अन्न उसके माणिकका पिण्ड है, इत्यादि मङ्गल-कल्पनाका विषय जयाको बार बार याद दिलाया गया । जया भी जल्दी ही घर छोड़ कर चली गई ।

घरसे बाहर निकल कर जया रास्ते पर आकर खड़ी हुई । पड़ोसिनी मेनका ठकुरानीने जयाको अपने घर बुला लिया । शूलपाणिकी स्त्रीको, नारी-जिह्वाके कोषके चुने चुने विशेषणोंसे अभिहित कर, मेनका ठकुरानीने जयासे अपने घर बेटीकी तरह रहनेका अनुरोध किया । किन्तु जयाने यह स्वीकार न किया और केवल एक कमरा कुछ दिनोंके लिए माँगा । जया किसी तरह उसका अन्न-वस्त्र स्वीकार न करेगी, यह जान-कर मेनका ठकुरानीने लाचार हो उसके लिए एक कमरा खाली कर दिया । जया माणिकको ले उसी कमरेमें जा रही । मेनकाके पुत्रका नाम मदन था । माणिक उसे मदन दादा कहता था । मदन दादाके घर रह कर माणिक सदा मदन दादाके साथ खेल सकेगा, यह सोच कर माणिक बहुत आनंदित हुआ ।

जयाने अपने निर्वाहके लिए यह बन्दोबस्त कर लिया कि एक घरमें वह रसोई बनावेगी, दो घरोंका पानी भर देगी और एक घरमें धान कूटेगी । इससे महीनेमें उसे १०।१२ रुपया नकद और कुछ चावल मिलेगा । खाने-पीनेसे जो चावल बचेगा, उसे बेच देने पर और भी कुछ रुपया मिल सकता है ।

भाभीने जब देखा कि जया सच मुच ही घर छोड़ कर चली गई और काम-काज करके गुजर करने लगी तब वह कुछ लज्जित हुई । लोग निन्दा करते हैं; स्वामी आते ही क्या कहेंगे ! घर लौटनेके लिए उसने जयाके निकट अपना अनुरोध भेजा । किन्तु जया न आई । अन्तमें एक दिन वह स्वयं ही गई । जया कुछ न बोली । किन्तु मेनका ठकुरानीने सारा गुस्सा निकाल कर उसको बड़ी गालियाँ सुनाई । शूलपा-णिकी स्त्री रोकर घर लौटी । कलह-विद्यामें मेनका ठकुरानी अप्रतिम थी । कलहके विशेषणों और उपमाओंके प्रयोगके समय उसके कंठ और जिह्वा पर स्वयं कलहचंडी आ विराजती थी ।

शूलपाणि बाबू जब घर आये तब उन्होंने स्वयं भी जयासे घर लौट आनेके लिए अनुरोध किया । जयाने वह अनुरोध नहीं सुना । शूलपाणि बाबू बड़ी विपदमें पड़े । जयाके व्यवहारसे लोगोंके सामने उनकी गरदन नीची होती है, और गृहस्थीकी

बहुत कुछ सुविधा भी नष्ट हो गई है । जयाके द्वारा बिना वेतनके ही दासी और रसोईदारिनका काम होता था। इस लिए जया पर उनको बहुत क्रोध हुआ। जया-का नाम भी वे अब न सुन सकते थे। एक-दो सालके भीतर उनका एटर्नीका व्यवसाय भी बहुत चमका। वे कलकत्तेमें घर लेकर वहीं सपरिवार जा रहे।

जया मेनका ठकुरानीके घर ही रह गई। धीरे धीरे उसके हाथमें कुछ रुपया हो गया। इधर माणिक भी सयाना होता जाता था। दो दिनके बाद वह मनुष्य होगा, उसके निजका एक घर होना ही चाहिए।

मेनका ठकुरानीने सलाह दी—"यह तो सच है । तो रुपयेसे घर क्यों खरी-देगी ? वह घर तो तुम्हारे बापका ही है। तेरा भाई भी तेरे बापकी सन्तान है, तू भी अपने बापकी सन्तान है । घर-द्वार, धन-सम्पति सब तेरे भाईको मिली है, और तुझे क्या घरके कोनेमें जरा जगह भी न मिलेगी ? हाँ यदि तेरे स्वामीका घर होता तो वह जुदी बात थी। वह जब नहीं है तो बापके घरमें जरा भी जगह मिले बिना तेरा निस्तार कैसे होगा ?"

जयाने कहा—"यह ठीक है, किन्तु दादा क्या घरमें मुझे जगह देंगे ?"

मेनकाने जवाब दिया—"वे नहीं देंगे तो तू जबरन जगह लेगी। तेरे भाई इस वक्त घरमें नहीं हैं। घरके पिछवाड़े पोखरेके पास जो जगह पड़ी है, वहीं पर घर क्यों नहीं बनवाती? तेरा और माणिकका जितनी जगहसे गुजर हो सके, उतनी जगह घेर ले। एक बार दखल कर लेने पर कौन निकाल सकेगा, देखा जायगा। जरासी जगहके लिए शूलपाणि बहनके नाम न नालिश कर सकेगा और न लठैतोंसे निकलवा सकेगा। जबरन जाकर दखल कर ले। नाराज होने पर, डर दिखाने पर भी न हिलना, बात भी नहीं करना। इच्छासे हो या अनिच्छासे, पीछे सब बखेड़ा मिट जायगा।

जयाने वही किया। शूलपाणि बाबूने घरमें आकर नाराज हो, डर दिखा कर जयाको निकालनेकी अनेक चेष्टा की, पर जयाने घर न छोड़ा। लाचार हो शूलपाणि बाबू खामोश हो रहे। जयाके प्रति उनका क्रोध और विद्वेष और भी बढ़ गया।

चौथा परिच्छेद

मेनका ठकुरानी ।

सार्वभौम ठाकुरके जेठे भाईके लड़के भोलानाथ विद्याविनोदका घर उनके घरके पास ही था । विद्याविनोद महाशयको यह लोक छोड़े बहुत समय हो गया । उनका पुत्र शिवनन्दन तर्कतीर्थ भी जीवित नहीं है । मेनका ठकुरानी इन्हीं तर्कतीर्थ महाशयकी विधवा पत्नी हैं और मदन उनका एक मात्र पुत्र है । मदन जब बहुत छोटा था तभी मेनका ठकुरानी विधवा हो गई। सार्वभौम ठाकुर अभि-भावककी तरह इनकी देख-रेख करते हैं ।

सार्वभौम ठाकुरकी बहू होनेसे मेनका अपनेको विशेष भाग्यवती समझती थीं। गाँवके ब्राह्मण-महिला-समाजमें भी वह इस पद-गौरवमें अपनेको बहुत बड़ा सम-झती थी। क्रिया-कर्मके उपलक्षमें, किसीके घर जाने पर और वहाँ विशेष आदर-सत्कार न होने पर उसके रोष और असन्तोषकी सीमा न रहती थी। उसे सम्मान देनेमें भी कोई बड़ी कृपणता न करता था। कारण मेनकाके मुँहसे सभी थोड़ा बहुत डरते थे। इसके सिवा मेनका ठकुरानी कभी किसीसे किसी अनुग्रहके लिए प्रार्थना न करती थी, वरन समय असमयमें लोगों पर उसका ही अनुग्रह होता था। मेनका जानती थी कि अनुग्रह चाहनेसे ही अपनेको छोटा बनाना पड़ता है । सार्वभौम ठाकुरकी बहू होकर वह किसीके निकट अपनेको जरा भी हीन बना सकती है? उसको किस बातकी कमी है। पैसा-कौड़ी, चीज-वस्तुकी कुछ भी तो कमी नहीं है; उसके बहुतसे शिष्य यजमान हैं, ब्रह्मोत्तर जमीन भी है । और इसके सिवा आपद-विपदके वक्त सार्वभौम ठाकुर हैं ही, दूसरेकी मददकी उसको जरूरत ही क्या है? उसमें क्रोध और गर्व चाहे जितना हो, पर उसकी प्रकृतिमें उदारता और सहृदयताका अभाव न था । किसीके यहाँ किसी चीजका अभाव देखने पर वह घरकी चीज-वस्तु देकर उसका अभाव दूर कर देती थी । क्रियाकर्ममें, बीमारीमें, शोक-विपदमें पड़ोसियोंके घर जाकर, अपने घरकी तरह सब बातें पूछ-ताछ कर, सहानुभूति प्रकट कर, झाड़ने-बुहारनेसे लेकर रसोई बनाने तक सभी काम कर देती थी । गृहस्थीके नित्यके काम-काजसे फारिग होने पर मेनका ठकुरानी नित्य शामको एक बार पड़ोस और गाँवमें घूमती थी । किसीको दुखी

देखने पर धैर्य देतीं, और दोष—त्रुटि देखने पर गाली दे सिरका भूत उतारती थीं। घरके पास मेनकाकी ऊँची आवाज सुनाई पड़ने पर कोई आशासे फूल उठता था, कोई भयसे काँपता था। घरका काम—काज करनेवाली, लज्जाहीना, खेल-कूद और गप-शप करनेवाली कन्यायें और बहुएँ खेल और गप-शप छोड़ कर भाग जाती थीं, हाथके पास जो कुछ काम पाती करने लगती थीं, सावधानीसे शरीर और माथे पर धोती सँभाल लेती थीं। इनकी इस प्रकारकी कोई त्रुटि यदि मेनका देखती तो घरके पास कौआ चील्ह भी न बैठने पाता, निद्रित कुत्ते और बिल्लियाँ चौंक कर जाग पड़तीं और दूर भाग जातीं, माकी गोदमें सोता हुआ बच्चा आतंकसे रो पड़ता।

दिन-रातमें सोनेका समय छोड़ कर मेनका ठकुरानीके शरीरको भी विश्राम न था, जीवको भी विश्राम न था। घरमें, आँगनमें, बागमें, पोखरेके किनारे, रास्ते पर, भाण्डारमें, देव-गृहमें, रसोई-घरमें, गौशालामें, ढेंकी-घरमें, धान्य-गृहमें, पेड़के नीचे, सदा जैसे उनके हाथ पाँव चलते थे वैसा ही मुँह भी चलता था। पेड़की चिड़ियोंसे लगा कर जमीनके कुत्ते, बिल्लियाँ, गौ, बछड़े, नौकर, नौकरानी, पुजारी, रसोइया तक कोई भी एक ओर जिस प्रकार उनकी मुक्तहस्त कृपा और असाधारण क्षिप्रकारितासे किसी तरहका अभाव—कष्ट कभी अनुभव न करता था, दूसरी ओर उनके जीभके लगातार चलते रहनेसे नीरव निश्चित शान्तिका नाम भी न जानता था।

सार्वभौम ठाकुरकी बहू होनेसे एक ओर जिस तरह उनके गौरवकी भी सीमा न थी, उसी तरह दूसरी ओर सार्वभौम ठाकुरके प्रति उनमें भक्ति—श्रद्धा भी असाधारण थी। सार्वभौम ठाकुरका पादोदक लिये बिना वे पानी तक न पीती थीं। दोनों वक्त नियमानुसार उनको प्रणाम कर उनके पाँवोंकी धूल सिर पर चढ़ा आती थीं। जब वे कहीं जाते थे तो उनकी पद-धूलि माँग कर रखती थीं। उग्र चण्डी मूर्त्तिसे घर कँपा कर, पड़ोस कँपा कर, गाँव कँपा कर जिस वक्त वे कलह कर रही हों उस वक्त यदि सार्वभौम ठाकुरको देखतीं तो मेनका बिलकुल सिमट जाती थीं। घूँघट निकाले भागती हुई नववधूके जैसी सलज्ज नम्रता आ जानेसे उसकी उग्र चंडी मूर्त्ति मुहूर्तमें ही अन्तर्हित हो जाती थी।

मेनकाकी आँखोंमें सार्वभौम ठाकुर ही आदर्श पुरुष हैं, वे उन्हीं आदर्श पुरुषकी बहू हैं; मदन उनके गर्भसे पैदा हुआ है, इस लिए सार्वभौम ठाकुरके जीवनके

आदर्श पर मदनका जीवन गठित हो यही मेनकाके मातृ-जीवनकी सर्वोच्च कामना थी । किन्तु मेनकाकी यह कामना पूरी न हुई । विकृत-बुद्धि होनेसे मदनके जीवनकी गति विपरीत दिशाकी ओर मुड़ी । इस लिए मेनकाको इस संसारमें सुख न हुआ । सार्वभौम ठाकुरकी बहू होनेके गौरवसे वह गाँवमें सबकी आदरणीय थी; किन्तु मातृत्वके गौरवसे वैसी न हो सकी । यही मेनकाको बड़ा दुःख है ।

मदन इस समय पूर्णवयस्क युवक है । सब उसे चतुर और बुद्धिमान् समझते हैं । सार्वभौम ठाकुर उस पर अत्यन्त स्नेह रखते हैं । किन्तु स्नेहमयी जननी उसकी बुद्धिको फिर क्यों विकृत समझती है ? क्यों वह उसकी चाल-ढालसे संतुष्ट नहीं ?

पाठक, आगेके कई परिच्छेदोंमें हम मदन और मदनके नित्य संगी माणिकके बाल्य-जीवन और पहलेकी और भी कुछ आवश्यक घटनाओंका संक्षिप्त परिचय देंगे ।

पाँचवा परिच्छेद ।

मदन और माणिक ।

पाठशालाके गुरु महाशयसे वर्ण-परिचयके बाद जब मदन पहली पुस्तकके कुछ पाठ पढ़ चुका तब मेनका ठकुरानीने बड़ी धूम-धामसे उसका उपनयन-संस्कार किया और इसके बाद उसे सार्वभौम ठाकुरकी पाठशालामें पढ़नेको भेज दिया ।

मदन तब पंच सान्धिके कठोर नीरस सूत्र कंठस्थ करने लगा ।

इसके कुछ ही दिन बाद जया माणिकको लिये भाईके घर आई । दो दिनमें ही मदन और माणिकमें गाढ़ी मित्रता हो गई । मदनकी पाठशालाकी जब छुट्टी होती, उस समय माणिक जिस तरह होता, मामीके हजारों आदेशोंके होते हुए भी मौका पा कर बाहर चला जाता । दोनों तब एक साँसमें महल्ले और गाँवके बाहर निकल जाते । वे कभी पेड़ पर चढ़ आम, जाम, नारियल खाते; कभी नदी-नालोंमें पैठ कर मछली पकड़ते; कभी मैदान मैदान दौड़ कर गाय-बछड़े खदेड़ते; घोड़े पर चढते; खेत काटते; खेतिहरों और ग्वालोंके लड़कोंके साथ खेलते; दौड़ते और मारपीट करते ।

भाईका आश्रय छोड़ कर जयाने माणिकको गाँवके अँगरेजी स्कूलमें भरती कराया ।

मदनने देखा, माणिक अँगरेजी पढ़ता है, हिन्दी भी सीखता है। उसकी किताबोंमें कितने किस्से हैं, कितनी तस्वीरें हैं, कितने राजाओंकी कथा है, लड़ाइयोंकी कथा है, देश-विदेशोंकी कथा है; माणिक उनमें पानी, हवा, नदी, पहाड़, आकाश, पेड़-पोदों और जीव-तन्तुका वर्णन पढ़ता है, और वह केवल पुराने ढंगके नीरस व्याकरणके सूत्रोंको ही कंठ करता है। पाठशालाकी पढ़ाई अब उसे न रुची। उसने जिद की कि वह भी माणिकके साथ स्कूलमें पढ़ेगा! सार्वभौम ठाकुरने उसका अनुमोदन किया। मेनका नाराज हुई, बकी-झकी, कितना ही उसने सिर फोड़ा, पर उसका कोई फल न हुआ। अन्तमें वह सार्वभौम ठाकुरके पास गई और दरवाजेकी आड़में, घूँघट निकाले, खड़ी होकर टूटे-फूटे स्वरसे कितना ही रोई। किन्तु मदनने अपनी जिद न छोड़ी। सार्वभौम ठाकुरने भी उसे उसका दिल न होनेसे अपनी पाठशालामें पढ़ाना न चाहा।

महल्लेकी एक लड़की पास ही खड़ी थी, उसे मध्यस्थ करके मेनकाने कहा—

" मदन छोकरा है, वह भला-बुरा क्या कुछ समझता है? और उसकी इच्छा-अनिच्छासे ही क्या होता है? वे क्यों उसे जबरन् पाठशालामें नहीं पढ़ाते।"

सार्वभौमने कहा—" लड़कोंके मनकी स्वाभाविक गतिके अनुसार ही उनकी शिक्षाकी व्यवस्था होनी चाहिए। लड़का जो शिक्षा नहीं चाहता उसे ज़ोर-जुल्मसे वैसी शिक्षा देना वृथा चेष्टा करना है।"

मेनकाने कहा—" मदनको तो माणिककी तरह नोकरी करके पेट भरना नहीं होगा। अँगरेजी स्कूलमें उसे पढ़ानेकी क्या जरूरत?"

सार्वभौमने हँस कर कहा—"बहू, क्या केवल नोकरीके कारण ही अँगरेजी स्कूलमें पढ़ना पड़ता है। पाठशालाकी तरह संस्कृतका ज्ञान वहाँ न हो, किन्तु वहाँ अनेक प्रकारका ज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञानार्थीकी ज्ञान-पिपासा वहाँ भी व्यर्थ नहीं होती?"

मेनकाने फिर कहा—" शास्त्र पढ़े बिना मदन अपने शिष्य, यजमानोंको कैसे रख सकेगा?"

सार्वभौमने कहा—" मदन अभी लड़का है। सयाना होने पर जब शास्त्र पढ़नेका प्रयोजन समझेगा तब मैं स्वयं ही उसे सब पढ़ा दूँगा।"

मेनकाने कहा—" यदि उसे ऐसी बुद्धि न हो? अँगरेजी-वँगरेजी पढ़ कर अगर उसका मिजाज़ बिगड़ जाय, तब क्या होगा? मदन मनुष्य हो कर उनकी तरह बड़ा विद्वान् होगा और उनके घरानेका नाम रक्खेगा, इसी आशासे मैं ये दुःखके दिन काट रही हूँ। ऐसा होनेसे सुखकी मेरी सब आशा चली जायगी।"

सार्वभौमने समझा कर कहा—"बहू, तुम्हारा मदन मनुष्य होगा, इसके लिए चिन्ता न करो। मनुष्यत्व केवल संस्कृत पाठशालामें पढ़नेसे ही प्राप्त नहीं होता। जिसमें मनुष्यत्वका संस्कार है, सुशिक्षासे सर्वत्र ही उसके मनुष्यत्वका विकाश हो सकता है। मदन अब स्कूल जाना चाहता है जावे। बाधा दे कर उसका उत्साह नष्ट न करो। मदन उच्च संस्कार लेकर जन्मा है। कल वह मनुष्यकी तरह ही मनुष्य होगा।"

मेनकाने और आपत्ति न की। मदन अब स्कूल जाने लगा।

माणिक स्कूलकी पढ़ाईमें कुछ आगे बढ़ गया था। मदन नया नया भरती हुआ। किन्तु मदन माणिकका "मदन दादा" है। मदन दादा पीछे रहेगा और माणिक आगे बढ़ जायगा, यह दोनोंमेंसे किसीको पसन्द न हुआ। माणिकने पढ़ाईमें कुछ ढिलाई की और मदन खूब मेहनत करके पढ़ने लगा। शीघ्र ही दोनों साथ हो गये

सुशील और सुबोध नामके दो बालक दिन-रात पढ़ते हैं, खेलते नहीं, जलमें नहीं उतरते, पेड़ पर नहीं चढ़ते, धूप-वर्षामें मैदान मैदान नहीं दौड़ते फिरते, गौएँ नहीं खदेड़ते, घोड़ा नहीं दौड़ाते, खेत नहीं काटते—वे बिल्कुल शान्त और निरीह हैं। खेलके वक्त वे भय और संकोचसे निरापद स्थान पर दूर खड़े रहते हैं। पेड़के आम, जाम, हरे नारियलके खानेकी कभी इच्छा होती है तो वे नीचे खड़े रह कर, विनती प्रार्थना कर, जो पेड़ पर चढ़े होते हैं उनसे एक-दो माँग कर खा लेते हैं; स्वयं कभी पेड़ पर नहीं चढ़ते। जिस घरके पास कुत्ते भोंकते हैं उस घरमें वे कभी नहीं जाते हैं। रास्ते पर साँड़ देखने पर वे दूसरे रास्तेसे निकल जाते हैं। घोड़ा देखने पर सौ हाथ दूर रहते है। हाथ-पाँवमें किसीके काँटा चुभ जाने और खून बह निकलनेसे वे डरसे मूर्छित हो जाते हैं।

मदन और माणिक सुशिल और सुबोधके जैसे न थे, परंतु गाँवमें जो उपद्रवी लड़के कहे जाते हैं उनके वे एक तरहसे आदर्श थे, ऐसा कहा जा सकता है। उनके तूफानी खेल-कूदका परिचय पाठक-पाठिकाओंको पहले ही मिल चुका है। जैसे जैसे वे बड़े होते जाते थे वैसे ही वैसे उनका यह खेल-कूद बढ़ता जाता था, घटता न था। उपद्रव और खेद-कूदमें व्यग्र रहने पर भी वे गँवार न थे। भय और भक्ति जिसे कहते हैं ठीक उस तरहका भाव न होने पर भी, उनमें अपनी अपनी जननीके प्रति अपरिसीम स्नेह था। घरमें वे गँवार लड़कोंकी तरह गुस्सा कर, बक-झक कर, लड़ाई कर, मार-पीट कर, चीज-वस्तु तोड़-फोड़ या बिखेर कर अपनी अपनी जननीको कभी कष्ट

न देते थे। उनके प्राण सरल थे, मन स्नेहमय था, सहृदय बालकोंके जैसा उनमें खिलाड़ीपन था, मुँह पर उनके सदा हँसी खेलती थी, देह पर स्वास्थ्यकी उज्ज्वल ज्योति विलसती थी, मुग्ध मातायें उनके उपद्रवीपनेमें कभी बाधा न देती थीं। "देख और नहीं सह सकती, ऐसा लड़का तो मैंने कहीं नहीं देखा"—ऐसी ही और दो चार बातें, कुछ नाराज होते और कुछ हँसते हुए कह कर वे उन्हें उपद्रवसे नहीं रोकती थीं।

यद्यपि दोनों लड़के बड़े खिलाड़ी थे। तथापि वे प्रतिभा-हीन न थे, पढ़ने-लिखनेमें ध्यान देते थे। स्कूलमें वे पढ़ाई पर ध्यान देते थे, घरमें सबेरे और शामको किताबें लेकर बैठ जाते। स्वाभाविक तीक्ष्ण बुद्धि और तीक्ष्ण दृष्टि होनेसे उनको सहज ही पाठ और विषय याद हो जाते थे। इस लिए स्कूलमें वे बुरे न थे।

१४।१५ वर्षकी अवस्थामें दोनों अँगरेजी-परिक्षामें उत्तीर्ण हुए। तब दोनोंको जिलेके स्कूलमें भेजनेकी चर्चा चलने लगी। मेनकाको पैसेका दुःख न था, इस लिए मदनके लिए कोई चिन्ता न थी। किन्तु जया जिलेके स्कूलमें माणिकके पढ़नेका खर्च कैसे चलायेगी? मदद करनेवाले मेनका और सार्वभौम ठाकुर थे। और जयाको मंजूर होने पर वे माणिकके लिए खर्च दे सकते थे। किन्तु जयाको यह मंजूर न था। भाईका आश्रय छोड़नेके बादसे जयाका यह दृढ़ संकल्प था कि वह शक्ति रहते दूसरेसे मदद न लेगी। सहज ही वह अपने इस संकल्पको छोड़ना नहीं चाहती थी। सार्वभौम ठाकुरको जया पिताकी भाँति देखती थी, वे भी अपनी कन्याकी तरह जया पर स्नेह रखते थे। मेनका और जया दोनों मानो दो सगी बहनें थीं। किन्तु तो भी जयाने अब तक उनसे रुपये-पैसेकी मदद न ली, और न अब लेना चाहा। किन्तु इसीसे क्या माणिक न पढ़ेगा? अवश्य पढ़ेगा। अब अकेले उसे अपने ही पेटकी चिन्ता है। जिस घरमें वह रसोई बनाती है, उस घरमें और कुछ काम कर देनेसे उसको खाना भी मिला करेगा। माणिकके जिलेमें रहने पर घरमें कोई काम नहीं रह जायगा। इस कारण अन्यत्र कुछ और काम करके वह और भी कुछ पैदा कर सकेगी। माणिकका खर्च अच्छी तरह चल जायगा। यही सब सोच कर माणि-कसे उसने कुछ नहीं कहा, और मदनके साथ उसे भी जिलेके स्कूलमें पढ़नेको भेज दिया। वहाँ माणिकको समय समय पर खर्च मिल जाता था, कोई कष्ट न होता था। मेनका भी गुप्त-रूपसे मदनको माणिकके जल-पानके लिए २।४ रुपये भेज देती थीं। तर-त्योहार पर वह माणिकको बहुतसे कपड़े दे देती थीं। जया यह सब

समझती थी, किन्तु समझ कर भी क्या करती । इसमें किस तरह बाधा देती ? और ऐसा करनेसे तो बात बहुत बढ़ सकती है । विशेषतः जब कि उसके घर-द्वार नहीं है, मेनकाके घरमें ही वह रहती है ।

मदन और माणिक जिलेके स्कूलमें पढ़ने लगे । वहाँ नये नये खेलोंसे, नये नये व्यायामोंसे मानसिक उन्नतिके साथ साथ वे शारीरिक उन्नति भी करने लगे । उनकी प्रवृत्ति और आसक्ति शारीरिक उन्नतिकी ओर ही अधिक तर दिखाई देती थी । सब प्रकारके खेल-कूदमें दक्ष हो जानेसे और व्यायाम-कौशल, शारीरिक शक्ति तथा काम करनेकी शीघ्रताके गौरवसे उन्होंने थोड़े दिनमें ही शहरके बालकों और युवकोंमें श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर लिया । बालक और युवकोंके मनमें इस प्रकारकी क्रीड़ा-कुशलता, व्यायाम-कौशल, शारीरिक शक्ति और कार्य करनेकी स्फूर्तिके प्रति वैसे ही स्वाभाविक मोहक आकर्षण होता है । एक वर्ष बीतते न बीतते मदन और माणिक गाँवकी तरह शहरके लड़कोंके सर्दार हो गये ।

छठा परिच्छेद ।

जयरामपुरके ज़मींदारके दो पुत्र ।

जयरामपुरके ज़मींदार जनार्दन मैत्र स्वयं नितान्त निष्ठावान् हिन्दू और निष्क-लंक चरित्र थे । किन्तु उनके दोनों पुत्र घनश्याम और हरगोपालका उपयुक्त शिक्षा और चरित्र-गठनकी ओर बिलकुल ध्यान न था । काम-काजसे जनार्दनको जो कुछ फ़ुरसत मिलती, उसे वे पूजा-पाठ और अन्यान्य धर्मानुष्ठानोंमें लगाते थे । दोनों पुत्रोंको उन्होंने—जैसा सब लोग करते हैं—एक शिक्षकके अधीन रख कर पहले गाँवके, स्कूलमें पढ़ाया और गाँवके स्कूलकी पढ़ाई ख़तम हो जाने पर अपने एक कर्मचारीकी देख-रेखके नीचे कलकत्ते भेज दिया । वहाँ घर पर पढ़ानेके लिए भी एक मास्टरकी जरूरत थी । कलकत्तेमें जनार्दनके एटर्नी रामसदय बाबूने कानून पढ़नेवाले अपने एक आश्रित ग्रेजुएट युवकको घनश्याम और हरगोपालको पढ़ानेके लिए नौकर रख दिया । यही युवक हमारे पूर्वपरिचित शूलपाणि बाबू हैं । शूलपाणि शिक्षित और परम चतुर हैं । शिक्षक-रूपमें आकर वे थोड़े दिनोंमें ही घनश्यामके नितान्त अन्तरंग मित्र हो गये ।

इसी जरियेसे धीरे धीरे शूलपाणिके बहनोई रामनारायणसे भी हरगोपालका परिचय और मित्रता हो गई। उनकी इस मित्रताका अन्तमें कैसा विषमय फल हुआ, इसका कुछ परिचय पाठक पहले पा चुके हैं। यह बात नहीं थी कि किसीके शासनमें न रहनेवाले, कलकत्ता-प्रवासी जमींदारके जवान लड़के घनश्याममें शौकीनी और भोग-विलासकी लालसा बिलकुल न थी, किन्तु उसकी यह शौकीनी और भोग-विलासकी लालसा बाबुओंकी ओर न जाकर साहबोंकी ओर झुकी। शूलपाणिने भी अपने मित्र और शिष्यके मनकी गति समझ कर विलायतसे लौटे हुए बंगाली साहबोंसे उनका परिचय करा दिया। साहबी चालमें घनश्याम जल्दी जल्दी उन्नति करने लगे। सब बातोंमें ठीक विलायती साहबोंका अनुकरण करना घनश्यामके जीवनकी एकमात्र शिक्षा और साधनाका विषय हो उठा। यह सीखनेके लिए उन्होंने एक विलायती साहबको भी कुछ दिनके लिए नौकर रख लिया। इस लिए थोड़े दिनोंमें ही उनकी सिद्धि पूर्ण-रूपसे सिद्ध हो गई।

घनश्यामकी साहबी चाल केवल बाहरी आचरणोंमें ही खतम न हुई, भीतर भी उसका पूर्ण प्रभाव पड़ा। घनश्यामका मन, प्राण, भाव, विचार, सभी साहबी आदर्श पर गठित और परिपुष्ट होने लगे। इस देशके सामान्य कुत्ते-बिल्लियोंसे लगा कर मानव, मानव-परिवार, समाज, धर्म, आचार-व्यवहार, चीज-वस्तु सबको वे नेटिव और निकृष्ट कह कर घृणा करते थे। और चौरंगीसे चूना गली तक वे जो कुछ साहबी बातें देखते उन सबको वे सभ्यता और मनुष्यत्वका श्रेष्ठ आदर्श समझते थे।

चतुर शूलपाणि बराबर घनश्यामके संगी, सहयोगी और परिचालक थे। किन्तु घनश्यामकी तरह साहबी चाल-ढालमें उन्होंने कभी भी बिलकुल आत्म-विसर्जन नहीं किया। लड़कपनसे वे उग्र-बुद्धि थे। सांसारिक उन्नति, भोग-विलास, और लोक-समाजमें पद-गौरव और मान-मर्यादा प्राप्त करना उनके जीवनका प्रधान उद्देश्य था। इस उद्देशकी सिद्धिके लिए जिस प्रकार रुपया-पैसा कमानेकी ओर ध्यान देना आवश्यक है, उसी तरह सब श्रेणीके लोगोंसे मेल-जोल भी उन्हें रखना पड़ता है। घनश्याम उग्र-बुद्धि थे, जमींदारके लड़के थे और शूलपाणि बाबूके हाथ पड़ गये थे। शूलपाणि भी उन्हें अपने पंजेमेंसे निकल जाने देना न चाहते थे। साथ ही वे चाहते थे कि घनश्यामका विलायतसे लौटे हुए बंगाली साहबके यहाँ सुहृद्-रूपसे आवागमन और असंकोच मेल-जोल हो जानेसे अनेक लोग उन्हें बड़ा आदमी समझें।

इधर व्यवसायमें उन्नति और सामाजिक आधिपत्य प्राप्त करनेके लिए हिन्दू-समाजके सब प्रकारके लोगोंसे घनिष्ठ परिचय होना भी आवश्यक है। इस लिए इधर विलायतसे लौटे हुए बंगाली साहबी समाजमें शूलपाणि जैसे अप-टु-डेट फेशनधारी साहब हैं, बाबू समाजमें वैसे ही पूरे बाबू हैं, विषयी समाजमें वैसे ही पक्के विषयी हैं, और गाँवके पंडित-समाजमें वैसे ही कट्टर हिन्दू हैं।

घनश्याम इतना न सोचते थे। और न इतना सोचनेके जैसी उनकी प्रकृति और शिक्षा ही थी। किन्तु शूलपाणिको मालूम था कि घनश्यामकी ऐसी साहबी चाल-ढालके लिए उनके पिता जनार्दन कभी माफ न करेंगे । घनश्यामका साहबी रंग-ढंग जब बहुत बढ़ गया, तब शूलपाणिने देखा कि जिस कर्मचारीकी देख-रेखमें 'दोनों' भाई कलकत्तेमें रहते हैं, उसके मौजूद रहनेसे जनार्दनको कुछ छिपा न रहेगा।

एटर्नी रामसदय बाबू ही असलमें इन दोनोंके अभिभावक थे । वे शूलपाणिको अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धि सच्चरित्र युवक समझ कर स्नेह करते थे। शूलपाणिने रामसदय बाबूको समझाया कि घनश्याम और हरगोपालको कालेजमें पढ़ा कर बी०ए०,एम०ए० की उपाधि पानेसे कोई प्रयोजन नहीं। उनका मन भी वैसा नहीं है। उनकी इच्छाके विरुद्ध कालेजमें अनेक प्रकारके प्रयोजनीय और अप्रयोजनीय विषय पढ़ानेकी चेष्टा करनेसे सुफलकी अपेक्षा कुफल ही अधिक होगा। समयानुसार वे घर पर ही उनके पास अँगरेजी आदि आवश्यकीय विषय स्वाधीन भावसे पढ़ेंगे और धनी शिक्षित समाजमें मिल-जुल कर सामाजिक रीति-नीति-सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करेंगे। भविष्यमें अपने उच्च पदकी योग्यता प्राप्त करनेके लिए यही इन दोनोंके लिए यथेष्ट है। इन दोनोंको कालेजसे अलग कर लेना ही अच्छा है। और जनार्दन बाबूके आदमी व्यर्थ ही यहाँ क्यों बैठे हैं—वे जयरामपुर लौट जायँ । रामसदय बाबूके उपदेशानुसार वे ही इनकी देख-रेख रक्खेंगे।

रामसदय बाबूने देखा कि शूलपाणिका परामर्श युक्ति-युक्त है। उन्होंने जनार्दन बाबूको लिख कर इसी प्रकारका बन्दोबस्त कर दिया। जनार्दनका आदमी घर लौट गया। घनश्याम और हरगोपाल अब बिलकुल स्वाधीन हो गये। हरगोपाल रामतारणके साथ नाना प्रकारके आमोद-प्रमोदोंमें मस्त हो प्रायः बाहर ही रहते थे। शूलपाणि घनश्यामको लिये बंगाली साहब-समाजमें घूमते-फिरते थे।

पहले विद्यार्थि-दशामें हरगोपाल और घनश्यामको जितने खर्चकी ज़रूरत होती

थी, अब जमींदारके पुत्रके रूपमें, कलकत्तेके समाजमें मिलनेसे उससे बहुत अधिक खर्चेकी जरूरत होती है। इस लिए रामसदय बाबूने शूलपाणिके परामर्शके अनुसार इन दोनोंका मासिक खर्च भी बढ़ा दिया है।

न मालूम क्या सोच कर, पहले शूलपाणिने हरगोपालके उच्छृङ्खल दुश्चरित्रमें बाधा देनेकी किसी प्रकार चेष्टा न की। जब हरगोपाल शासन और सुधारकी सीमाके बिलकुल बाहर हो गये, तब वे कभी कभी रामसदय बाबूसे उनकी शिकायत करने लगे। रामसदय बाबूने हरगोपालको बुला कर उपदेश दिया, उनका तिरस्कार किया। किन्तु जब देखा कि उनके प्रयत्नका कोई फल नहीं निकलता, तब उन्होंने जनार्दन बाबूको सब बातें लिख कर जता दीं।

जनार्दन बाबू कलकत्ते आये। यह देख शूलपाणि बाबूने घनश्यामको समझाया। उनके उपदेशसे घनश्यामने साहबी चाल-ढाल छोड़ कर पिताके साथ श्रद्धा और विनय-पूर्वक ही व्यवहार किया। सरल जनार्दन बड़े लड़के घनश्यामकी हिन्दुत्वके भाव-रहित साहबोंके जैसी चाल-ढाल देख कर भी उस पर नाराज न होकर सन्तुष्ट ही हुए। उन्होंने सोचा लड़का अँगरेजी पढ़ता है, अँगरेजी चाल-ढालका जमाना है, कलकत्तेके समाजमें रहता है, खूनमें तरलता है, इससे सब ही युवक थोड़े बहुत ऐसे हो जाते हैं। रक्त गाढ़ा होने पर और घर-गिरिस्ती और सामाजिक दायित्वका भार सिर पर पड़ने पर सब दूर हो जायगा।

किन्तु हरगोपालको ऐसा कोई उपदेश-दाता था न। जिस रातको जनार्दन कलकत्ते पहुँचे, हरगोपाल उस रातको घर न आये। दूसरे दिन, एक पहरसे अधिक दिन बीत जाने पर, शराबीकी हालतमें वे घर पर आये और दिन भर सोते रहे। शामके पहले जब जागे तो पिताका आना सुन कर डरके मारे उनसे भेट न कर फिर भाग गये। दूसरे दिन सबेरे आदमी भेज कर जनार्दनने पुत्रको जबरन घर बुलाया। मिज़ाज़ ज़रा ठिकाने आने पर उन्होंने लड़केको बहुत डाँटा-फटकारा और उन्हें वे घर ले गये।

इधर रामतारण भी गाँवमें जा धमके। गाँवमें पहुँच कर भी हरगोपाल पर पिताका बातोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे उनके शासन और उपदेशको न मान कर, भय और लज्जा-संकोच सब एक बारगी छोड़ कर फिर बहुत ही बुरे मार्गोंमें फँस गये। क्रुद्ध जनार्दन और न सह सके। लड़केको उन्होंने घरसे निकाल दिया और वसीयतनामा लिख कर बड़े लड़के घनश्यामको सब धन-दौलतका उत्तराधिकारी बना दिया।

जवान स्त्री और शिशु-कन्याको लेकर हरगोपाल रामतारणके साथ कहीं चले गये। इसके बादका हाल पाठक-पाठिकाओंको विदित है। हरगोपालकी इस दुर्दशाके बाद घनश्यामको भी होश हुआ और वह बड़े भय भीत हुए। घनश्याम यह सोच कर कि दुश्चरित्रके कारण जिस पिताने एक पुत्रको त्याग दिया है, साहबी चाल-ढालके कारण वे क्या दूसरे पुत्रको न त्याग देंगे, अबसे बहुत सावधानीके साथ चलने लगे। जिस प्रकार रोग शैय्या पर पड़ा हुआ रोगी औषध और पथ्य-सेवन करता है और जेलमें कैदी जेलके नियमानुसार चलता है उसी प्रकार घनश्याम बाबू बीच-बीचमें जब घर पर आते तब किसी प्रकार, बड़े कष्टसे कुछ कुछ नेटिव (काले लोगोंके जैसी) चाल-ढालसे रहते थे, जिससे पिताकी आँखोंमें बिलकुल बुरे न दिखाई पड़ें।

और फिर कलकत्ता पहुँचे नहीं कि रोग-मुक्त रोगी और जेलसे छूटे हुए कैदीकी भाँति वे शान्ति, सुख और स्वाधीनताका आनन्द प्राप्त करते।

सातवाँ परिच्छेद ।

गौरी ।

घनश्यामके एक कन्या थी। हरगोपालकी कन्यासे वह कोई एक साल बड़ी थी। घनश्याम बाबूकी यह खास इच्छा थी कि वे अपनी स्त्रीको, अपने पास कलकत्तेमें, अपने साहबी जीवनकी संगिनी बीबी बना कर रक्खें और वह कलकत्ताके मिस-मिसेज समाजमें स्त्री-समाजका नेतृत्व गृहण कर उन्हें गौरवान्वित करे। किन्तु पिताका मन न होनेसे एक बार भी वह स्त्रीको अपने साथ कलकत्ते न ले जा सके। जनार्दन कहते थे, कुल-वधूको कलकत्ता ले जानेकी जरूरत क्या है?

कन्या पैदा होनेके बाद घनश्याम बाबूको इस बातके लिये बड़ा आग्रह हुआ कि वे कन्याको बचपनसे ही अपने पास रख कर, अपने आदर्शके अनुसार शिक्षित और सुगठित करनेके लिए, स्त्री और कन्याको कलकत्ता ले आवें। घनश्यामने राम-सदय बाबूके द्वारा पिताके निकट बहुत अनुरोध कराया। किन्तु वृद्ध जनार्दनने रामसदय बाबूका यह अनुरोध कभी स्वीकार न किया। हरगोपालको त्याग देनेके बाद घनश्यामने साहस कर फिर यह बात न उठाई; किन्तु पिता पर वह बहुत विरक्त

हो गये। ऐसी घटनाएँ एकके बन्द एक घटने लगीं; जिससे उनकी यह विरक्ति क्रमशः और बढ़ने लगी।

जनार्दन अपनी पोती पर बहुत स्नेह रखते थे। खास कर हरगोपालको त्यागने बादसे वे इस बालिकाको आँखोंकी ओट न कर सकते थे।

पूजा-पाठके समय, आहार-विश्रामके समय, काम-काजकी आलोचनाके समय, सर्वदा यह लड़की उनके पास रहती थी। समय समय पर वे बड़े आवेगसे उसे छातीसे लगाते, बार बार उसका मुँह चूमते और उसे खूब तंग कर डालते। हरगोपाल और उनकी स्त्री-कन्याके अभावमें उनके हृदयका जो एक बड़ा भाग खाली हो गया था, उसको वे मानो इसी छोटीसी बालिकाके द्वारा पूर्ण कर रखना चाहते थे। किन्तु जब समझते कि वे ऐसा नहीं कर पाते तब मानो एक बारगी छातीके भीतरी भागको पूर्ण करनेके लिए ही ऐसे आवेगसे उसे छातीसे लगा लेते थे।

बूढ़े जनार्दनने बड़े आदरके साथ पोतीका नाम गौरी रक्खा। इससे घनश्याम अवश्य ही बहुत नाराज हुए। एक तो नेटिव नाम और फिर वह भी गौरी। उन्होंने समझा इस नामसे प्राचीन कालके सब कु-संस्कार मानो पूर्ण भावसे प्रकट हो रहे हैं। वे स्वयं कन्याको एमा कह कर पुकारते हैं।

कन्याकी ममताके कारण घनश्याम अब प्रायः घर आते हैं। वे जब आते तब कन्याके लिए कितनी ही सुन्दर सुन्दर पोशाक खरीद कर लाते और वह पोशाक उसे पहना कर, उसका हाथ पकड़ नदीके किनारे, मैदानकी ओर घूमने जाते। जनार्दन कुछ न बोलते थे। किन्तु इस पोशाकमें वे पोतीका अपने पास आना पसन्द न करते थे। उन्होंने बहूसे एक दिन कह दिया—"वह पागल है, उसकी खुशी हो सो करे। पर तुम मेरी गौरीको गौरीकी ही पोशाकमें मेरे पास भेजा करो; एमा बीबीकी पोशाकमें मत भेजा करो।

बहू मोक्षदा सुन्दरीने भी वैसा ही किया। गौरीकी बीबियाना पोशाक उतार कर उसे एक लाल किनारीकी साड़ी पहना दी, मस्तक पर लाल चंदन लगा दिया, गलेमें लाल जवा-कुसुमकी माला पहना दी और तब उसे ससुरके पास भेजा। गौरी हँसते हँसते दौड़ी गई और पितामहकी गोदमें बैठ कर बोली—"दादा, दादा, मैं अब गौरी हूँ।"

जनार्दनने मुस्कुरा कर कहा—"तुम तो बेटी बराबर मेरी गौरी ही हो।"

गौरीने कहा—" कहाँ दादा ! बराबर गौरी कहाँ रहने पाती हूँ । बाबाके निकट एमा बनना पड़ता है । " गौरी घनश्यामको ' बाबा ' कहती थी । जनार्दनने कहा—एमा अच्छी है या गौरी अच्छी है, बेटी । इस पर गौरीने कहा—नहीं, एमा अच्छी नहीं, गौरी ही अच्छी है । तुम गौरीको ही प्यार करते हो क्यों न दादा ? "

" हाँ "

" किन्तु बाबा एमा बनाना चाहते हैं । "

जनार्दनने पूछा—" तुम क्या चाहती हो बेटी ? "

गौरीने कहा—" मैं भी गौरी ही रहना चाहती हूँ । मैं तुमको चाहती हूँ । बाबाको भी चाहती हूँ—फिर क्या यह समझते हो कि मैं एमा बनना नहीं चाहती । सयानी होने पर दादा, मैं फिर एमा न बनूँगी, केवल गौरी ही रहूँगी । बाबा नाराज तो न होंगे ? "

जनार्दनने कहा—"सयानी होने पर क्या कोई नाराज होता है ? "

गौरीने कहा—"तो सुनो दादा, चुपके चुपके तुमसे कहती हूँ—

बाबासे कह मत देना—समझे ? सयानी होने पर—बाबा तो नाराज न होंगे—क्यों ? तब देखना, मैं एक दिन भी एमा न बनूँगी, खाली गौरी ही रहूँगी । बाबाके निकट भी गौरी रहूँगी । बाबा नाराज तो न होंगे ? "

जनार्दनने कहा—"सयानी होने पर तेरा ब्याह होगा, वर आवेगा । "

गौरीने पूछा —"कौन वर आवेगा दादा ? वह तो एमा बननेके लिए न कहेगा ? मैं एमा बनना पसन्द नहीं करती, गौरी ही रहना पसंद करती हूँ ।

वृद्ध जनार्दनने मुस्कुरा कर कहा—"नहीं, तू जैसा गौरी रहना पसन्द करती है, ठीक वैसा ही शिवकी तरह तेरे लिए वर लाऊँगा ।"

"हाँ," ऐसा ही लाना । खूब मोटा हो, जटा बँधा हो, बाघकी छाला पहने हो । मैं शिवको बहुत चाहती हूँ, दादा । तो वे साँप तो फुफकार कर न काटेंगे ? "

जनार्दनने कहा—"नहीं रे क्या शिवके साँप शिवकी बहूको ही काटेंगे । वे तुझे मा कहेंगे ।"

गौरीने कहा—ओ मा, क्या होगा, तो क्या मैं साँपोंकी मा मनसा देवी हूँगी ? गौरी रहनेमें ही कल्याण नहीं फिर मनसा !"

पोती-पितामहमें इस तरहकी बहुत बातें होती रहती थीं ।

गौरी सयानी होने लगी। पितामहने गौरीको अनेक श्लोक और स्तव सिखाये। उनके पूजा-पाठके वख्त गौरी उनके पास बैठ कर स्तव पढ़ती थी। यदि कोई उनसे भेट करने आता तो जनार्दन बड़े गौरवके साथ पोतीसे उनको स्तव सुनवाते। पोतीका हाथ पकड़ कर वे दोनों वक्त देवालयमें जाकर प्रणाम करते। पोतीसे अञ्जलि दिलाते। और स्वयं उसके सामने बैठ कर उससे छोटे छोटे व्रत कराते।

घनश्याम इन बातोंसे बहुत रुष्ट होता और मन ही मन दुखित होता कि बुड्ढेने एक बारगी लड़कीका सिर बिगाड़ दिया। ये सब कुसंस्कार-पूर्ण नेटिव भाव यदि बालिकाके कोमल तरल मनमें एक बार जम जायँगे तो उनको निकालना दुःसाध्य होगा। हाय! हाय! अपने ऐसे ऊँचे आदर्श पर वे अपनी कन्याका जीवन भी नहीं गठित कर सकते। कैसा दुर्भाग्य है! कन्याकी कोमल हृदय-भूमिमें वृद्ध जो कंटाकित जंगल पैदा कर रहे हैं, फिर क्या वे उस जंगलको नष्ट कर उस जगह विलायती फूलोंका बाग लगा सकेंगे? किन्तु उपाय नहीं। बूढ़ा बड़ा जिद्दी है! उसके पास बहुत धन-सम्पत्ति है, इस लिए यह सब न सहनेसे काम न चलेगा? देखा जायगा! बुड्ढा अमर तो है ही नहीं। एमाके सुधारनेमें कष्ट होगा, पर चेष्टासे क्या नहीं हो सकता?

आठवाँ परिच्छेद।

गौरी-दान।

गौरीकी अवस्था इस समय आठ सालकी है। जनार्दनकी यह खास इच्छा थी कि वे गौरीका ब्याह किसी ऐसे नवयुवकसे करें जो गौरीके जैसा ही हो। किन्तु गौरीसे उन्होंने कहा था कि वे उसके लिए शिवके जैसा वर ला देंगे। इस समय ऐसा वर उन्हें कहाँ मिल सकता है? उन्होंने अनेक लड़के देखे, किन्तु उनमें शिवके जैसा उन्हें कोई न देख पड़ा। इस ओर गौरीको आठवाँ वर्ष भी खतम होने चला। वृद्ध जनार्दनको बड़ी चिन्ता हुई।

इसी समय सार्वभौम ठाकुर जयरामपुर आये। वे वहाँ अपने किसी एक शिष्यके घर पर ठहरे। उस शिष्यके घरमें मेनकाकी बाल्यकालकी परिचिता दूरके नातेकी

बहन (मामाकी लड़की) थी । मेनकाको सहसा उसकी याद हो उठी । उसने अपनी लड़कपनकी संगिनी सखीके लिए कुछ आम, कटहल, मावा, लड्डू आदि वस्तुएँ मदनके हाथ देकर उसे सार्वभौम ठाकुरके साथ भेज दिया ।

सार्वभौम ठाकुरसे जनार्दनका पहलेका परिचय था । सुपण्डित और साधु पुरुष मान कर जनार्दन सार्वभौम ठाकुर पर विशेष श्रद्धा रखते थे । सार्वभौम ठाकुर जब जब जयरामपुर आते थे तब तब जनार्दन सदा-सर्वदा उनके पास जाकर धर्मकी आलोचना करते थे ।

सार्वभौम ठाकुरके आनेके दूसरे दिन सबेरे, जनार्दन और सार्वभौम बैठकखानेके बरांडेमें बैठे हुए बातें कर रहे थे । इसी समय मदनने मुस्कुराते हुए आकर कहा—" दादा, दादा, यह देखो । "

दोनों बूढ़ोंने देखा, मदनके गलेमें मालाकी तरह एक मरा हुआ भयानक साँप लटक रहा है, सिरमें भी उसने इसी तरह एक साँप लपेट रक्खा है, और हाथमें उसके एक बड़ी लाठी है । मदनकी अवस्था उस समय १७ वर्षकी थी । उसका शरीर बलवान्, गँठीला और लम्बा-चौड़ा था । वह तरुण युवक था । उसका वर्ण उज्ज्वल, गौरा था । उसके उज्ज्वल मुख पर, उज्ज्वल आखोंमें हँसी खेल रही थी । बिखरे हुए घने कुंचित केस साँपके किरीटसे शोभित थे, पुष्ट-बलिष्ठ खुली देह साँपकी मालासे शोभित थी । धोतीकी लाँग चढ़ी हुई थी ।

जनार्दन इस अनुपम मूर्तिको देख कर मुग्ध हो उठे । गौरी उनके पास ही बैठी थी । वह हँस कर बोल उठी—" दादा, दादा यही तुम्हारे शिव हैं ! "

मुग्ध जनार्दनने आनन्दसे गौरीको छातीसे लगा कर कहा—" यही है बेटी, यही है ! "

मदनने कहा—" यह देखो दादा, कैसे दो जहरीले साँप मार लाया हूँ ! "

सार्वभौमने कहा—" तुमने बड़े दुःसाहसका काम किया है । "

मदनने मुस्कुरा कर उत्तर दिया—दुःसाहसका क्या काम दादा ? हाथमें लाठीके रहते क्या साँपसे डरता । और लाठी न भी होती तो क्या ? यदि एक बार पूँछ पकड़ सकूँ तो फिर साँप जा कहाँ सकते हैं ? दस बीस साँपोंका तो मारना ही क्या, दो बार घुमाया और जमीन पर पटका कि काम तमाम हुआ । एक दिन क्यों, तुम्हारे सामने भी तो एक साँप पूँछ पकड़ और पटक कर मार डाला था, याद नहीं है ? "

सार्वभौमने कहा—" वह ठीक है। अच्छा तो अब जाओ बेटा, साँपोंको फेंक कर स्नान करो। साँपोंको मार कर इस तरह गले और माथेमें कभी न पहना करो।

मदनके चले जाने पर जनार्दनने कहा—" सार्वभौम ठाकुर ! "

सार्वभौम बोले—" क्यों मैत्र महाशय ? "

जनार्दन बोले—" यह लड़का कौन है ? "

सार्वभौम ठाकुरने जनार्दनको मदनका सब परिचय दिया।

जनार्दनने कहा—" सार्वभौम ठाकुर मेरी गौरीको देख रहे हो। तुम्हारे इसी शिवको मैं गौरीदान देना चाहता हूँ। "

सार्वभौमने कहा—" हाँ, यह शिव ही इस गौरीके योग्य है। पर इस विषयमें बालककी माताके साथ परामर्श कर लेना भी आवश्यक है। "

जनार्दनने कहा—" किन्तु आप ही तो इसके अभिभावक हैं ? आप यदि यह सम्बन्ध स्थिर कर लेंगे तो क्या वे इंकार करेंगी ? "

सार्वभौम ठाकुरने कहा—" नहीं, बहू तो मैं जैसा कहता हूँ वैसा ही करती है। मदनके ऊपर मेरा सम्पूर्ण अधिकार है। "

जनार्दनने कहा—" तो फिर क्या ? आप कह दीजिए कि मेरी गौरीको आप अपनी बहू बनावेंगे। मैं निश्चिन्त होऊँ। "

सार्वभौमने कहा—" अच्छी बात है, ऐसा ही होगा। गौरीके साथ ही मदनका ब्याह कर दूँगा।

जनार्दनने कहा—गौरीका आठवाँ साल पूरा हो रहा है। अगले महीनेमें ही मैं उसका ब्याह कर देना चाहता हूँ। "

सार्वभौम ठाकुरने यह भी स्वीकार कर लिया। एक ही दिनमें, एक ही बैठकमें, एक ही बातमें विवाहकी सब बातें स्थिर हो गईं।

सार्वभौम और जानार्दन दोनों ही पुराने जमानेके मनुष्य थे। लड़कोंके बी० ए०, एम० ए० होने और दहेज आदिके ठहरानेकी बातें वे न जानते थे। दोनोंने ही समझा, योग्य वरसे योग्य कन्याका ब्याह होगा। और अधिक बातें निष्प्रयोजन हैं। एक ही बातसे सम्बन्ध स्थिर हो गया।

जनार्दनने पोतीके विवाहके सम्बन्धमें पुत्रका मतामत जाननेका कोई प्रयोजन न समझा। वे विवाह-सम्बन्ध स्थिर करके दिन देख कर विवाहकी तैयारी करने लगे।
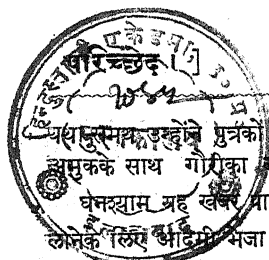
यथासमय उन्होंने पुत्रको खबर दी कि अमुक दिन, अमुक स्थानके, अमुक घरके, अमुकके साथ गौरीका ब्याह होगा तुम समय पर शीघ्र घर आ जाना ।

घनश्याम यह खबर पाकर जल गया । उसने उसी समय शूलपाणिको बुला लानेके लिए आदमी भेजा और शूलपाणिके आते ही उसने पिताको अँगरेजीकी चुनी चुनी बहुत गालियाँ दीं और पिताकी मृत्युके लिए हजार बार कामना की ।

शूलपाणि भी सुन कर सन्नाटेमें आ गये । किन्तु कोई उपाय नहीं था। इस विवाहको रोकना और घनश्यामको सम्पत्तिसे वंचित करना एक ही बात है । उन्होंने जरा सोच-विचार कर कहा—" और क्या करोगे ? विवाह रोकना असम्भव है । समझाने-बुझानेसे कुछ न होगा । ज्यादती करने पर हरगोपालकी तरह तुम्हारी भी दशा होगी । घर जाओ, शान्त-भावसे विवाह देख आओ । बुड्ढेको नाहक नाराज न करना । "

" घर जाऊँगा ! कभी नहीं । उस समय मौजूद रह कर मैं इस विवाहका अनुमोदन कभी न करूँगा । यदि ऐसा करूँगा तो भविष्यमें मैं इस विवाहको कभी नामंजूर न कर सकूँगा । "

" तो फिर इस विवाहको तुम मंजूर न करोगे ? "

" करूँगा नहीं ! तुम सोचते क्या हो शूलपाणि, एमाको कभी मैं विवाहिता समझूँगा ? यदि कभी वह मेरे अधिकारमें आ गई और मैं अपने आदर्श पर उसका जीवन गठित कर सका तो किसी योग्य लड़केसे उसका फिर विवाह कर दूँगा ।

शूलपाणिने और कुछ न कहा । घनश्याम कन्याके विवाहमें घर न गये । न उन्होंने कोई पत्र ही लिखा । जनार्दनने पुत्रकी अनुपस्थिति और असन्तोषकी ओर ध्यान न दिया । यथा-समय मदनके साथ गौरीका विवाह हो गया ।

विवाहके एक वर्ष बाद जनार्दनकी मृत्यु हो गई । फिर घनश्यामकी बन आई । श्राद्धके बाद ही स्त्री और कन्याको लेकर वे कलकत्ते चले आये । स्त्रीको उन्होंने बीबी बनाया और कन्याको बीबीकी लड़की बना कर किसी ईसाई स्कूलमें भरती कर दिया । गौरीके दादा अब नहीं रहे थे और वह स्वयं भी सयानी नहीं हुई थी । इस लिए पिताके इच्छानुसार उसे अब एमा बनना पड़ा । विवाह और द्विरागमनके समय वह केवल ५।६ दिन ससुरालमें रही थी । इस लिए सुसराल-सबन्धी याद उसे बहुत कम थी । फिर भी मदनकी जो उज्ज्वल मुस्कुराती शिव-मूर्ति उसके बालिका-हृदयमें अंकित हो गई थी वह सहज ही मिटनेवाली न थी ।

मेनका ये सब बातें सुन कर बहुत नाराज हुई । बहूको लानेके लिए उसने कलकत्ते आदमी भेजा । किन्तु घनश्यामने कहा—उस असभ्य गँवार घरानेसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं है । उनके पिताने क्या किया है, उनको मालूम नहीं । उन्होंने स्वयं अपनी कन्याका विवाह वहाँ नहीं किया । वे उनकी कन्याको अपनी बहू कहनेकी साध न रक्खें । इसी प्रकार और भी कितनी बातें सुना कर और अत्यन्त कटु वाक्योंसे तिरस्कार कर उन्होंने मेनकाके भेजे हुए आदमीको घरसे निकाल दिया—जरा बैठने तकके लिए भी न कहा ।

यह देख कर मेनकाने घनश्यामको लगा तार कई दिन तक गालियाँ दे दे कर सारे महल्लेको सिर पर उठा लिया । गाँव भरमें उथल-पुथल मचा दी । किन्तु घनश्याम और घनश्यामकी स्त्रीके कानों तक उन गालियोंके पहुँचनेकी कोई सम्भावना न थी । वृद्ध जनार्दन परलोकमें है; मेनका स्वयं एक बार उनके पास जाकर आ नहीं सकती । फिर भी आकाश और वायुमें मिल कर ये गालियाँ वहाँ तक पहुँची या नहीं यह वे ही जानें, जो इस लोक और परलोकके स्वामी हैं ।

दो एक सालके बाद ही घनश्यामकी स्त्री मोक्षदा सुन्दरीकी भी मृत्यु हो गई । घनश्यामने दूसरा विवाह नहीं किया । किन्तु कन्याकी देख-रेख और उसके पढ़ानेको उन्होंने विलायतसे लौटी हुई मिस बनर्जी नामकी एक प्रौढ़ा कुमारीको नौकर रख लिया ।

माताके अभाव और मिस बनर्जीके प्रभावसे एमा बीबियाना साज-बाज और चाल-व्यवहारमें खूब अभ्यस्त हो गई । अब वह श्रीमती गौरी देवी नहीं रही । वह अब मिस एमा मयटार है । घनश्यामने अपनी मैत्र पदवीको ज़रा बदल कर उसे साहबी "मयटार" में नामान्तरित और रूपान्तरित कर दिया है ।

किन्तु विवाहिता कन्या मिस क्यों कर होगी ? बात यह है कि घनश्याम कन्याका विवाहा जाना ही स्वीकार नहीं करते हैं । और वे इसके लिए भी बड़ी सावधानी रखते हैं कि कन्या भी अपनेको विवाहिता न समझे, और उसे स्वामी तथा सुसरालकी याद कभी न आये ।

इधर मेनका ठकुरानीने मदनका दूसरा ब्याह कर देनेकी बहुत चेष्टा की । किन्तु मदनने किसी तरह ब्याह न किया । और विवाहिता स्त्रीको भी पुनः प्राप्त करनेकी कोई चेष्टा न की । बीबी बहूका स्मरण आते ही वह भयभीत हो उठता था ।

नवम परिच्छेद ।

माणिककी नौकरी ।

मदनका विवाह हुए २।३ साल बीत गये हैं । मदन और माणिक इस वक्त जिलेके स्कूलमें, प्रथम श्रेणीमें, पढ़ते हैं । पर शहरमें रहने पर भी उनका सीधा सादा देहाती जीवन कुछ भी नहीं बदला है । अब भी वे नंगे पाँव और नंगे बदन आस-पासके गाँवोमें रास्तोंमें और मैदानोंमें घूमते फिरते हैं, खेलते कूदते हैं, घोड़ेकी सवारी करते हैं, पेड़ों पर चढ़ते हैं, और नदी तैर कर इस पार से उस पार पहुँचते हैं । किसीके घर आग लग जाने पर सबसे पहले कमर कसकर घरकी छतपर चढ़ जाते हैं, किसीके मरने पर धोती ले श्मशान जाते हैं और मारपीट होने पर दुःखीकी रक्षाके लिए लाठी ले सबसे पहले जा लपकते हैं । उनकी नोजवानीके स्वस्थ सुपरिपुष्ट और बलिष्ठ शरीर तथा साहस और तेजभरे सरल हृदयकी उद्दाम राजसिक शक्ति द्वारा कभी कोई सताया न जाता था, बल्कि विपदके वक्त अनेकोंका उपकार ही होता था । इधर वे अपने दरजेकी पढ़ाईमें भी कमजोर न थे । वे मास्टरोंका हुक्म बजाते हैं और उनका कभी अपमान नहीं करते, घाट–बाट पर उपद्रव कर शहरके लोगोंको तंग नहीं करते । इसलिए शिक्षक और अन्यान्य भले आदमी उनपर स्नेह रखते थे ।

इस प्रकार दिन बीत रहे थे । एक दिन किसी जलसेमें मारपीट हो जानेसे जलसा बन्द हो गया । कुछ लोगोंके सिर भी फूटे । लड़कोंकी जमात एक तरहसे खुश थी । मदन और माणिक लड़कोंके सर्दारकी हैसियतसे पकड़े गये । असलमें, किसीने उनको पकड़ा न था बल्कि उन्होंने ही तहकीकातके वक्त निडर हो मुक्त-कंठसे अपना दोष स्वीकार किया था । स्कूलके इंस्पेक्टरकी आज्ञासे वे स्कूलसे निकाल दिया गये ।

अब कौनसा मुँह ले दोनों घर जावें । इसलिए मदन और माणिक दोनों भग चले ! किन्तु ५।६ महीनेके भीतर ही सार्वभौम ठाकुरके भेजे हुए आदमीने उनको पकड़ पाया । दोनों शर्मसे सिर झुकाये घर पहुँचे । खोया हुआ धन पाकर मातायें कृतार्थ हुईं । किसीको विशेष लांछना सहनी न पड़ी ।

मदनके यजमानी की काफ़ी जमीन और यजमान हैं। उसके दिन आरामसे बीत रहे हैं। किन्तु माणिक अब क्या करे? सद्वंशमें जन्म लेकर और इतर नारियोंकी तरह नौकरी-मजूरीकर, माताने अबतक उसका पालन किया है, पढ़ाई–लिखाईका खर्च जुटाया है। माताके नौकरी-मजूरीसे कमाये हुए पैसेको उसने व्यर्थ खर्च किया। पछतावेसे माणिकका हृदय जल रहा था, किन्तु किसीके दोषसे हो, जो होना था, सो हो चुका, उसके प्रतिकारका कोई उपाय नहीं। अब वह २०।२१ वर्ष का हो, इतनी बड़ी देह लिये घरमें बेकाम बैठा बेशरम बन माताकी मिहनतसे मिले अन्नको कैसे मुँहमें डाले? धिक्कार है उसकी जिन्दगी को! उपास करके मर जाना भी इससे अच्छा है। किन्तु वह करे भी क्या? लिखना–पढ़ना सीखने की अब सम्भावना नहीं। थोड़ीसी विद्यासे उसे कौनसी नौकरी मिलेगी? नौकर ही उसे कौन रक्खेगा?

चिन्ता करते करते माणिकने कई वर्ष बिताये। मदन चेलोंके घर गया है, माणिक अकेला है, इस लिए उसका मन बहुत उदास रहता है। एक दिन माणिक नदीके किनारे बैठा बैठा बहुत देरतक एकाग्र मनसे कुछ सोचता रहा। सोचते सोचते उसका चिन्तित उदास मुख खिल उठा। बहुत दिनों की असुख समस्याके बाद मानों किसी सुखसिद्धान्तपर पहुँचनेसे मनमें अनिर्वचनीय शान्ति और आनन्द मालूम हुआ। माणिक उठकर घर गया। दूसरे दिन सवेरे खा–पीकर कहीं चला गया। शामके बाद थका हुआ घर लौटा और माँको एक रुपया दिया।

माताने आश्चर्यमें आकर पूछा–"यह क्या माणिक! रुपया कहाँ मिला? दिनभर कहाँ था?"

माणिकने मुस्कुराकर उत्तर दिया–"रुपया कमाकर लाया हूँ। कमानेके लिए काम करनेको बाहर जाना पड़ता है न। इसीसे दिनभर बाहर था।"

"कमाकर लाया है! कहाँसे? कौनसा काम करके? एक दिनमें ही एक रुपया पा गया, ऐसा क्या काम तुझे मिल गया?"

माणिकने कहा–"इस वक्त कुछ भी न बताऊँगा माँ। मदन दादा जब चेलोंके यहाँसे लौट आवेंगे तब बताऊँगा। इस वक्त मुझसे न पूछो। तुम अबसे दूसरोंके घर काम-काज करने न जाना। रोज मैं एक रुपया, सवा रुपया या डेढ़ रुपया ला सकूँगा। इससे हमारा तुम्हारा अच्छी तरहसे गुज़ारा होता जायगा।"

जया कुछ समझ न सकी । बहुत विस्मयपूर्वक चुपचाप कुछ चिन्ता करने लगी । माणिक क्या करता है ? ऐसा क्या काम उसे मिल गया, जिससे एक रुपया डेढ़ रुपया रोज़ ला सकेगा ?

जयाको चुपचाप चिन्ता करते देखकर माणिकने कहा–" माँ तुम क्या सोच रही हो ? डरनेकी कोई बात नहीं । मैंने चोरी-चकारी या डकैती नहीं की है, भीख भी नहीं माँगी है । "

जयाने कहा–" चोरी-चकारी या डकैती नहीं की है, ऐसा नहीं करेगा, यह जानती हूँ । पर मैं कुछ समझ नहीं पाती; तू कुलीका काम या मजूरी तो नहीं करता ? "

" तो ऐसी घबराती क्यों हो माँ ? मदन दादाको आने दो न । सब मालूम हो जायगा । "

" तो यही किया है, यही करना ठीक किया है ? "

माणिकने फिर मुस्कुराकर कहा–"यदि यह भी करूँ तो इसमें ऐसा दोष क्या है माँ ? तुम दूसरोंके घर मजूरी नहीं करती ? अब सयाना हो गया हूँ, फिर भी तुम मजूरी कर मुझे पाल रही हो, इसकी अपेक्षा क्या कुली-मज़ूरका काम करना मेरे लिए अच्छा नहीं ? "

" माणिक ! "

जयाकी आँखें भर आईं ।

माणिकने कहा–" रोती क्यों हो माँ ? जब तुमने किसीका गलग्रह न हो, स्वाधीन भावसे अबतक मिहनत-मजूरीकर मुझे खिलाया-पिलाया है, इतना बड़ा किया है, तो अब मैं क्या मिहनत-मजूरीकर तुम्हारी परवरिश न कर सकूँगा ? भले आदमियोंके लड़कोंकी तरह मुझे नौकरी न मिलेगी । अब सयाना हो गया हूँ, शरीर है, शरीरमें शक्ति है । फिर इस शरीर और शरीरकी शक्तिको लिये मैं घर बैठा रहूँ, और तुम दूसरोंके घर मजूरीकर मुझे खिलाओ, इसकी अपेक्षा क्या मज़दूरी करना मेरे लिए अधिक कष्टकर है ? मिहनतकर खानेसे, काम-काज करके लड़केकी परवरिश करनेसे, यदि तुम्हारी हीनता नहीं हुई है तो मज़दूरीकर स्वयं खाने और माँको खिलानेसे मेरी हीनता कैसे होगी ? मैं अब सयाना हूँ, मिहनत-मजूरीकर तुम्हें खिला दूँगा । मजूरी करनेसे मेरी वैसी हीनता न होगी जैसी अब

तुम्हारी मजूरीकी कमाई द्वारा बैठे बैठे पेट पालनेसे। माँ, बहुत दिनोंसे तुम बराबर काम-काज करती आरही हो। कभी ज़रा भी हीनता स्वयं सह न सकी। एक पैसेके लिए भी कभी किसीका मुँह न जोहा। आज अपने लड़केको ऐसी हीनतामें डुबाओगी? मेरे शरीरमें सामर्थ्य होते हुए भी मिहनत-मजूरीकर मुझे खिलाओगी?

माणिकका कहना जयाको युक्तियुक्त मालूम हुआ। उसने धीरे धीरे आँखें पोंछ-कर और लम्बी साँस छोड़कर कहा—"तो मज़दूरी ही करेगा?"

"हाँ माँ?"

कालिकापुरसे ४।५ मीलकी दूरीपर नदीके किनारे एक बड़ा रेलवे स्टेशन और बन्दरगाह है। वहाँ बहुतसा माल चढ़ता-उतरता है। वहाँ बहुतसे कुली-मजूर काम करते हैं। माणिकने आज कुलीका वेश धारणकर वहाँ माल चढ़ाया-उतारा था और इस कामसे एक रुपया कमा लाया था। पहले दिन अभ्यास न होनेसे अधिक मिहनत न कर सका था, किन्तु उसने सोचा था कि वह धीरे धीरे और भी अधिक मिहनत कर सकेगा, और और भी अधिक पैदा कर सकेगा। उसने स्थिर किया था कि जबतक और कोई सुविधा न होगी तबतक इसी तरह कुलीका ही काम करेगा। माँको माणिकने सब समझा दिया।

जयाने कहा—"बेटा, मैं खुद पानी भरकर, रसोई बनाकर, धान कूटकर पैसे ला दूँ और तू बैठा बैठा खाया करे, ऐसा मैं नहीं कह सकती। सच ही शरीरके रहते तू इस तरह हीन बनकर क्यों रहेगा? किन्तु बेटा, यह जिन्दगी क्या तुझे कुलीके काममें ही काटनी पड़ेगी?

"जिन्दगी भर कुलीका काम क्यों करता रहूँगा माँ? कमाईसे थोड़ा-बहुत बचाया करूँगा। हाथमें कुछ पैसा आजानेपर खेती-बाड़ी या कोई रोजगार ही कर लूँगा।"

जयाने कहा—"तो मैं भी और कुछ दिन काम-काज करूँ, दोनों जनोंके काम-काज करनेसे पैसा अधिक मिलेगा, अधिक बचत होगी। इससे जल्दी ही तेरे रोज-गारके लिए रुपया जुट जायगा।"

माणिकने कहा—"नहीं माँ, अब तुम्हें मिहनत करनेकी जरूरत नहीं। जल्दी न जुटेगा, तो दो दिन देरसे ही सही।"

जयाने कहा—"बेटा, मैं तुझे कुलीका काम करनेको मना नहीं करती हूँ।

तू भी मुझे न रोक। इतने दिन काम-काज किया है, और भी कुछ दिन करूँ। तेरे रोजगारके लिए रुपया जुट जाय तो यह कुलीगिरी छूटे। बिलकुल मजबूर होनेसे तेरा यह दण्ड मुझे सहना होगा, नहीं तो मैं क्या एक दिन भी सह सकती ?"

माणिकने कहा—"यह क्या दण्ड है माँ ?"

जयाने कहा—"माणिक, और कुछ न कह माँके हृदयको तू क्या समझे ? मुझे अब पीड़ा मत पहुँचा।"

माणिकने और कुछ न कहा। जया उठीं और माणिकके लिए खाना परोसने गईं।

माणिक रोज़ सबेरे खा-पीकर काम करने जाता था, और रातको लौट आता था। गाँवके लोगोंको यह मालूम न हो सका कि माणिक कुलीगीरी करता है। वह छद्मवेशमें कुलीका काम करता है। वह गाँवके परिचित लोगोंका भी सामान चढ़ाता-उतारता था, पर कोई उसे पहचान न पाता था। माणिक स्वयं अपनेको इस तरह छिपानेकी ज़रूरत न समझता था। किन्तु इस बातकी आलोचना होनेसे माताको कष्ट पहुँचेगा, इस खयालसे माणिक छद्मवेशमें कुलीका काम करता था।

कुछ दिनोंके बाद मदन घर आया। माणिकने उससे सब कहा। मदन हाल सुनकर पहले दुःखित हुआ। उसने माणिकको मना करना चाहा; किन्तु क्या कहकर वह मान करे ? माणिकको वह नौकरी भी नहीं दिला सकता। मनका बड़ा उदार है; पर घरमें नक़द रुपया नहीं। माणिकको रोज़गार करनेके लिए वह पूँजी भी नहीं दे सकता। माणिक और जयाको अन्न वस्त्र देकर वह उनका प्रतिपालन कर सकता है सही, किन्तु किस मुँहसे वह माणिकको ऐसी बात कहे ? कहे भी पर वे उसका गलग्रह क्यों बनाना चाहेंगे ? मदनने उसे मना नहीं किया; किन्तु उत्साहपूर्ण वाक्योंमें कहा-"अच्छा माणिक, तुम जो करते हो करो। लोग चाहे जो खयाल करें, मनुष्यतामें तुम ऐसे ओछे न होगे। जो मनुष्यकी तरह मनुष्य हैं वे अन्नवस्त्रके लिए दूसरेके गलग्रह न हों, दूसरोंसे अनुग्रहकी प्रार्थना न कर, स्वाधीन भावसे, अपनी शक्ति लगा जो कोई काम करते हैं; उससे वे छोटे नहीं होते।

"जिसका मन छोटा है, वह राजा होकर भी छोटा है। जिसका मन बड़ा है, वह कुली होकर भी राजा है।"

मदनके अनुमोदन करनेसे माणिक बहुत खुश हुआ।

इस प्रकार कोई एक वर्ष बीत गया। एक दिन उसी बन्दरके नीचे एक जाली बोटपर बैठे एक साहब और मेम जा रहे थे। माणिक उस वक्त बेकाम था। वह नदीके किनारेपर खड़ा होकर साहबके नाव चलानेकी कुशलता देख रहा था। आकाशमें बादल घिरे हुए थे। सहसा आँखोंमें चकाचौंधकर बिजली चमकी। बड़े गड़गड़ाहटके साथ वज्रध्वनि हुई; हवाने जोर पकड़ा। साथ ही साथ मूसलधार वृष्टि होने लगी। एक बड़ी पालवाली नाव तीरकी तरह आई और चक्कर खा जाली बोटसे टकरा गई। जाली बोट उलट गया। साहब मेम पानीमें जा गिरे। माझियोंके सँभलनेके पहले ही पालवाली नाव फिर ठीक होकर सहसा दूर निकल गई। किनारेके सब लोग हाहाकार करने लगे। किन्तु ऐसे तूफानके वक्त किसीने पानीमें कूदकर साहब और मेमको बचानेका साहस न किया। माणिक जरा भी विलम्ब न कर पानीमें कूद पड़ा। उसने तैर कर दोनों हाथोंसे साहब और मेमको पकड़ा और उनको उस पार ले गया। यह दुर्घटना उस पारके पास ही घटी थी। किन्तु तैरनेके वेग और तरंगोंके आघातसे माणिकके नकली बाल और डाढ़ी-मूँछ सब बह गये थे, अंगकी मलिनता धुल गई थी! साहब जलमें गिरते ही मददके लिए तीरकी ओर मुँहकर चिल्ला रहे थे। कुली रूपी माणिकको उन्होंने पानीमें उतरते देखा था। कुलीके नकली बाल और डाढ़ी-मूँछ बह चले थे और धुले अंगोंसे उज्ज्वल कान्ति फूट निकली थी। साहबने यह सब देखा था। उस पार कोई दूकान वगैरह न थी। एक आमके पेड़के नीचे, एक टूटी-फूटी कुटियामें, साहब व मेमको साथ लिये माणिक पहुँचा। जरा सुस्थ हो और मेमको सुस्थकर साहबने माणिकसे पूछा—

"बाबू तुम कौन हो?"

माणिकने कहा—"मैं बाबू नहीं, कुली हूँ।"

माणिक अब कुलीके वेशमें न था; विपन्नों की ओर मन खिंच जानेसे अब तक माणिक इस ओर ध्यान न दे सका था। साहबको उत्तर दे चुकनेपर माणिकने सिरपर हाथ रख कर देखा कि नकली बाल सिरपर नहीं हैं। मुँहपर हाँथ रख कर जाना कि नकली डाढ़ी-मूँछ नहीं हैं, शरीरकी ओर देखा, रंग बाबू लोगोंकी तरह ही उज्ज्वल है-कुलीकी तरह इस वक्त नहीं है। शंकित होकर

माणिकने बाहरकी ओर ताका । मेघोंके मढ़े रहने और आँधी पानीका जोर होनेसे ऐसी सम्भावना न थी कि उस पारके लोग उतनी दूरसे उसे पहचान सकें । माणिकने तब मुस्कुराकर साहबकी ओर देखा । साहबने मुस्कुराकर कहा—" अब समझे बाबू ? तुम बाबू होकर कुली बने थे, पर कुलीका सब साजबाज पानीमें बह गया । भले आदमीके लड़के होकर तुम कुली क्यों बने हो ? यह तुम्हें कैसा शौक है ? "

माणिकने कहा—" शौक नहीं है साहब, मजबूरी है । "

" मजबूरी है ? तुम्हारे देशके लोग क्या मजबूर होने पर कुलीगीरी करते हैं ?",

" मुझे तो करनी पड़ी है । "

" यह तो देख रहा हूँ । क्यों किस मजबूरीसे तुम कुली हुए हो ? मुझे सब बताओ; मुझे अपना बन्धु समझना । "

माणिकने सब बातें जी खोलकर साहबसे कहीं ।

नित्यपरानुग्रहप्रार्थी, क्लार्कीके उम्मेदवार बंगीय युवकमें ऐसी आत्मनिर्भरता, जैसी पहले देखी सुनी न थी, देखकर सहृदय साहब बहुत सन्तुष्ट हुए । माणिकके पुरुषोचित देहसौष्ठव और विपन्नोंकी रक्षाके लिए ऐसा वीरोचित दुःसाहसिक कार्य करनेसे साहब इसके पहले ही मुग्धचित्तसे उसकी ओर आकृष्ट हो गये थे । अब आदर और स्नेहसे माणिक का हाथ पकड़ आनन्द और कृतज्ञता प्रकट करते हुए बोले—" बाबू, मैं एक बड़ी दूकानका मैनेजर हूँ । तुम्हारे जिलेके शहरमें हमारी एक बड़ी दूकान है । मैं वहीं रहता हूँ । मैं तुमको दूकानमें नौकरी दे सकता हूँ । कमसे कम चालीस रुपये माहवार मैं दे सकूँगा । तुम बड़े चतुर और साहसी हो, इससे तुम जल्दी ही तरक्की भी पा सकोगे । तुम यह नौकरी कर लो । शायद तुम्हारी माँ इस कामसे खुश होंगी ।

मेम साहबने भी कहा—" हाँ बाबू तुम यह नौकरी कर लो । तुम्हारी माँ तुम्हें कुलीका काम करते देखकर कभी सुखी नहीं हो सकतीं । तुम्हारी माँ हम लोगोंको आशीर्वाद देंगी । तुमने आज हम लोगोंके प्राण बचाये हैं । तुम्हारा सामान्य उपकारकर तुम्हारी माँके आशीर्वादसे हम लोग सुखी होंगे ।

माणिकने नौकरी करना कबूल किया । आँधी-पानीका ज़ोर कम हो जानेपर माणिकने एक नाव बुला साहब और मेमको उस पार पहुँचा दिया । नावके मल्लाहने पूछा—"बाबू, वह कुली कहाँ गया ?"

माणिकने जवाब दिया-"कुली डूब कर मर गया, मैं उस पार था, मैंने साहब और मेमको पकड़कर किनारे लगाया।

साहब और मेम दोनों मुस्कुराये। माणिकको धन्यवाद दे वे दोनों स्टेशनकी ओर गये। माणिक यह आनन्दकी खबर लिये घर पहुँचा।

दो एक दिनके बाद ही माणिक नौकरीके लिए जिले के शहरको चला गया। माणिकके नौकरी पा जानेके बादसे जया काम काज नहीं करतीं। माणिक अब नौकरी करता है, लोगोंमें गण्यमान्य हो गया है। अब क्यों वे दस घरोंमें काम-काजकर उसका मुँह छोटा करें?

अनेक दुःखोंके बाद पुत्रगौरवसे गौरविनी जननी अपने समाजमें अपना स्थान पाकर धन्य हुई।

और दो तीन वर्ष बीत गये। माणिककी तनख्वाह अब चालीस रुपयासे पचास रुपया हो गई है।

जयाने माणिकका विवाह करना चाहा; किन्तु माणिकने विवाह न किया। मदन दादाके बहू नहीं, वह बहूके साथ कैसे गृहस्थी करे? यदि मदन दादा कभी बहूको घर लायँगे या अपना दूसरा व्याह करेंगे तो माणिक भी तब व्याह करेगा; पहले नहीं। जयाने भी फिर अधिक जिद न की।

यहाँ हमारी पूर्वकी बातें भी पूरी हो गई। पाठक स्मरण रक्खें कि हम इस आख्यायिकाके आरम्भमें वर्णित घटनाके समयकी ओर आ पहुँचे हैं।

दसवाँ परिच्छेद।

ब्राह्मण तलवाहा।

एक दिन शामको मदन अपने आँगनमें एक नारियलके पेड़से जरा टिक कर खड़ा खड़ा तमाकू पी रहा था। ८।९ वर्ष पहले मदनके वेशविन्यासहीन, स्वभाव सुन्दर, खिलते हुए चेहरे और पुरुषश्रीको देखकर मुग्ध जनार्दनने अपनी एकमात्र लाड़िली गौरीको उसे सौंपा था। वह श्री अब पूर्ण रूपसे विकसित हुई है। दीर्घ, उन्नत, पूर्णायत, सुगठित बलिष्ठ नग्न देह पर पुरुषत्वकी पूर्णश्री धारण किये मदन

खड़ा है। वह श्री अब भी वैसी ही स्वभावसुन्दर है, उसमें वेशभूषाका चिह्न भी नहीं है। सिरके घूँघरवाले घने बाल अब भी बिखर रहे हैं, काँछनी अब भी चढ़ी है। मदन इस समय भी वैसा ही शिव है, अन्तर केवल इतना ही है कि इस समय छातीपर साँपकी माला नहीं है, उसकी जगहपर शुभ्र यज्ञोपवीत है। आयत लोच-नोंमें वही हास्यपूर्ण दृष्टि है, मूँछ मुड़े चेहरेपर घनी डाढ़ी वीर, श्रीमय एक तेजो-दीप्त पौरुषका भाव प्रकट कर रही है।

हाय गौरी! यदि तुम एक बार इस देहाती ब्राह्मण युवककी पुरुष श्री और पूर्ण विकासमय शरीरका गौरव देखती तो कह नहीं सकता, तुम्हारी पिताके घरकी अभ्यस्त एवं कृत्रिम मार्जित रुचि प्रबल स्रोतमें बालूके बाँधकी तरह टूटकर बह जाती या नहीं, मुग्ध हृदयसे तुम स्वामीके चरणोंपर गिर पड़ती या नहीं।

मदन नारियलके पेड़के सहारे खड़ा तमाकू पी रहा था। कुछ दूर पर मेनकाके तेज़ गलेसे निकली हुई तीव्र तिरस्कारकी आवाज़ सुनाई पड़ी। वह आवाज़ जल्दी जल्दीसे पास आ रही थी। मेनका मानों बहुत गुस्सेसे बड़ बड़ाती हुई दौड़ी आ रही थी।

माताके ऐसी जल्दी उत्तेजित हो जानेका कारण मानों मदन कुछ कुछ समझ गया। उसने मुस्कुराते हुए हुक्केको रख दिया और वह बाहरकी ओर ताकता खड़ा रहा। मेनका अग्निमूर्ति हो आग बरसाती हुई जल्दी जल्दी कदम उठाती आँगनमें पहुँची।

"क्यों रे मदना! इन सब बड़े बड़े यजमान–चेलोंको तूने छोड़ दिया! बोल अभागा फिर खायगा क्या?"

मदनने कहा–"खानेकी फिक्र क्या है माँ। शरीरमें जब तक शक्ति है, पृथिवीमें तब तक खाना है, उपास करके न मरूँगा।"

मेनकाने कहा—"ब्राह्मणका लड़का है, पाँवोंकी धूल देगा, और रुपये उठा लेगा। कितना मान है! उस मानको त्यागकर तू मिहनत–मजूरीसे अपना गुज़ारा करेगा?

मदनने जवाब दिया—"शरीरके रहते हुए दूसरेका दान लेनेकी अपेक्षा मिह-नत–मजूरीसे गुज़ारा करना अधिक अच्छा है।"

विस्मित मेनका रोषपूर्वक कुछ देरतक मदनके चेहरेकी ओर ताकती रही।

अनन्तर गरजकर बोली–" दूसरेका दान ! तू भिखारियों की तरह दूसरेका दान लेकर खाता है ? क्या हम लोगोंको वैसे ही दान मिलता है ? शास्त्रमें लिखा है कि देवता और ब्राह्मणमें अन्तर नहीं है । हम लोगोंके दर्शनसे लोगोंको पुण्य होता है। पाँवकी धूल माथेपर चढ़ानेसे पाप कटता है । हम लोगोंको कुछ दान देनेसे लोगोंको अक्षय स्वर्ग प्राप्त होता है। इस पृथिवीमें पुण्य–धर्म सब हम लोग हैं। हम लोगोंके सन्तुष्ट होकर आशीर्वाद देनेसे लोगोंको सुख–ऐश्वर्य्य प्राप्त होता है; हम लोगोंके शाप देनेसे सर्वनाश होता है। ब्राह्मणके मुखसे निकला हुआ वचन वेदवाक्य है। क्या वह मिथ्या हो सकता है ? इस जन्ममें कोई चाहे मिथ्या भी कर दे, पर अगले जन्ममें तो उसका फल मिलेगा ही सही। क्या हम लोगोंको कोई वैसे ही दान देता है। मरनेका डर नहीं ? परकालका डर नहीं ? "

माताके मुखसे ब्राह्मण–माहात्म्यकी इस प्रकारकी व्याख्या सुनकर मदन कुछ मुस्कुराया और बोला–"तो मा, जो ऐसे ब्राह्मण हैं, सच मुच ही वे देवतुल्य हैं। जो स्वयं पण्डित और धार्मिक हैं । दूसरोंको शास्त्र और धर्म सिखाकर जीवन बिताते हैं उनकी गुजरके लिए दूसरोंको इन्तजाम करना ही पड़ेगा। उन लोगोंको भी दान लेना ही पड़ेगा। मुझमें क्या गुण हैं, मेरी समझमें नहीं आता क्या मैं ऐसा मातबर ब्राह्मण हूँ जो ढोंगसे पाँच छः सौ शिष्य यजमानोंको ठग हजार दो हजार सालाना ला नवाबी करूँ ? वैसा ब्राह्मण होता तो शामको शाकान्न खानेमें इतना खर्च न लगता । "

" ओ माँ ! यह अभागा क्या बकता है ? इसकी सुध–बुध क्या सब एक बारगी लुप्त हो गई ? अरे क्या हम ऐसे वैसे ब्राह्मण हैं ? साँपकी जाति, फिर छोटी बड़ी क्या ? ब्राह्मणकुलमें जिसने जन्म लिया है, वह देवतुल्य है ही। दूसरे वर्णोंको उसे मानना ही पड़ेगा, उसकी पूजा करनी ही पड़ेगी।"

मदनने कहा—" यदि ब्राह्मणके कुलमें जन्म लेनेसे ही सब बड़े हो सकते, दूसरे वर्णोंकी पूजाके योग्य हो सकते, तो आज हजारों ब्राह्मण म्लेच्छोंकी गुलामी न करते, बाबुओंके लिए मुर्गियाँ न राँधते, रास्ते रास्ते खोमचा लिये न चिल्लाते फिरते। "

मेनकाने देखा कि मदन बिलकुल अनुचित बातें नहीं कर रहा है। उसकी बातोंका उत्तर देना सहज नहीं । उनका स्वर जरा उतरा । किन्तु अपने मतको

त्याग करनेवाली वे नहीं । ज़रा सोचकर बोलीं—" तो आजकल काल खराब है, लोगोंमें वैसी धर्मनिष्ठा नहीं है, देवता ब्राह्मणपर वैसी भक्ति नहीं है, गुजरके मुताबिक मिलता भी नहीं है, इससे पेटके लिए लोगोंको पतित होना पड़ता है । तू क्यों पतित होगा ? तू कैसे कुलमें पैदा हुआ है, सार्वभौम ठाकुर जैसे तेरे दादा हैं, जिनका पैर बड़े बड़े ब्राह्मण छूते हैं । तेरे शिष्य यजमान रुपयोंसे तेरे पाँवोंकी धूल खरीदनेमें अपना सौभाग्य समझते हैं । तू क्या उन सबको छोड़कर, चावल-दाल बेंच और गोरुओंकी रखवालीकर गुज़र-बसर करेगा ?"

मदनने जवाब दिया-" सार्वभौम ठाकुरके पाँवोंकी धूलकी कीमत है । रुपये देकर लोग उसे ख़रीद सकते हैं । मैं कौनसी चीज़ हूँ माँ जो मेरे पाँवोंकी धूल लोग रुपये दे कर ख़रीदेंगे, और मैं बेचूँ गा । धर्म पर भी मेरी कोई अधिक भक्ति निष्ठा नहीं । शास्त्रका अच्छा ज्ञान न होनेसे, प्रकृति शान्त न होनेसे, मैं कट्टर ब्राह्मण भी नहीं । मुझमें न ब्राह्मण जैसी भक्ति-निष्ठा है, न ब्राह्मण जैसी विद्या है, न ब्राह्मण जैसी मेरी शान्त प्रकृति है, जब मुझमें यह कोई भी गुण नहीं है, तब मैं ब्राह्मणपनेका ढोंगकर और लोगोंको ठगकर रुपये क्यों लूँ ? अबतक लिया है, इससे अपनेसे अपना ही मन घृणा करता है । मैं नाम मात्रका ब्राह्मण हूँ, कहनेके लिए केवल ब्राह्मण हूँ, पर असलमें मुझमें ब्राह्मणका कोई भी गुण नहीं । क्यों भूलकर ब्राह्मणके घर जन्म लिया, यह समझमें नहीं आता ?"

मेनकाने कहा-" तूने अनेक पुण्य-तपस्यायें की थीं, इसीसे ब्राह्मणके घर, ऐसे वैसे ब्राह्मणके घर नहीं, सार्वभौम ठाकुरके घर जन्म लिया है । ब्राह्मणकी तरह शास्त्र यदि तूने नहीं पढ़ा तो क्या हुआ, इस वंशकी मर्य्यादा कहाँ जायगी ? और रही भक्तिनिष्ठा सो तो जब तू ब्राह्मणकी चाल बिल्कुल न चलेगा तो भक्तिनिष्ठा होगी कैसे ? मज़ेसे प्रातःस्नान करना, सन्ध्या कर तिलक लगा, स्तव पढ़ते पढ़ते घर आना, रेशमी धोती पहन और रामनामी ओढ़कर पूजाघरमें पूजा करना, शिष्य-यजमानोंके आगे श्लोक-शास्त्र कहना, यह सब तू न करेगा । सिर्फ खा-पीकर सण्ड मुसण्ड जैसा कूदता फिरेगा; हलवाहेकी तरह खेतमें काम करेगा,-और नहीं तो लठैतोंकी तरह लाठी भाँजेगा, या पहलवानोंकी तरह कुश्ती लड़ेगा । और मार-पीटका तो नाम सुनते ही पंख जमा उड़ जायगा ।"

" गुरु पुरोहितका काम मुझे शोभा नहीं देता, इसीसे मैंने छोड़ दिया है माँ ।"

जब धमकाने, नाराज होने और युक्ति पूर्ण बातोंसे कुछ काम चलता न दिखाई पड़ा, तब मेनकाने विनयके साथ कहा—"देख बेटा, अब पागलपन न कर। खेत-खलिहान और गोरु बछड़ोंको छोड़कर यदि कुछ अधिक हो तो दुःखी कंगालों-को खिला। शिष्य-यजमान मत छोड़। और कुछ भक्तिनिष्ठा करे या न करे, तो भी क्रियाकर्म सब शास्त्रके अनुसार करा दिया करे, इतनेसे ही वे सब प्रसन्न रहेंगे। कुलगुरु, पुरोहितको क्या कोई सहज ही छोड़ना चाहता है, बेटा? तूने उनको छोड़ दिया है, यह सुनकर वे लोग वहाँ मेरे पास आ कर कितना रोते थे। उन्हींसे मैंने सुना है, तूने तो मुझसे यह सब कहा ही नहीं?"

मदनने कहा—"वे रो-धोकर बड़ी भूलकर रहे हैं। मैंने उनका हित ही किया है अहित नहीं। मेरे पूजामन्त्रसे उनका धर्म, परकाल कुछ भी नहीं सुधरता। मैंने उनको छोड़ दिया है, अब वे कोई अच्छा पण्डित निष्ठावान् ब्राह्मण खोजकर अपने धर्म-कर्मकी व्यवस्था कर लें। माँ, तुम मुझसे ये सब बातें व्यर्थ कहती हो, तुम मुझसे अब गुरु-पुरोहितका काम न करा सकोगी। मैं हलवाहा, गँवार, मूर्ख चाहे जो होऊँ ढोंग करना नहीं जानता। सीधी-सादी बुद्धिसे जिस कामको बुरा समझूँगा जिस कामको करनेसे अपना ही मन अपनेसे घृणा करेगा, उसे कभी न करूँगा। लोगोंमें चाहे मान रहे या जावे। सब ढोंग सहा जाता है माँ, पर धर्मका ढोंग नहीं सहा जाता। मिहनत मजूरी कर खाऊँगा, पर देवपूजाका खेलकर, सरल शिष्य यजमानोंको ठगकर रुपये ला बड़ा आदमी न बनूँगा।"

मेनकाने कहा—"बेटा, मैं तुझसे बातों और जिदसे पार नहीं पा सकती। तू जो करना चाहेगा करेगा ही। मेरा केवल बकना झकना ही काम है। कहती तेरे भलेके लिए ही हूँ। कितने दिनकी साथी हूँ,—मानसे, अपमानसे, जिस तरहसे होगा, खानेको देगा ही। सार्वभौम ठाकुरका घर बड़े भाग्यसे मिला था, कितना सिर ऊँचा कर घूमती थी। तू मेरे गर्भसे जन्म लेकर उन्हीं सार्वभौम ठाकुरका सिर नीचा करेगा?"

मदनने जवाब दिया—"माँ, इससे सार्वभौम ठाकुरका सिर नीचा न होगा। बल्कि मैंने जरासी विद्या और इस प्रकृतिसे उन महापुरुषके अनुष्ठित धर्मकी खेलवाड़ कर उनका सिर नीचे झुकाया है। माँ उनके घरमें जन्म लेकर उनकी तरह विद्या और धर्मनिष्ठा नहीं सीखी है सही, पर धर्मके ढोंगसे घृणा करना अवश्य सीखा है।"

मेनकाने पूछा—" उनसे पूछा है ? उन्होंने तेरी इस बातको मंजूर किया है?"

मदनने कहा—" उनसे सब कुछ कह चुका हूँ । उनसे पूछे बिना जब साधारण काम भी नहीं करता तब ऐसे बड़े काममें उनका उपदेश क्यों न लूँगा ? उनसे सीधी तौरसे सब कह दिया है—कहा है—" गुरु-पुरोहितका काम मुझसे अब न होगा। यजमानकी पूजा कराते वक्त, शिष्यसे पूजा कराते वक्त, शिष्यको मन्त्र देते वक्त, मालूम होता है कि मैं घृणित ढोंग कर रहा हूँ, मन अपने आपको ही सैकड़ों धिक्कार देता है, दान–दक्षिणा और प्रणामीका रुपया हाथसे उठाते वक्त मालूम होता है कि मानों हाथ आगसे जला जाता है। यह सब अब न कर सकूँगा। शरीर है, शक्ति है, साहस है, कुछ बुद्धि भी है, जमींदारी भी काफी है। खेती–बाड़ीकर, गाय–बछड़े पाल अपनी गृहस्थी अपनी मिहनतसे चलाऊँगा। "

" तो वे राज़ी हो गये ? "

" हाँ । "

" क्या कहा ? "

" वह मैं न कह सकूँगा माँ ! उनसे ही जाकर पूछ लो । "

" अच्छा उनके पास जाती हूँ जाकर सुनूँ वे क्या कहकर राज़ी हो गये ? "

बहुत जल्दी जल्दी कदम बढ़ाती हुई मेनका सार्वभौम ठाकुरके घरकी ओर चली।

मदन मुस्कुराया और पास ही एक चौकीपर बैठ गया। और नोकरसे बोला—

" एक चिलम तमाकू तो भर ला । "

कुछ दूरपर एक नौकर बैठा बाँस छील रहा था। उसने उठकर मदनको चिलम भर दी। मदन तमाकू पीता पीता गंभीर हो न मालूम क्या सोचने लगा।

" मदन दादा ! "

मदनने चौंककर देखा, माणिक है। उसने कहा—"क्यों माणिक! तू कब आया ?"

माणिक बोला—" अभी ही आया हूँ। घरमें गठरी फेंककर और माँसे कहकर भागता आ रहा हूँ। "

" सो अच्छा किया। कितने दिन ठहरेगा ? "

माणिकने कहा—"कितने दिन क्या ? कल ही जाना होगा। छुट्टियोंके दिन भी क्या क्लार्कोंको फुरसत नसीब होती है। पूछ-ताछकर एक दिनके लिए आया हूँ। यह नौकरी दादा अब नहीं सुहाती। इससे तो कुलीगीरी ही अच्छी थी। "

" फिर नौकरी करने गया क्यों ? किसी तरहसे और एकाध साल काटनेसे कुछ रुपया जुट जाता, उससे कुछ जमीन लेकर घरमें बैठा खेती करता । । "

माणिकने कहा-" क्या कहूँ दादा ! उस वक्त साहबके कहनेसे नौकरीका लोभ छोड़ न सका । नौकरी करनेसे इस तरह झख मारना पड़ेगा, यह उस वक्त समझा न था । फिर भी अबतक इतने दिन निकाले । साहब-मेम चाहते थे; अपमान कुछ सहना न पड़ता था । "

" अपमान ! क्या अपमान भी सहना पड़ता है ? साहब अब नहीं चाहता क्या ?"

" कोई एक महीना हुआ, वह साहब विलायत चला गया । उसकी जगहपर जो एक बदजात आया है, उसके रोब-दाबके मारे प्राण संकटमें पड़े रहते हैं । हम लोग उसके आगे मानों कुत्तोंसे भी बदतर हैं । नीचे झुककर लम्बा सलाम किये बिना वह आग बबूला हो जाता है । और डैम, सूअर, हरामज़ादा, आदि शब्द सदा उसके मुँहमें बसते हैं । बहुत अधिक बिगड़नेपर घूँसा-बेंत भी मार बैठता है । "

मदनका चेहरा सुर्ख हो गया । उसने उत्तेजित स्वरसे पूछा-" यह सब कुछ सह करके नौकरी करता है माणिक ? २।३ साल ही नौकरी करनेसे तू इतना बदल गया माणिक ? नौकरीकी लालच क्या मनुष्य को इस तरह भेड़ बना देती है ? "

माणिक बोला-" नहीं दादा, नौकरी करके भी माणिक अबतक भेड़ नहीं हुआ है । अभी हालमें ही वह साहब आया है । मुझसे अभी तक सामना नहीं हुआ । यदि उसने किसी दिन कुछ अपमान किया तो उसी दिन नौकरी छोड़कर चला आऊँगा । "

मदनने कहा-" जब नौकरी कर रहा है तो सामना एक न एक दिन होगा ही । अपमान होनेके पहले ही नौकरी छोड़कर क्यों नहीं आता ? शायद मारपीट किये बिना नौकरी छोड़ना नहीं चाहता ? "

माणिकने कहा—" तुम जो कहते हो दादा ठीक ऐसा ही है । काम कुछ अधूरा पड़ा है, उसे पूरा कर और वंशी सालेको समझाकर नौकरी छोड़ चला आऊँगा । साले गाली खाते हैं और लम्बा सलामकर ' yes sir ' कहते हैं दादा, यह सब यदि तुम देखपाते डैम ! सूअर !-' yes sir ' गधा ! पाजी !-' yes sir '— बेवकूफ ! हरामजादा-' yes sir ' (वंशीवदन उसी दफ्तरका बड़ा बाबू है ।) ।

माणिकके अभिनयसे मदन ठठाकर हँस पड़ा । अनन्तर मुस्कुराता हुआ

बोला—" तो जल्दी चला आ, यह सब देखना सुनना भी बेइज्जती है। और यदि कभी यह सुनपाया कि तूने इस तरह लम्बा सलामकर और गाली खाकर 'yes sir' कहा है तो कभी तेरा मुँह तक न देखूँगा। मेरे खलिहानके पास ही एक अच्छी जमीन बिक रही है; उसको खरीद ले। दोनों खेती करेंगे, सुखसे भी रहेंगे, इज्जतके साथ रहेंगे। मैंने क्या किया है, जानता है ? "

" नहीं क्या किया है दादा ? "

" गुरु—पुरोहितका काम छोड़दिया। "

" फिर ? "

" फिर क्या ? खेती करके गुजारा करूँगा। जो जमीन है, उससे चाहे बड़े आदमीकी तरह गुजर बसर न हो, पर अन्न–वस्त्र तो मिलेगा ही। यही काफी है, अधिक नहीं चाहता। तू भी आजा, दोनों खासे एक जोड़ी ब्राह्मण हलवाहे बनेंगे। "

माणिकने कहा—" पोथी छोड़कर अन्तमें हल पकड़ोगे ? "

" बुरा क्या ? तू भी कलम छोड़कर हल पकड़ेगा। "

" क्लार्कीकी कलमकी अपेक्षा हलजोतना मनुष्यको अधिक शोभा देता है। "

मदनने कहा—" पोथीकी अपेक्षा हलजोतना मुझे भी अधिक शोभा देगा। "

" यह तो ठीक है। गुरु–पुरोहितका तुम्हारा काम, मेरी क्लार्कीसे भी बुरा था। छोड़ दिया, अच्छा किया। मैं भी आता हूँ। हल चलाऊँगा, लाठी चलाऊँगा, खाऊँगा, घूमूँगा, और अच्छी तरह रहूँगा। मदन दादा, मैं अबतक क्लार्क हूँ, फिर भी जब खुले मैदानके नदीके खुले किनारेके, खुली हवाके, खुली देहके, स्वाधीन किसान जीवनके अबाध निश्चिन्त आमोदकी बातें सोचता हूँ तो मेरा मन नाच–सा उठता है। किसीकी ताबेदारी न करनी पड़ेगी, किसीका मुँह न ताकना पड़ेगा, कौन संतुष्ट है, कौन रुष्ट है, इसकी चिन्ता न रहेगी, अपने खेतमें, अपने आदमियोंके साथ, मनके अनुसार काम करके दिन बिता शामको प्रसन्न मनसे हँसते–खेलते घूमेंगे। घरमें रहकर खेतीका चावल, खेतीकी दाल, बाड़ीकी तरकारियाँ, पोखरेकी मछलियाँ ग्वालेका दूध पेटभर खावेंगे। रातमें अपने घर राजाकी तरह सोवेंगे। मदन दादा ! क्यों लोग नौकरीके लिए मरते हैं ? देशमें क्या जमीन नहीं; शरीरमें क्या शक्ति नहीं, मनमें क्या तेज नहीं ? क्यों लोग इस तरह झखमारते हैं ? "

मदनने कहा—" देशमें ज़मीन है; पर लोगोंके शरीरमें शक्ति नहीं, मनमें तेज

नहीं। इसीसे इस ओर कोई नहीं ताकता। मोटा अन्न-वस्त्र और जमीन एक आदमीके लिए कितना चाहिए? १५।२० बीघा जमीन लेकर और दो एक आदमियोंको नौकर रख लोग मोटे अन्न-वस्त्रका प्रबन्ध कर सकते हैं। नौकरीसे मोटा अन्न-वस्त्र भी कितने आदमियोंको मिलता है। शहरोंकी गन्दगी, ख़राब हवा और भाड़ेके घरोंमें रह, आधा पेट दालका पानी और भात खा, प्रायः सब सूखकर मरते-पचते हैं।"

" हिः हिः हिः! बड़े दादा बड़े दादा! लाल गाय जनी है।"

गदाधरने दौड़ते हुए आकर यह खबर सुनाई। गदाधर मदनका नौकर है। खेत-खलिहान, बाग़ और गाय-बछड़ोंकी रखवालीके लिए मदनके घरमें ३।४ नौकर पहलेसे ही थे। गदाधरकी उम्र २१।२२ वर्षकी है। वह तगड़ा जवान है। उसके सिरके बाल घूँघरवाले हैं, स्वभाव उसका बहुत सरल है और वह अपार स्वामिभक्त और विश्वासी है। उसे अपने मदन दादा माँ मेनका और मदनके खेतीके धान, बागके पेड़ों, पोखरेकी मछलियों और गोशालाके गोरुओंके सिवा और किसीकी फिक्र न थी।

अत्यन्त आनन्द और उत्साहसे गदाधरने दौड़ते हुए आकर खबर दी-" लाल गाय जनी है।"

मदनने पूछा-" कहाँ? कब? मुझे पहले खबर क्यों न दी?

गदाधरने गर्व-पूर्वक बड़प्पनके ढंगसे मुँह-हाथ मटकाकर जवाब दिया-" तुम्हें खबर देनेकी जरूरत क्या थी? क्या हम लोग यह भी नहीं कर सकते? तुम्हीं कहो, तुम्हारे न रहने पर क्या कोई काम पड़ा रह जाता है? अभी ही तो गायको पीड़ा हुई जन गई, तुम्हारे जानेकी जरूरत भी क्या थी? अबतक हमलोगोंने ही सब कुछ किया है। तुम निश्चिन्त हो घर बैठे रहा करो; तुम्हारे सब काम हो जायँगे। किसी काममें किसी तरहकी त्रुटि न होगी। वाह! क्या तुम्हारी तरह कोई गायको जना नहीं सकता? कितनी गायें जनाई हैं तुमने?"

मदनने मुस्कुराते हुए कहा-" तो अच्छी बात है। तुम लोग सब काम-काज कर लिया करो तो मुझे छुट्टी मिले। क्यों, बछड़ा हुआ है या बछिया?"

" आँ! यह तो नहीं देखा। गदाधर फिर भागा।"

मदनने कहा—"देखी इसकी बुद्धि ! गाय जनी, पर यह नहीं देखा कि बछड़ा जना है, या बछड़ी। यदि इस पर कुछ कहूँ तो अभी मुँह बिगाड़ने लगेगा।"

"माणिकने कहा—"फिर भी असमझ होकर भी विश्वसनीय है !"

मदनने कहा—"हाँ, विश्वसनीय तो खब है। मेरा एक तिनका उसके लोहूके समान है।"

गदाधर फिर दौड़ता दौड़ता आ पहुँचा।

"हिः हिः हिः ! देख आया दादा बछड़ा नहीं, बछड़ी हुई है। मैंने खींच कर निकाला, फिर बछड़ी न हो, बछड़ा हो सकता है। बड़ी सुन्दर बछड़ी है दादा ! अभी ही उठकर खड़ी होना चाहती है, पर ढलमलाकर गिर पड़ती है। हिः हिः ! और बछड़ीको पकड़ने जाता हूँ दादा, तो गाय सिर हिला हिला कर मारनेको लपकती है। मानों मैं बछड़ांको खा जाऊँगा।"

माणिकने कहा—"चल दूर हो। क्या कहता है ? बछड़ीको खानेकी बात मुँहमें लाता है अभागा !"

"अरे राम राम ! क्या कहना चाहता हूँ, क्या मुँहसे निकल जाता है ! दादा हम लोग देहाती गँवार हैं, जो मुँहमें आया कह बैठते हैं। मुझे इससे कोई पाप न लगेगा। सच ही बछड़ीको तो खऊँगा नहीं। जाऊँ माँसे भी कह आऊँ।"

यह कह गदाधर फिर दौड़ा गया। मदन भी माणिकको साथ लेकर बछड़ीको देखने गया।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

मदन हमारे वंशका गौरव है।

"आओ बहू ! गोधूलीके वक्त घबराई हुईसी क्यों दौड़ती आ रही हो ? बात क्या है ?

रात होते देख, गंगा देवगृहमें बत्ती और धूपजला बाहर निकल रही थी, इसी समय उग्रभाव धारण किये घबराई हुई मेनका जा पहुँची।

"ठाकुर कहाँ हैं गंगा ?"

"इसी घाटपर वे सन्ध्या—आह्निक कर रहे हैं। क्यों ? ऐसी घबराई हुई उन्हें क्यों खोजती हो ? बात क्या है ?"

" मेनकाने कहना शुरू किया-" मेरे भाग्यकी बात कुछ न पूछ गंगा ! ठाकुरके भतीजेकी मैं बहू हूँ। कितने आदमियोंके पुण्यका ऐसा जोर है ? दस जनोंमें मेरा कितना मान है ! तो देखो, मेरे गर्भसे जन्म लेकर मदन उन्हीं ठाकुरका सिर नीचा करने बैठा है। ओः कह, ऐसे दुःखको कैसे कहूँ ? कैसे कुलमें तूने जन्म लिया है, सात जन्म तपस्या करनेपर जिन ठाकुरके पाँवोंकी धूल लोग पाते हैं, वे ही ठाकुर तेरे दादा हैं। पाँच छः सौ घर तेरे शिष्य-यजमान हैं। ऐसी मान-मर्यादा, सुख-ऐश्वर्य्यको छोड़कर हलवाहा होकर रहेगा, और गोरुओंकी रखवाली करेगा ? कहो बहू, यह दुःख क्या सहा जा सकता है ? ठाकुरके भतीजेकी मैं बहू हूँ, जीते-जी ऐसा अपमान कैसे सहूँ ? "

गंगाने कहा-" हाँ, बाबा (सार्वभौम ठाकुर) कहते तो थे सही ! तो करोगी क्या ? मदन बड़ा हठी लड़का है, वह क्या तुम्हारा कहना मानेगा ? तुम चाहे हज़ार बको झको। "

" वह क्या मेरा कहना मानता है बहू ? यही देखो न घनशे बेईमानने, निर्वंश हो उसका, (मेनका घनश्यामको घनशे कहतीं थीं) जब लड़की ब्याह दी तो ब्याह दी। उसी लड़कीको तू बीबी बनाकर रक्खेगा ? तू कौन चीज़ है, तेरे बापके बापो; चौदह पुरुषोंको यह अधिकार नहीं। ठाकुरके भतीजेकी मैं बहू हूँ, मेरे गर्भसे मदन पैदा हुआ है, उसी मदनको उसने लड़की ब्याह दी है, फिर उसी मदनकी बहूको घनशे मुँह जला, निर्वंश हो जाय, जहन्नुममें जाय, पानी पिण्डा देनेवाला कोई न रहे, मरनेपर कोई आग न दे, काशीवास करनेपर भी काशी न पाये, गोरू-गधोंके फेंकने की जगह पर उसका हाड-मांस सड़े-गले, जिसमें कृमि कीट हो कोटि जन्मों तक चुलबुलाते रहें, सातपूतभक्षी, सौ एक गर्भ गिरानेवाली कुतियाका पिल्ला है अभागा !— "

क्रोधान्ध मेनकाकी बात पूरी न हुई। घनश्याम के दुर्व्यवहारकी बात याद आ जानेसे वे जल उठीं और मदनके सम्बन्धकी जो बातें कहना चाहती थीं; वे भी भूल गईं।

गंगाने कहा—" तो उस बहूको लानेसे तुम जैसी गृहस्थकी गृहस्थी चलेगी ? "

" इसीसे घरकी बहू पुरुषोंसे सटकर, बीबी हो रास्ते रास्ते घूमे ! मदन उसका

भर्तार नहीं, वह व्याही औरत नहीं, बाल पकड़कर घसीट क्यों न लावे? घरमें लाकर बाँध-धाँध रक्खे। झाड़ू मारकर बीबीकी चाल छोड़ादूँगी।"

गंगा—"तो मदन एक बार जा देखे। बुद्धिमान होगी तो मदन जैसे पतिके साथ गृहस्थी करना वह ना मंजूर न करेगी।"

"वह जायगा! खून करना कबूल है, मगर वह वहाँ न जायगा। नहीं जाना चाहता तो न जा बापू! वह बापके ही घर रहे। तेरी बहू है, तू जाकर न ला सकेगा तो कौन ला सकेगा; मैं तो वहाँ जाकर ला नहीं सकती? उस मुँह झौंसे घनशेको एक बार देख पाती तो समझ लेती, कि वह कैसा बड़ा आदमी है, जो मदन की बहूको बीबी बनाकर रखता है। पर देखो भाई, लड़का भी बच्चा बना है-तेरे एक बहू है, पर यदि तू पाँच ब्याह भी कर ले तो तुझे कौन मारेगा? फिर तू व्याह क्यों नहीं करता? किसी गृहस्थकी अच्छी लड़की देखकर उससे ब्याह करले, वह बापके घर है तो रहे, इसके बाद जो होगा देखा जायगा।"

गंगा—"दूसरा व्याह कर लेने पर फिर क्या देखा जायगा? वैसे ही उस बहूको लाना नहीं चाहता, दूसरा व्याह कर लेनेपर फिर क्या लायगा?"

मेनकाने कहा—"तो जो हो, कुछ न कुछ तो करना ही होगा? वह भी तो बहू है। जवान उम्रमें स्वामीके घर न रह क्या बापके घर रहना अच्छा होगा। मान-मर्य्यादाकी ओर भी तो ताकना पड़ता है।"

इसी समय पास ही यमुनाका गाना सुनाई पड़ा—

गंगाने कहा—"लो, बाबा आ रहे हैं।" यमुना गा रही थी—

लाले लाले बदरवा छाये।
मनु मेरी माँ (भगवती) योंहि भरमावत भाल सिन्दूर चढ़ाये।
सजनी यह रजनीमुख शोभा जिसमें तरस बढ़ाये
निरखि होत आनन्दमगन मन लागत परम सुहाये।
लाले लाले बदरवा छाये।

यमुना गा रही थी, यमुनाका हाथ पकड़े, मुग्धनेत्रोंसे आकाशमें भगवतीका सिन्दूर लगा चेहरा और मुस्कुराहट देखते हुए सार्वभौम ठाकुर आँगनमें आ पहुँचे।

यमुनाका गाना बन्द हुआ। मेनकाने घूँघट निकाले हुए आगे बढ़कर ससुरको प्रणाम किया और दोनों हाथोंसे पाँवोंकी धूलि ले माथेपर लगाई।

सार्वभौम ठाकुरने कहा—" बहू, सुखी रहो। कैसे आई ? ,,

मेनका ज़रा पीछे सरककर गंगाकी आडमें हो आधा घूँघट निकाले वक्रभावसे खड़ी हुई। इसके बाद गंगाको ठेलकर अर्द्धस्फुट स्वरसे बोली—" तो कह न गंगा, मदनने सब शिष्य-यजमानोंको छोड़ दिया है।"

मेनका इसी प्रकार किसीको मध्यवर्ती या मध्यवर्तिनी बना सार्वभौम ठाकुरसे बातें करती था। किन्तु किसी मध्यवर्ती या मध्यवर्तिनीको मेनकाकी कोई बात दुहरानी न पड़ती थी। ऊँचे गलेसे निकली हुई आवाज़ ज़रा दबी होनेपर भी ऊँची होती थी और अक्षर अक्षर सार्वभौम ठाकुर सुन पाते थे। वे भी किसी मध्यवर्ती या मध्यवर्तिनीकी अपेक्षा न कर उत्तर दिया करते थे। इसी प्रकार ससुर और बहूमें बातें होती थीं।

सार्वभौम ठाकुरने उत्तर दिया—" हाँ, यह तो मालूम है; मदनने मुझसे कहा है।"

" तो वे क्या कहते हैं ?"

" मैं और क्या कहूँ बहू ! साधु पुरुषका जो कर्तव्य है, वही मदनने किया है। इस पर अब मैं क्या कहूँ ?"

मेनकाने उदासीनता पूर्ण स्वरमें कहा—" तो उनकी भी यही राय है, गंगा ? ब्राह्मण-पण्डितके घरमें जन्म ले, उनका नाती हो मदन क्या हल चलाकर और गोरुओं की रखवाली कर गुज़ारा करेगा ? इससे उनका मुँह नीचा न होगा ?"

सार्वभौमने कहा—" मुँह मेरा नीचा होगा बहू ? मदनने मेरा मुँह कितना ऊँचा किया है, कह नहीं सकता। मदन हमारे वंशका गौरव है। ऐसा बड़प्पन कितने आदमी दिखा सकते हैं ? जो सच्चे ब्राह्मण हैं, जो सात्विक भावापन्न हैं, सुपण्डित हैं, साधुचरित्र हैं, उनको समाजके हितके लिए, शास्त्रकी आलोचनामें, पढ़ाने लिखानेमें, यजन-याजन आदि कार्योंमें फँसे रहना पड़ता है। इससे समाजको भी उनके प्रतिपालनका भार लेना पड़ता है। इसीसे ब्राह्मणको दान-दक्षिणा ग्रहण करनेका अधिकार है। किन्तु जिस ब्राह्मणको शास्त्रका ज्ञान नहीं, जिसमें धर्मनिष्ठा नहीं, जिसमें त्यागकी अपेक्षा भोग-लालसा और सांसारिक मद-मोहका प्रभाव प्रबल है, वह समाजको धर्मकी शिक्षा देने और धर्मका अनुष्ठान करानेके अयोग्य है। दान-दक्षिणा लेनेका भी उसे कोई अधिकार नहीं। जो लेता है वह महा पापी है।"

" पूछ गंगा, क्या मदन मेरा ऐसा ही अभागा है ? फिर भी तो वह ब्राह्मणका लड़का है; उनके घरका लड़का है, वे उसे सिखा-पढ़ाकर ब्राह्मणके योग्य क्यों नहीं बना देते ? "

सार्व—" तुमने समझनेमें भूल की है। ब्राह्मणके वंशमें जन्म लेनेसे ही सब प्रकृत ब्राह्मण नहीं हो जाते । जिनकी प्रकृति बिल्कुल सात्विक है, वे चाहे किसी जातिमें जन्म लें, उनमें प्रकृत ब्राह्मणके गुण दिखाई देंगे । वैसी सात्विक प्रकृति न होनेसे वंशपरम्पराके परम शुद्धाचारी ब्राह्मणको भी ब्रह्मण्य प्राप्त करना दुःसाध्य है । "

मेनका—" गंगा, मैं मूर्ख स्त्री ठहरी, यह सब क्या समझूँ ? तो वे मदनको सिखापढ़ा लें न । उनके घरका लड़का है । चाहे गँवार हो, पर वह सात्विक प्रकृति अवश्य है । "

सार्व—"नहीं बहू मदनने प्रधानतः राजसिक प्रकृति ले जन्म लिया है । मदनमें शान्त सात्विक भावकी अपेक्षा क्षत्रियोचित राजसिक भाव ही प्रबल हैं । मदन यह समझ गया है । समझ कर ही मदनने महच्चरित्रवीरकी तरह इस व्यवसायरूप ब्राह्मणत्वको, जिससे पवित्र धर्मका अपमान होता है, छोड़ दिया है । इस देशमें आजकल क्षत्रियधर्म नहीं । किन्तु ब्राह्मणधर्ममें उसे प्रतारणामय जीवन काटना होगा, इसीसे उसने अन्ततः वैश्य-वृत्तिका अवलम्ब लिया है । इससे उसकी मानसिक हीनता जरा भी न होगी । सामाजिक हीनता भी मैं कुछ विशेष नहीं देखता । दरिद्र क्षत्रियके लिए कृषि-कर्म और गोपालन प्राचीन कालमें भी अधर्म न था । केवल क्षत्रिय ही क्यों अनेक ब्राह्मण गृहस्थ भी प्राचीन कालमें कृषि-कर्म और गोपालनसे परिवारका प्रतिपालन किया करते थे । बहू, ठगविद्या और कपटसे अधिक हीनता इस कामसे नहीं हो सकती । इसीसे कहता हूँ बहू, मदन हमारे वंशका गौरव है । बहू, कभी कभी मेरा भी मन कहता है कि मैं प्रकृत ब्राह्मणके योग्य नहीं । मैं भी यह ब्राह्मण व्यवसाय छोड़कर मदनका ही मार्ग पकड़ूँ । किन्तु बूढ़ा हो गया हूँ; नया जीवन अब गढ़ नहीं सकता । "

गंगाने कहा—" बाबा, यदि आप ब्राह्मण नहीं, तो फिर कहना होगा कि देशमें ब्राह्मण नहीं हैं । "

सार्वभौम ठाकुरने लम्बी साँस छोड़कर कहा—"देशमें ब्राह्मण कहाँ हैं बेटी? होते

तो क्या आर्यधर्मकी, आर्य समाजकी ऐसी दशा होती। ब्राह्मण होना बड़ा कठिन है। ब्राह्मण देवतासे कम नहीं। देवता भी ऋषियोंकी पूजा करते थे।"

मेनका चुपचाप सोच रही थी। परम धार्मिक महा ज्ञानी ससुर जो कह रहे हैं, उसपर वे अब क्या कर सकती हैं? मेनकाने कहा—"तो जब वे ही कहते हैं कि मदनको गुरु–पुरोहितका काम शोभा नहीं देगा, तो मुझे और कुछ कहना नहीं। किन्तु मदन यह काम न कर यदि नौकरी–चाकरी ही करता तो क्या अच्छा न होता?"

सार्वभौमने जवाब दिया—"दूसरेकी नौकरी करनेकी अपेक्षा कृषि-कर्म और गोपालनसे गृहस्थी चलाना अधिक अच्छा है।"

"अच्छा तो यही सही। उनकी आज्ञा पर और कहना सुनना क्या? जिसे निन्दा करना होगा करेगा, उनके आश्रयमें रह सकनेसे, सबसे अलग रहने पर भी, मुझे दुःख नहीं होगा। फिर जाती हूँ। अब रात हो गई है।"

ससुरको फिरसे प्रणामकर और पदधूलि ले मेनका घरको गई।

यमुनाने कहा—"चलो दादा, भीतर चलो। महाभारत पढ़ें। आज वनपर्व पूरा करूँगी।

बारहवा परिच्छेद.

पण्डित–सम्मिलन।

शूलपाणि बाबू बहुत दिनों के बाद घर आये हैं। पाठक आपने युवक शूलपाणिको देखा है। अब शूलपाणि प्रौढ़वयस्क हैं। आपकी स्वाभाविक परिणतिके साथ वे ही युवक शूलपाणि अब प्रौढ़ शूलपाणिमें परिणत होगये हैं। शूलपाणिने अपने प्रथम जीवनकी कामनाके अनुरूप धन–सम्पत्ति, भोग–बिलास, सामाजिक प्रतिष्ठा आदि सब कुछ प्राप्त की है। किन्तु इस कामनासे किसीकी तृप्ति या निवृत्ति कभी नहीं होती। घीकी आहुति पाकर जैसे आगकी ज्वाला बढ़ती जाती है, उसी तरह इच्छित वस्तुका लोभ क्रमशः बढ़ता जाता है। शूलपाणिकी भी यही दशा थी। काम्यलाभके साथ कामना जिस तरह बढ़ती जा रही थी,

उसी तरह काम्यलाभके उपायरूप कौशल, कूटबुद्धि, देशकालपात्रके अनुसार व्यवहार-विशेषता, भाववैचित्र्य आदि भी नियत अनुशीलन और सिद्धिप्राप्तिसे असाधारण परिणति और परिपुष्टि प्राप्त करते जा रहे थे । नगरनिवासी बन्धुओंसे मिलनेपर सरस रहस्यमयी बातें करनेमें, काम-काजमें तीक्ष्ण बुद्धि और कूट-कौशल दिखानेमें, ब्राह्मणसमाजमें विनीत वाक्चतुरताके साथ बाहरी धर्मनिष्ठा प्रकट करनेमें, यशस्कर अनुष्ठानके समय उदारतामें शूलपाणि अद्वितीय हैं। सारांशमें, नगर और गाँवमें, सब जगह उनकी विशेष प्रतिष्ठा है। उनको लोग धनी-मानी और और पदस्थ बताते हैं। उनके अनुग्रहकी प्राप्तिके लिए सैकड़ों लोग उनके पीछे पीछे फिरते हैं । किन्तु परिमार्जित शिष्ट व्यवहार करके भी शूलपाणि उनको आशा, भय, और सम्मानसे सन्तुष्ट रख अपने पदगौरवकी उच्चता और दूरत्वको इस तरह रक्षा करते हैं, जिससे किसीको अनुग्रहके लिए बार बार प्रार्थना करके उनकी शान्तिमें व्याघात पहुँचानेका साहस नहीं होता ।

शूलपाणि बाबू घर आये हैं। उनका बड़ा लड़का हिरणकुमार विलायतसे बॅरिस्टर होकर आगया है। बहुत दिनोंमें, बहुत चेष्टा करनेपर, अब शूलपाणिने ग्राम्य समाजमें प्रतिष्ठा और प्रतिपत्ति पाई है। किन्तु यदि विलायतसे लौटे हुए उनके बॅरिस्टर पुत्र हिरणका और उसके ही कारण उनका ग्राम्य समाजमें अब आदर न हुआ तो उनकी प्रतिष्ठा और प्रतिपत्ति न रही । इस सम्बन्धमें शूलपाणि ज़रा भी उदासीनता सहनेको तैयार न थे। हिरण यदि एक बार गाँवमें आकर प्रायश्चित कर जाता तो सहज ही कार्यसिद्ध हो जाता। किन्तु ऐसी संभावना बिलकुल ही नहीं। हिरण आयेगा नहीं-घनश्याम हँसेंगे घनश्याम और हिरणका बन्धुसमाज चुटकियाँ भरेगा। इस लिए शूलपाणि ही पुत्रके प्रतिनिधि हो, प्रायश्चित्त आदि जो कुछ सामाजिक अनुष्ठान करना चाहिए, करेंगे। किन्तु वे यह भी जानते थे कि अधिक रुपया-पैसा खर्च करनेपर ही गाँवके ब्राह्मण-पण्डित उनकी मुट्ठीमें बँधेंगे। इस तरहका प्रयोजन पड़ जानेपर शूलपाणि रुपया पैसा खर्च करनेमें ज़रा भी कंजूसी न करते थे।

शूलपाणि रातको घर पहुँचे। दूसरे दिन सवेरे ही उन्होंने अपने अनुगत और समय-असमयमें अनुग्रहीत हुए ब्राह्मण-पण्डितोंको बुलवाया। पण्डित-समाजमें सार्वभौम ठाकुर शीर्षस्थानीय थे, पर वे नहीं बुलाये गये। कारण अनुरोध करने या

रुपया-पैसा देनेसे वे किसी असङ्गत प्रस्तावको कभी स्वीकार न करेंगे, और उनके एक बार अस्वीकार कर देनेपर फिर किसीको उनके विरुद्ध कार्य करनेका साहस न हो सकेगा। इस लिए और सबको पहले ही अपनी मुट्ठीमें कर लेनेपर सार्वभौम ठाकुर शायद राज़ी भी हो सकते हैं। और न भी हुए तो फिर कोई वैसा जरूरत न होगी। वे अकेले विरुद्ध हो विघ्न न डाल सकेंगे।

स्मृतिरत्न, तर्कालङ्कार, न्यायवागीश, विद्याविनोद प्रमुख ब्राह्मण पण्डित और समाजके मुखिया लोग शूलपाणि बाबूके बैठकखानेमें लम्बी सफ़ेद फर्शपर आनन्दपूर्वक मुस्कुराते हुए बैठे हैं। बीचमें तकियेके सहारे आधे लेटे हुए प्रसन्न वदन शूलपाणि बाबू तारकाओंसे घिरे चन्द्रकी तरह सुशोभित हैं। उनके बायें हाथमें सोनेकी दर्शनीय नासदानी है। मुँहके पास पीतलकी कामदार पीकदानी है। सामने हुक्का रक्खा है। कुछ दूर पर शूलपाणिके अनुचर एवं अत्यन्त अन्तरङ्ग अनुगत बन्धु महानन्द मुखोपाध्याय दाहना हाथ गोदपर और बायें पर कपोल रक्खे बैठे हैं। मुखोपाध्याय न तो बहुत बुड्ढे ही हैं और न बहुत युवा ही। न तो बहुत लम्बे हैं और न बहुत नाटे और न बहुत मोटे हैं न बहुत दुबले ही। सिरके बाल न तो बहुत लम्बे ही हैं और न बहुत छोटे ही; मूँछ-डाढ़ी न तो बहुत सफ़ेद ही है और न बहुत काली ही। कपड़े न तो बहुत मैले ही हैं और न बहुत साफ़ ही। मुखोपाध्याय शान्त और नीरव रहते हैं। शूलपाणि बाबू, पद-गौरवमें उच्च होते हुए भी, आम्नायिक शिष्टाचारसे, आधे गर्व और आधे विनय-मिश्रित व्यवहारसे, पण्डित-मण्डलीके मनमें संकोच, आदर और संतुष्टिके भाव जगा कह रहे थे—

"हिरण विलायतसे बॅरिस्टर होकर आ गया है। यदि बड़ा आदमी हो सका तो हमारे गाँवका मुख उज्ज्वल होगा। देखिये, इसी ख़यालसे इतना ख़र्च उठा मैंने उसे विलायत भेजा था। वहाँ वह बिल्कुल हिन्दू-आचारसे ही रहता था, उसने कोई अखाद्य नहीं खाया। नौकर-चाकर भी मैंने साथ भेजे थे। वे ही खाना बना देते थे। फिर भी म्लेंच्छोंका देश है, छूआछूतका दोष शायद कुछ हो, इसीसे कई एक तुलसीके पेड भी साथ भेजे थे। रसोईके जलको, पीनेके जलको, स्नानके जलको तुलसीपत्र डालकर शुद्ध कर लेते थे। तुलसी तो सर्व पापहरा है।"

पण्डित लोग मुस्कुराते हुए चोटीके साथ सिरको हिला रहे थे। केवल चुपचाप

सिर हिलाकर अनुमोदन करनेसे बाबूको सन्तोष कैसे हो ? बातोंसे भी अनुमोदन करना चाहिए । इसीसे सबसे पहले तर्कालङ्कारने हँसकर कहा—" हाः हाः हाः और कुछ कहने की जरूरत नहीं । " **तुलसी सर्व पापघ्ना गदाधरशिरोस्थिता ।** " इससे कोई दोष नहीं लग सकता । "

न्यायवागीशने नई युक्ति और नया प्रमाण पेश किया:—

" **वसति नृपति यत्र स तीर्थं पुष्करादपि** "

" विलायत है हमारे राजाका देश । राजा अष्टदिक्पालोंका अंशीभूत होता है;-

" **अष्टाभिश्च सुरेन्द्राणां मात्राभिर्निर्मितो नृपः** "

" इसीसे शास्त्रमें राजदर्शन, राजभूमिको जाना महापुण्य कहा गया है । पाप क्या किया बाबू ? बेटा हिरणने महा तीर्थमें महा पुण्य ही किया है । "

स्मृतिरत्न और विद्याविनोदके नये श्लोक और नये प्रमाणका स्मरण या कल्पना करनेके पहले ही शूलपाणि बाबू फिर बोल उठे—"फिर भी देखिये, म्लेच्छोंका देश है-शायद कोई दोष हो ही गया हो इसीसे मैंने उसे आते ही गंगास्नान करा दिया है । "

इस बार भी कहीं पीछे न पड़ जायें इस आशंकासे शूलपाणिके चुप होते ही स्मृतिरत्न बोल उठे—

" अहा हाः—

" **विष्णुपादोद्भूता गङ्गा कलुषनाशिनी स्मृता** "

" पतितपावनी गंगाके दर्शन-स्पर्शनसे ही कोटि कोटि जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं,-और बेटा हिरणने तो एक बारगी स्नान ही किया है । "

तर्कालङ्कारने स्वरको जरा और भी ऊँचाकर कहा-" पहले तो पाप ही कुछ नहीं हुआ है-पुण्यतीर्थमें पुण्य ही प्राप्त हुआ है । उसपर भी फिर गङ्गास्नान ! पुण्यके ऊपर पुण्य ! बेटा हिरण बड़ा पुण्यात्मा है । ऐसे पुत्ररत्नको पाकर बाबू भी बड़े भाग्यवान हैं ।

अन्य पण्डितोंकी अतिरिक्त प्रगल्भताके कारण अबतक विद्याविनोद अपनी

विद्यासे बाबूका चित्तविनोद न कर सके थे। अब अधीर उत्तेजनावश तर्कालंकारके स्वरसे भी ऊँचे स्वरसे बोले—

"आप बड़े पुण्यात्मा हैं। इस गाँवके उज्ज्वल नक्षत्र हैं। जैसा नाम है, काम भी वैसे ही साक्षात् देवादिदेव शूलपाणि जैसे हैं। जैसे महादेवकी तरह सुन्दर देवनरविमोहिनी मूर्ति है, वैसे ही महा योगीन्द्रवत् महोदरा महिमामयी प्रकृति है, और वैसे ही कैलाशनाथ त्रिपुरारिवत् सर्वत्र ख्याति-प्रतिष्ठा है! अहा!

" आकारसदृशः प्राज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः "।
" आगमसदृशारम्भः आरम्भसदृशोदयः॥ "

पण्डितोंकी तारीफोंसे खुश हो शूलपाणिने कहा—" अब आप लोगोंकी अनुमति मिलनेसे हिरणका समन्वय अनुष्ठान [जातिमें मिलानेका अनुष्ठान] हो सकता है। फिर भी हिरणका—जानते हैं—इस बीचमें नाम बहुत हो गया है। मेरे भी सब काम अब वही करता है। काम काजकी ओर मेरा अब वैसा ध्यान नहीं। धीरे धीरे सब उसे समझाकर फुरसतसे भगवानका नाम ले शेष काल बिताना चाहता हूँ। हरि हे दीनबन्धो! तुम्हारी इच्छा! "

शूलपाणिने जँभाईले चुटकियाँ बजाईं। विस्मय, पुलक और श्रद्धासे गद्गद हो विद्याविनोदने कहा—" अहा हा! कैसा ऋषितुल्य वैराग्य है! "

स्मृतिरत्न मुँह गंभीर बना और धीरेसे सिर हिला, नस्य सूँघकर बोले—" सवेरे उठकर नाम लेनेमें पुण्य है! "

न्यायवागीशने बड़े आग्रहसे जल्दीसे दोनों हाथ फेंक ठीक केकास्वरसे स्मृतिरत्नके कथनको पुष्ट किया—" साक्षात् पुण्यश्लोक हैं और क्या?

पुण्यश्लोको नलराजा, पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः।
पुण्यश्लोको जनार्दनः; पुण्यश्लोका च वैदेही॥

" और पाँचवे पुण्यश्लोक हैं हमारे शूलपाणि बाबू! "

ज़रा संकुचित हो और इधर उधर ताककर शूलपाणि बाबूने अब अपना प्रस्ताव पेश किया—" इसीसे कहता हूँ देखिये हिरण शायद स्वयं न आसकेगा। फिर जब मैं स्वयं उसके प्रतिनिधि-रूपमें उपस्थित हुआ हूँ तब—

शूलपाणिने स्मृतिरत्नके मुँहकी ओर ताका । स्मृतिरत्नने वैसा ही सिद्धान्त गढ़ कर कहा—"बेटा हिरणके आनेकी कोई ज़रूरत नहीं । जब स्वयं पिता प्रतिनिधि है, तब पुत्रका आना निष्प्रयोजन है । क्या कहते हैं आप ?"

स्मृतिरत्नने विद्याविनोदकी ओर देखा । विद्याविनोदने कोई जवाब न दे अन्य पण्डितोंके चेहरेकी ओर चकित दृष्टिसे देखा । अनन्तर शूलपाणि बाबूकी ओर ताक कर बोले—"तो समन्वयका कौनसा अनुष्ठान बाबू करना चाहते हैं ?"

शूलपाणि शेखीके साथ बोले—

"मैंने सोचा है कि इस एकादशीके दिन एक चान्द्रायण कर पाँच दिन पुराण पाठ कराऊँ । इसके बाद पूर्णिमाको उद्यापनके दिन ब्राह्मण-भोजन, कंगाल-भोजन पण्डितोंकी बिदा, आदि अब सबकी जैसी अनुमति होगी की जायगी । आप सब पण्डितोंको पुराणका पाठ करना होगा, प्रत्येकको ही गरदका जोड़ा और सोनेकी एक अँगूठी दे वरण करूँगा, और एक एक मोहर दक्षिणा दूँगा; यह इच्छा है ।"

सब लोग एक स्वरमें 'साधु ! साधु' कहने लगे ।

शूलपाणिने हाथ जोड़कर विनीत भावसे कहा—"अब यह दीन घरमें पदधूलि पानेसे कृतार्थ होगा ।"

"हा ! हा ! हा !" हँसकर स्मृतिरत्नने कहा–"बाबू में, आहा ! कैसा विनय है !"

विद्याविनोदने कँपते हुए सिरको हिला इसकी परिपुष्टिकी–'हो क्यों नहीं ? विद्या कितनी है !

"विनयं ददाति विद्या—"

तर्कालङ्कारने सुर मिलाया—

"विनयाज्जायते धर्म—"

न्यायवागीश मुस्कुराते हुए बोले—

"धर्मादेव परमं सुखम् ।"

शूलपाणि बोले–"आप सबकी सम्मति पा परम कृतार्थ हुआ हूँ । अब सार्वभौम ठाकुर भी सहमत हो जायँ तो काम बन जाय ।"

स्मृतिरत्नने बहुत गर्व प्रकट करते हुए कहा— "ओः सार्वभौम नास्तिक है ! उसके मतके लिए आप क्यों उद्विग्न होते हैं ?"

विद्याविनोदने कहा-" सार्वभौम मत दें या न दें, हम हिरण बेटाको अपनेमें मिला ही लेंगे। "

शूलपाणिने कहा—" कुछ भी हो, वे भी इस गाँवमें एक पण्डित हैं। उनसे एक बार उनका मत पूछना क्या उचित नहीं? "

तर्कालङ्कारने विशेष विज्ञतापूर्वक आँखें फाड़कर ऊँचे स्वरसे कहा—" हाँ, उचित क्यों नहीं। आप अति सद्विवेचक हैं। आप अपना कर्तव्य करेंगे ही। "

न्यायवागीशने भरोसा दिया—" फिर वे मत दें या न दें, हम लोग तो हैं हीं। एक बार बाबूको मत दे फिर क्या उनके डरसे बदल जायँगे? ब्राह्मणके मुँहसे निकली हुई वाणी क्या वृथा होगी? क्या कहते हैं? "

सबने समस्वरसे न्यायवागीशका समर्थन किया।

शूलपाणि बाबूने कहा—" तो उनको खबर दी जाय, कि आप सब यहाँ एकत्र हुए हैं, वे भी पधारें। "

विद्याविनोदने कहा—" हाँ, किसी नौकरको भेजदें। "

शूलपाणिने नौकरको आवाज़ दी—" ओ रतना, रतना! तू सार्वभौम ठाकुरसे एक सन्देसा कह आ न? नहीं, ठहर, तू न जा। ब्राह्मणको बुलानेके लिए किसी नौकरको भेजना ठीक नहीं। मुखोपाध्याय दादा, तुम ही ज़रा चले जाओ। रास्ते पर उनको सब बातें समझा देना। रतना ज़रा तमाकू भर ला। "

मुखोपाध्याय उठ खड़े हुए और पाँवोंमें जूते पहन, कंधेपर दुपट्टा डाल और हाथमें छतरी ले चल पड़े। रतनाने तीन चिलमें चढ़ाईं। उनमेंसे एकको बाबूके हुक्के पर और दो को ब्राह्मणोंके सामने रक्खे हुए दो हुक्कों पर रक्खीं। शूलपाणि हुक्केकी नलीको मुँहसे लगा आँखें आधी मूँद कर तमाकू पीने लगे। ब्राह्मण लोग भी तमाकू पीनेमें तत्पर हुए। ब्राह्मणों के मुँहसे निकले हुए कुण्डली कृत धुँवें और हुक्केके मधुर, धीर-गंभीर 'गड़गड़' शब्दसे कमरा भर गया। बाहर एक किसान बराण्डेपर गँडासी रख सतृष्ण नेत्रोंसे एक हाथसे दूसरे हाथमें जाती हुई दोनों चिलमोंकी ओर ताकने लगा।

" दादा, मैं जया हूँ, तुमको प्रणाम करती हूँ। "

जयाने आकर भाईको प्रणाम किया। जयाके प्रति शूलपाणिका जैसा विजातीय

विराग और विद्वेष है, वह पाठकोंको मालूम है । जया उनको निन्दनीय बना और जबरन उनके घरपर दख़ल जमा रहती है । माणिक अपनी चेष्टासे नौकर हो गया है । बहन और भानजा, उनसे अनुग्रहकी प्रार्थना न कर सुख-सम्मानके साथ उन्हींके घरमें रह मानों उनकी छातीपर सवार हो उनके मुँहपर स्याही पोतते हैं । माणिक और जयाकी याद आते ही शूलपाणिका सर्वाङ्ग जल उठता है । इस वक्त वे प्रणाम करती हुई जयाको सामने देखकर एक बारगी आपेसे बाहर हो गये । उन्हें पास बैठे हुए पण्डितोंका खयाल न रहा ।

वे क्रोधके मारे हुक्केकी नली हाथसे छोड़कर उठ बैठे और बोले– " कौन, जया है ? तू क्यों यहाँ आई अभागिनी ? चल, दूर हो ! "

भीत और विस्मित पण्डित त्रास और संकोचसे ज़रा पीछे सुरक बैठे । स्मृति-रत्न और तर्कालङ्कार मुँहसे हुक्का हटा, पर हाथमें लिये, आँखें फाड़ फाड़ कर ताकते रहे ।

जया बोली—" दादा, बहुत दिनोंके बाद घर आये हो,–मैं तुम्हारी सगी बहन ठहरी,–तुम्हें ऐसा न कहना चाहिए । "

बढ़े हुए क्रोधसे गरजकर शूलपाणिने कहा—" सगी बहन ! कलंकिनी तू ! तेरे कारण लोगोंके आगे मेरा मुँह नीचा होता है–तेरा मुँह देखनेमें मुझे घृणा होती है । चल यहाँसे दूर हो । "

जयाकी भौएँ भी बल खा गईं । उसने ज़रा तेज़ और गरम आवाज़से कहा— " मेरे कारण तुम्हारा मुँह नीचा होता है ? क्यों ? किस लिए ? क्यों, मैंने ऐसा क्या बुरा काम किया है ? ऐसी बातें बोलना अच्छा है क्या दादा ? "

" ठीक कहा है ! खूब कहा है ! और कहूँगा । मेरी बहन हो तू दूसरोंके घर काम-काज करती है । मुझे किस चीजकी कमी है । मैं एक अनाथ बहनको खाना कपड़ा दे घर में नहीं रख सकता ? एक निराश्रय भानजेकी परवरिश मैं नहीं कर सकता ? अभागा तेरे घरवाला मुँहमें कारिख लगा न मालूम कहाँ छोड़कर चला गया, गली गली मारी मारी फिरती थी । मैं स्नेहपूर्वक तुझे घर लाया, परन्तु अभागिनी एक साल बीतते न बीतते ही मेरी गृहस्थीसे अलग हो गई । मेरी निन्दाकर, मेरे घरवालोंकी निन्दाकर किसीकी रसोई बना, किसीका पानीभर,

किसीकी धान कूट पेट भरती है। जो लोग मेरी ताबेदारी बजाते हैं, उनके ही घर मेरी बहन हो, मजूरी करती है। फिर भी तेरा मुँह देखूँ ?"

जयाको भी क्रोध आगया। वह वैरको भुलाकर भाईसे मिलने आई थी। पर भाईने इतने लोगोंके सामने खरी खोटी सुनाई। ऐसी बातोंसे मिट्टीकी देह भी जल उठती है। उसने भी समान क्रोधसे मुँह हाथ नचा कहा-" ठीक है! तुम्हारे घरमें नौकरानीका काम न कर सकी, इसीसे तुम्हें बड़ा अफसोस है, क्यों? सगी बहन होनेसे एक दिन भी आदर स्नेह किया था। तुम्हारी बहू दिन रात झगड़ा और गाली-फजीहत किया करती थी, कभी मीठी बात न बोली। फिर क्यों तुम्हारी गृहस्थीमें रहती? दोनों वक्त रसोई पकाती थी, बासन मलती थी, पानी भरती थी, दो ब्राह्मणी जितना काम न करसकती थीं उतना काम अकेली करती थी। पर फिर भी रुला धुला कर तुम्हारी बहू दोनों वक्त खाना देती थी। एक ब्राह्मणी भी नौकर रखते तो दस रुपया माहवार देना पड़ता। पर मुझे कभी एक कौड़ी भी न दी। तुम्हारे घरमें मजूरी करती थी, पर एक कौड़ीकी भी आशा न थी, फिर मजूरी करके भी झाड़ू क्यों सहती? क्या मुझे गुलामी करनेके लिए खरीद लाये थे?"

इतनी स्पष्ट उचित बातोंसे शूलपाणिके क्रोधके बढ़नेके सिवा शान्त होनेकी सम्भावना न थी। उन्होंने लाल आँखोंसे ब्राह्मणोंको सम्बोधनकर कहा-" सुन रहे हैं आप लोग इसकी बातें! गृहस्थीमें रहनेपर काम-काज नहीं करना पड़ता? अपनी गृहस्थीमें कौन बैठा बैठा खाना खाता है?"

जया दबनेवाली न थी। उसने भी जवाब दिया—" दिन भर काम-काज करती थी, बैठी रहनेपर कौन खिलाता? मैंने बैठे बैठे कभी खाना नहीं चाहा। बहूको सुस्त देखकर और भाईकी गृहस्थीका खयालकर सब काम-काज खुद करलेती थी। पर दो दिनोंके बाद ही देखा कि मेरे साथ नौकरानी जैसा व्यवहार हो रहा है। गृहस्थीमें रहनेपर काम-काज करना ही पड़ता है, यह क्या मुझे मालूम नहीं? ये सिखा देंगे तभी जानूँगी? जिसके घरमें रहूँगी वह यदि आत्मीय जैसा व्यवहार न करेगा, आत्मीयकी तरह मान न रक्खेगा तो मोल ली हुई दासीकी तरह उसकी गृहस्थीमें मुफ्तमें क्यों काम करूँगी? अपने लिए कौन मरता है? जिसका पति ही छोड़कर चला गया, उसे सुख ही क्या, उसका मान ही क्या? किसी तरहसे दिन काट सकती थी, यही बहुत था। अनाथ भानजेकी ओर भी किसीने कभी

खयाल न किया । क्यों रहती तुम्हारी गृहस्थीमें ? उसको आज तुम्हारे बालबच्चोंके संभालने और हाट-बाजार करनेसे खाना नसीब होता । दुःख होगा नहीं ? शरीर जलेगा नहीं ? बिना तनख्वाहकी दिन रात काम करनेवाली ब्राह्मणी, दिनरात काम करनेवाली नौकरानी हाथसे निकल गई, इससे किसे दुःख नहीं होता, किसकी देह नहीं जलती ?"

जयाके विद्रूपसे अग्निमें घी की आहुति पड़ी । शूलपाणि उठ खड़े हुए और मूठियाँ बाँधकर, दाँत पीसकर बोले-" देख जया, मुँहमें लगाम लगाकर बातें कर ! तू बहुत बढ़ गई है !"

जयाने भी अपने रोषतीव्र स्वरको सप्तमसे दशममें चढ़ाकर कहा-" कर क्या लोग मेरा ? मारोगे ? आओ न ! मुँहमें लगाम लगा कर बातें करूँ! हाह!! क्यों ? बड़े गुणवान भाई हो न ? मुँह जल गया है, जला रहे, अच्छा हुआ । अनाथ बहनको जो इस तरह लांछित करते हैं, उनका मुँह इसी तरह जलना चाहिए । "

विद्याविनोदने शूलपाणिको पकड़कर बिठाया और उनको शान्त करनेकी चेष्टा की । स्मृतिरत्नने जयासे कहा-" कुछ भी कहो बेटी, काम तुमने अच्छा नहीं किया । स्त्रियोंको कभी स्वतन्त्रता न ग्रहण करनी चाहिए । शास्त्रमें लिखा है, कि स्त्रीजाति लड़कपनमें पिताके, युवावस्थामें पतिके और बुढ़ापेमें पुत्रके अधीन रहे ।"

पण्डितोंके डरे हुए मुखोंसे अब बातें फूटीं । स्मृतिरत्नकी व्याख्यामें शास्त्र-प्रमाणकी जो अपूर्णता थी, उसे पूर्ण करते हुए तर्कालङ्कारने कहा-" अभावमें, भाई, देवर, जेठ आदिके अधीन रहना चाहिए । "

न्यायवागीशने जयाकी त्रुटि दिखातेहुए कहा—" तुमने स्वतन्त्र हो बड़ा निन्दनीय कर्म किया है । "

शूलपाणिके बगलमें बैठे हुए विद्याविनोदने-" मधुरेण समापयेत् " कहा । अनन्तर जयासे कहा—" ऐसे राजा-तुल्य भाईका बड़ा अपमान किया है । "

घृणा और विरक्तिपूर्ण स्वरसे जयाने उत्तर दिया—" अरे मरो ! खुशामदी ब्राह्मणो तुम क्या बक रहे हो ? बहुत रुपया देखा है-क्यों ? रक्खो अपना शास्त्र ! देवर, जेठ, बाप, भाईके अधीन रहनेकी बात लिखी है, और मोल ली हुई दासीकी तरह कामकाज न करा, आदर प्रेमके साथ रखना नहीं लिखा है ? यदि यह नहीं लिखा है तो मैं ऐसे काने

किसीकी धान कूट पेट भरती है। जो लोग मेरी ताबेदारी बजाते हैं, उनके ही घर मेरी बहन हो, मजूरी करती है। फिर भी तेरा मुँह देखूँ ?"

जयाको भी क्रोध आगया। वह वैरको भुलाकर भाईसे मिलने आई थी। पर भाईने इतने लोगोंके सामने खरी खोटी सुनाई। ऐसी बातोंसे मिट्टीकी देह भी जल उठती है। उसने भी समान क्रोधसे मुँह हाथ नचा कहा—"ठीक है! तुम्हारे घरमें नौकरानीका काम न कर सकी, इसीसे तुम्हें बड़ा अफसोस है, क्यों? सगी बहन होनेसे एक दिन भी आदर स्नेह किया था। तुम्हारी बहू दिन रात झगड़ा और गाली-फजीहत किया करती थी, कभी मीठी बात न बोली। फिर क्यों तुम्हारी गृहस्थीमें रहती? दोनों वक्त रसोई पकाती थी, बासन मलती थी, पानी भरती थी, दो ब्राह्मणी जितना काम न करसकती थीं उतना काम अकेली करती थी। पर फिर भी रुला धुला कर तुम्हारी बहू दोनों वक्त खाना देती थी। एक ब्राह्मणी भी नौकर रखते तो दस रुपया माहवार देना पड़ता। पर मुझे कभी एक कौड़ी भी न दी। तुम्हारे घरमें मजूरी करती थी, पर एक कौड़ीकी भी आशा न थी, फिर मजूरी करके भी झाड़ू क्यों सहती? क्या मुझे गुलामी करनेके लिए खरीद लाये थे?"

इतनी स्पष्ट उचित बातोंसे शूलपाणिके क्रोधके बढ़नेके सिवा शान्त होनेकी सम्भावना न थी। उन्होंने लाल आँखोंसे ब्राह्मणोंको सम्बोधनकर कहा—"सुन रहे हैं आप लोग इसकी बातें! गृहस्थीमें रहनेपर काम-काज नहीं करना पड़ता? अपनी गृहस्थीमें कौन बैठा बैठा खाना खाता है?"

जया दबनेवाली न थी। उसने भी जवाब दिया—"दिन भर काम-काज करती थी, बैठी रहनेपर कौन खिलाता? मैंने बैठे बैठे कभी खाना नहीं चाहा। बहूको सुस्त देखकर और भाईकी गृहस्थीका खयालकर सब काम-काज खुद करलेती थी। पर दो दिनोंके बाद ही देखा कि मेरे साथ नौकरानी जैसा व्यवहार हो रहा है। गृहस्थीमें रहनेपर काम-काज करना ही पड़ता है, यह क्या मुझे मालूम नहीं? ये सिखा देंगे तभी जानूँगी? जिसके घरमें रहूँगी वह यदि आत्मीय जैसा व्यवहार न करेगा, आत्मीयकी तरह मान न रक्खेगा तो मोल ली हुई दासीकी तरह उसकी गृहस्थीमें मुफ्तमें क्यों काम करूँगी? अपने लिए कौन मरता है? जिसका पति ही छोड़कर चला गया, उसे सुख ही क्या, उसका मान ही क्या? किसी तरहसे दिन काट सकती थी, यही बहुत था। अनाथ भानजेकी ओर भी किसीने कभी

खयाल न किया । क्यों रहती तुम्हारी गृहस्थीमें ? उसको आज तुम्हारे बालबच्चोंके संभालने और हाट-बाजार करनेसे खाना नसीब होता । दुःख होगा नहीं ? शरीर जलेगा नहीं ? बिना तनख्वाहकी दिन रात काम करनेवाली ब्राह्मणी, दिनरात काम करनेवाली नौकरानी हाथसे निकल गई, इससे किसे दुःख नहीं होता, किसकी देह नहीं जलती ?"

जयाके विद्रूपसे अग्निमें घी की आहुति पड़ी । शूलपाणि उठ खड़े हुए और मूठियाँ बाँधकर, दाँत पीसकर बोले-"देख जया, मुँहमें लगाम लगाकर बातें कर ! तू बहुत बढ़ गई है !"

जयाने भी अपने रोषतीव्र स्वरको सप्तमसे दशममें चढ़ाकर कहा-"कर क्या लोग मेरा ? मारोगे ? आओ न ! मुँहमें लगाम लगा कर बातें करूँ! हाह!! क्यों ? बड़े गुणवान भाई हो न ? मुँह जल गया है, जला रहे, अच्छा हुआ । अनाथ बहनको जो इस तरह लांछित करते हैं, उनका मुँह इसी तरह जलना चाहिए ।"

विद्याविनोदने शूलपाणिको पकड़कर बिठाया और उनको शान्त करनेकी चेष्टा की । स्मृतिरत्नने जयासे कहा-" कुछ भी कहो बेटी, काम तुमने अच्छा नहीं किया । स्त्रियोंको कभी स्वतन्त्रता न ग्रहण करनी चाहिए । शास्त्रमें लिखा है, कि स्त्रीजाति लड़कपनमें पिताके, युवावस्थामें पतिके और बुढ़ापेमें पुत्रके अधीन रहे ।"

पण्डितोंके डरे हुए मुखोंसे अब बातें फूटीं । स्मृतिरत्नकी व्याख्यामें शास्त्र-प्रमाणकी जो अपूर्णता थी, उसे पूर्ण करते हुए तर्कालङ्कारने कहा-" अभावमें, भाई, देवर, जेठ आदिके अधीन रहना चाहिए ।"

न्यायवागीशने जयाकी त्रुटि दिखातेहुए कहा—" तुमने स्वतन्त्र हो बड़ा निन्दनीय कर्म किया है ।"

शूलपाणिके बगलमें बैठे हुए विद्याविनोदने-" मधुरेण समापयेत् " कहा । अनन्तर जयासे कहा—" ऐसे राजा-तुल्य भाईका बड़ा अपमान किया है ।"

घृणा और विरक्तिपूर्ण स्वरसे जयाने उत्तर दिया—" अरे मरो ! खुशामदी ब्राह्मणो तुम क्या बक रहे हो ? बहुत रुपया देखा है-क्यों ? रक्खो अपना शास्त्र ! देवर, जेठ, बाप, भाईके अधीन रहनेकी बात लिखी है, और मोल ली हुई दासीकी तरह कामकाज न करा, आदर प्रेमके साथ रखना नहीं लिखा है ? यदि यह नहीं लिखा है तो मैं ऐसे काने

शास्त्रको नहीं मानती। स्त्रियाँ क्या बिलकुल अकारथ हैं, उनके आत्मा नहीं, उनको सुख-दुःख, मान अपमानका ख़याल नहीं ? वे देवर, जेठ, भाई, भाभी आदिकी सेवा करनेके लिए ही पैदा हुई है ? क्यों ? क्यों इतना सहती ? मजूरी कर पेट नहीं चला सकती थी ? नौ महीने जब तकलीफ उठा लड़केको पेटमें रक्खा है, तब दूसरेका मुँह न ताक मिहनत मजूरी कर उसका पालन न कर सकती थी ? यही तुम्हारे शास्त्रकी व्यवस्था है ? चूल्हेमें जाय ऐसा शास्त्र ? "

शूलपाणि अबतक क्रोधसे फूल रहेथे। जयाके मुँहसे ऐसी आत्मनिर्भरता और स्त्रीजातिके अधिकारकी अवतारणा सुन क्रोध विकृत मुखसे बोले—" बहुत भारी आदमी हो गई है ! बड़ा मान है ! यदि मेरी गृहस्थीमें रहनेसे इतना अपमान हुआ था, तो मेरे घरमें क्यों ठहरी है ? जा आज ही मेरे घरसे निकल जा। मेरे घरकी हद पर पैर भी न रख पावेगी। "

जयाने उत्तर दिया—" अपनी कमाईसे घर बनवाया है ? जिनका घर है, तुम भी उनकी सन्तान हो, मैं भी उनकी सन्तान हूँ। मैं बहती बहती तो आई नहीं हूँ। अपने बापके घरके एक कोनेमें भी मैं रह न सकूँगी ? "

शास्त्रविधिसे बहिर्भूत इस अनुचित दावेका प्रतिवाद करने के लिए स्मृतिरत्न बोले—" बेटी, यह तुम्हारी अनुचित ज़िद है। पुत्रके मौजूद रहते पिताके धन पर कन्याका कोई अधिकार नहीं है। "

" हाँ हाँ ? इस वक्त मेरे सब काम ही अनुचित हैं। इस वक्त मेरा माणिक यदि किसी ऊँचे ओहदेपर होता तो उल्टी ही व्यवस्था होती। शायद तुम्हारे शास्त्रकी ऐसी ही व्यवस्था होगी। लड़की बापकी सन्तान नहीं ? पतिके यहाँ खड़े होने के लिए भी जगह होनेपर बापके घरके एक कोनेमें भी वह टिक नहीं सकती ? शायद शास्त्रमें यह भी लिखा है ? लिखा भी हो तो मैं मानती नहीं। मैं अपने बापके घरमें रहती हूँ, रहूँगी ही। किसकी मजाल है जो मुझे निकाल दे। "

दर्पपूर्वक अपने अधिकारपर ऐसी दृढता प्रकट कर जया चली गई।

" अति प्रचण्डा। "

" साक्षात रणचण्डिका। "

" ऐसी मुखरा नारी जिस घरमें रहती है, उसमें लक्ष्मी नहीं रहती । "

" ऐसी अलक्ष्मीरूपा नारी जो स्वेच्छापूर्वक यहाँसे चली गई, इसे बाबूके सौभाग्य ही समझिये । "

शूलपाणिके समग्र शरीरमें आगसी जल रही थी । इन सब बातोंपर ध्यान न दे वे एक तकिये के सहारे लेट गये और फिर उठ बैठे । पास एक पंखा रक्खा था, उसे हाथसे उठा लिया । स्नेहप्रवण एक वृद्ध ब्राह्मण उनके हाथसे पंखा ले हवाकर बाबू के उष्ण शरीर और अत्युष्ण मस्तिष्क को शीतल करने लगा । शूलपाणिने नौकरको पुकारा और रूखी आवाज़से कहा—" ऐ रतना हरामज़ादा ! ज़रा तमाखू भर लाना । हरामज़ादी शरीरको एकबारगी जलागई । "

विद्याविनोदने श्रद्धा और सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—" अहाहा ! बाबूमें कैसा धैर्य है ! "

तर्कालङ्कारने दृष्टान्त दे समर्थन किया—" साक्षात् रामचन्द्र हैं । "

न्यायवागीशने इस दृष्टान्तको ले कहा—" बाबूकी स्वर्गीया जननी कौशल्या कैसी रत्नगर्भा थी ! जिस गर्भसे इस रत्नकी उत्पत्ति हुई है उसी गर्भसे उस दुर्वृत्ताका जन्म कैसे हुआ ? किमाश्चर्यमतः परम् । "

स्मृतिरत्नने कई उपमाओंसे इस समस्याकी पूर्त्ति की—" भगवती धरित्री जिस गर्भमें रत्नराजि धारण करती है, उसी गर्भसे अग्नि उत्पन्न कर प्रलय करती हैं; समुद्रको मथनेसे समुद्र-गर्भसे अमृत और विष दोनों ही पैदा हुए थे; जो बादल पानीको बरसाकर धरतीको शीतल और हरी-भरी करते हैं, वे ही बादल बिजली भी गिराते हैं; जिस साँपके सिरमें मणि होती है, उसी साँपके दाँतोंमें विष भी होता है । अतएव आश्चर्य्यं नास्त्यत्र किञ्चित् । "

तमाखू पीनेसे, पंखा झलनेसे और कुछ कालतक आत्म-चिन्तन करनेसे शूलपाणिका क्रोध शान्त हुआ । वे मन ही मन कुछ लज्जित भी हुए । पण्डितोंके आगे अन्य लोगोंकी तरह उन्होंने इतना क्रोध प्रकटकर अच्छा काम नहीं किया । किन्तु जो हो गया, उसका अब कोई उपाय नहीं । शूलपाणि अपने भाव छिपानेमें बहुत दक्ष और अभ्यस्त थे । फिर वे प्रसन्न हो मुस्कुराये । पण्डितोंने भी एक दूसरेका मुँह ताक, मुस्कुरा, आँखें नचा, सिर हिला आनन्द प्रकट किया ।

इसी समय मुखोपाध्यायके साथ सार्वभौम ठाकुर आ पहुँचे।

" ब्राह्मणेभ्यो नमः। "

" ब्राह्मणाय नमः "

शूलपाणि भी अदबके साथ उठे और उन्होंने हाथ जोड़कर सार्वभौम ठाकुरका अभिवादन किया और आसन ग्रहण करनेकी प्रार्थना की।

यथारीति अभिवादन, प्रत्यभिवादन, आसन-ग्रहण और परस्परके कुशल प्रश्नादिके बाद शूलपाणिने अत्यन्त विनीत भावसे कहा—"देखिये सार्वभौम महाशय, ये सब लोग यहाँ एकत्र हुए हैं; इसीसे आपको बुलाया है। आपके आशीर्वादसे बेटा हिरण विलायतसे बारिस्टर हो आया है। आप सबका ही लड़का है, आप सब उसे अपना लें, यही प्रार्थना है। विलायतमें भी वह हिन्दू-आचारसे ही रहता था। वहाँ--"

सार्वभौम ठाकुर शूलपाणिको बाधा दे बोले—" हाँ बेटा, मुखोपाध्यायसे सब सुना है। पर विलायतमें हिरण नौकर-चाकर और तुलसी-वृक्ष साथ ले गया था, और हिन्दू-आचारसे ही रहता था, इन सब बातोंको जाने दो। हिरण विलायत गया था, उसने विलायतमें म्लेच्छोंके संसर्गमें रह म्लेच्छोंका भोजन किया होगा, इसीसे उसे समाजसे बाहर रहना पड़ेगा, यह कोई बात नहीं। शिक्षा, वाणिज्य और राजकीय कार्योंसे म्लेच्छ देशको जानेपर, म्लेच्छोंका संसर्ग और म्लेच्छोंका खाना खाना दुष्परिहार्य्य है, इन सब छोटे दोषोंका विचार करनेका समय नहीं। और विचार करनाभी फ़ज़ूल है। देशमेंही सैंकडों लोग म्लेच्छका संसर्ग करते हैं, म्लेच्छोंके यहाँ खाना खाते हैं। हम लोग देख-सुनकरभी चुप रहते हैं। फिर हिरणने विलायत जाकर और ये सब काम कर क्या बड़ा अपराध किया? नाम मात्रके लिए गुप्त रीतिसे, किन्तु कार्यतः प्रकाश्य भावसेही, जो हो रहा है, जिसे कोई रोक नहीं सकता, कालधर्मानुसार जो जल्दी ही समाजमें प्रचलित हो जायगा ही, उसे नाहक " दोष दोष " कह हम लोग लोगोंको झूठ बोलनेके लिए लाचार करते हैं। यदि ऐसा न होता, तो बेटा, तुम्हें नौकर-चाकर और तुलसी-वृक्ष साथले जानेकी झूँठी बातें न गढ़नी पड़तीं। "

शूलपाणिने लज्जित हो कहा-" सार्वभौम महाशय, आप बड़े उदार-चरित हैं। पर मेरी बातें बिल्कुल झूँठी नहीं। फिर भी—

" जाने दो बेटा, इन सब बातोंके कहनेकी जरूरत नहीं । ऐसी बातें जो बनानी पड़ती हैं, उसके दोषी तुम लोगोंकी अपेक्षा हमलोग ही अधिक हैं । "

शूलपाणिने बड़ा भरोसा पाकहा–" तो इन सब लोगों ने अपनी सम्मति दे दी है । अब आपभी यदि सम्मति दे दें, तो हिरणके समन्वय–अनुष्ठानका प्रबन्ध किया जाय । "

सार्वभौमने कहा–" समन्वय–अनुष्ठानकी जरूरत क्या बेटा ? हिरण घरका लड़का है, घर आये, हम लोगोंका हो, हम लोगोंके साथ रहे, छातीसे लगा लेंगे । प्रायश्चित्त, गङ्गास्नान, भूरिभोजन, दानदक्षिणाकी कोई जरूरत नहीं बेटा, हिरणको देखना चाहते हैं । देखना चाहते हैं कि, हिरण हम लोगोंका ही है, ईसाई तो नहीं बन गया, ईसाइयों की तरह हम लोगोंसे घृणातो नहीं करता । देखना चाहते हैं कि, हिन्दू बालक हिरण हिरण ही है, साहब तो नहीं हो गया । ऐसा होनेसे इन सबके पहले मैं स्वयं उसे अपना लूँगा, गोदपर बिठा लूँगा । नहीं तो इन लोगों की जैसी इच्छा हो करें । "

शूलपाणिने देखा, बडी कठिन समस्या आपड़ी है । सार्वभौम ठाकुरको फुसलाकर अपनां काम बनानेकी सम्भावना नहीं । फिर भी कहा–" तो समन्वयके समय तो हिरण आ न सकेगा–इस बीचमें उसका नाम बहुत फैल गया है–एक दिनके लिए भी उसे फुरसत नहीं मिलती । "

सार्वभौमने उत्तर दिया–"यह क्या कहते हो बेटा ? ऐसा काम आ पड़ने परभी फुरसत न मिलेगी । न हो, कुछ नुकसान ही सही ! "

" सार्वभौम महाशय, उसे आनेकी सुविधा न होगी । "

" ता इसका अर्थ यह है कि हिरण हम लोगों का नहीं है । हम लोगोंका हो लोगोंके बीच रहना नहीं चाहता । हम लोगोंको तुच्छ समझ, साहब हो साहबोंके समाजमें रहना चाहता है । नहीं बेटा, ऐसी दशामें, यदि तुम मेरे घरको सोनेसे भी मढ़ा दो तो भी मैं उसे ग्रहणकरनेके लिए तैयार नहीं । "

शूलपाणिने कहा—" पर ये सबलोग तो तैयार हैं । आप क्या इन सबका परित्याग करेंगे ? "

सार्वभौमने कहा––" मैं इन लोगोंको त्याग देना नहीं चाहता । फिर भी यदि ये लोग समाजके कल्याणकी ओर ध्यान न देंगे तो लाचारी है । क्यों स्मृतिरत्न, तुमलोग क्या ऐसी दशामें भी हिरणको ग्रहण करनेके लिए प्रस्तुत हो ? "

पण्डितलोग पहले बहुत उछल-कूद रहे थे, पर तेजस्वी सार्वभौम ठाकुरके आगे वे सब सङ्कुचित हो गये । सूर्यके प्रकाशके आगे जैसे जुगनू तेजहीन हो जाते हैं, वैसेही सार्वभौम की प्रखर प्रतिभाके आगे ये लोग भी तेजहीन हो गये । लज्जित स्मतिरत्नने अत्यन्त सङ्कुचित हो कहा—" हाँ, हिरणने गंगास्नान किया है, बाबू-स्वयं प्रतिनिधि हैं, इसलिए हम सबने स्वीकर कर लिया है "

विद्याविनोद आदि तद्वत् भावसे बोले " हाँ,—तो यदि आप भी—"

" नहीं नहीं, तुम लोगों की जैसी इच्छा हो करो । ऐसी दशामें मैं किसी तरह प्रस्तुत नहीं । तो अब जाऊँ शूलपाणि ? "

शूलपाणिने उठकर और हाथ जोड़कर कहा—" फिर और क्या कहूँ ? पधारिये, नमस्कार ।"

" सुखी रहो "

सार्वभौम बिदाहुए । शूलपाणिके साथ कुछ पण्डित भी उठकर उनको दरवाजे-तक पहुँचाने गये ।

सूर्यास्त हो गया । जुगनू फिर जगमगाने लगे ।

" वाह ! ठाकुरके बड़ा तेज है ! "

" किस तरह अहिन्दूकी तरह बातें कहीं; बाबू सुना आपने ? "

बड़ा ढोंगी है, बड़ा पाखंडी है ! उसका आचरणभी बड़ा जघन्य है ! भाग्यसे कुछ नामी-गरामी हो गया है, नहीं तो अबतक सबसे बिलग हो रहना पड़ता । "

आप यदि जरा सा सहारा दें बाबू, तो उसे समाजसे बाहर कर आपके इस अपमान का बदला लूँ । "

शूलपाणिने कहा—" अच्छा, इसके बाद देखा जायगा। समन्वय तो हो जाय । उसमें बड़ा मिजाज है । और नामभी बहुत है । देर बहुत हो गई; जाइये आप लोगभी, नमस्कार । "

ब्राह्मण-पण्डितों का दल बिदा हुआ। शूलपाणि और मुखोपाध्याय स्नानाहारके लिए उठगये ।

कुछ दिनों के बाद ही बडे धूम धामसे हिरणका समन्वय-अनुष्ठान सम्पन्न हुआ।

तेरहवाँ परिच्छेद

पश्चिम-यात्रा

दुर्गापूजाका समय निकट है । कोई एक महीना बाकी है । वृक्षोंके सब नारियल पक गये हैं । जयाने एक दिन नारियल तोड़ने के लिए गदाको बुलाया । उत्साहपूर्वक हँसता हुआ गदा नारियलके पेड़ पर उचक-उचककर चढ़ गया । नारियल पट-पटकर ज़मीनपर गिरने लगे । जयाके १०।१२ नारियलके पेड़ थे । गदाने पारी पारी से सब पेड़ोंपर चढ़ नारियल तोड़े । जयाने नारियलोंको इकट्ठा कर आँगनमें उनका ढेर लगा दिया ।

गदा नीचे उतरा और नारियलोंका ढेर देखकर बोला --" अर वाह ! नारियल तो थोड़े नहीं ! इतने नारियलोंकी क्या करोगी ? छोटे दादा ठाकुर तो नौकरी पर हैं, तुम अकेली घरमें बैठे-बैठे सब नारियल खालोगी ! "

जयाने मुस्कुराते हुए कहा-" मुहँजल ! क्या मैं खाऊँगी ? माणिक जब आवेगा तो वह खावे-खिलावेगा । जो बाकी बचेंगे उनको बेंच दूँगी । "

गदाने कहा-" तुम बेंचोगी भी कितना ? आजकल छोटे दादा ठाकुर तो नौकरी पर हैं; बेंचना होगा तो बेंचना, पर इतना रुपया जमाकर क्या करोगी ? लड़के का व्याहभी तो किया नहीं अबतक । बेंचना होगा बेंचना; खुदभी तो खाओगी और बाँटोगी भी । मुझे एक नारियल दो न, खाऊं । इतनी मिहनत कर नारियल तोड़े है, मुझे एक भी न दोगी ? नहीं; पापी मुँहसे रामनाम न निकलेगा । "

" तो खा न ? तू जितने खा सके खा । "

आहा ! पके नारियल खाकर मरजाऊँ क्या ? जब हरे थे, तब जितने नारियल चाहतीं देतीं; तुम्हारे पेड़ सहित खा जाता । तब तो दिया नहीं । अब कहती हो, जितने खा सके खा, और खाकर मर जा । फिर दो एक, खाऊँ । और ज़रा गुड़ भी ला दो । "

" ले न । जो नारियल चाहता हो ले ले । "

" नहीं फूफी ! अपने हाथसे मैं न ले सकूँगा । दूसरेके घरसे कोई बढ़िया चीज अपने हाथसे उठाई जाती है ? लाज नहीं लगती ? मैं सोचता हूँ कि, उस बड़े नारि-

यलको, यदि पा जाऊँ तो, खालूँ। तुमको भी उसीका लोभ होगा। तुम अपने हाथसे कोई एक उठा दो। किन्तु मान लो यदि मैं अपने हाथसे उस नारियलको उठा खाने लगूँ तो तुम मनही मन क्या यह न सोचोगी कि गदा पूरा गधा है। नहीं फूफी! मैं खुद अपने हाथसे न लूँगा। तुम्हीं अपने हाथसे कोई एक उठादो।"

जयाने मुस्कुराते हुए गदाको वाञ्छित नारियल उठाकर दे दिया। गदा-आँगनमें एक ओर बैठा गड़ासी ले नारियल छीलने लगा। जया गुड़ लेने भीतर गई।

"जया फूफी! जया फूफी!"

हाथमें एक चिट्ठी लिए मदन दिखाई पड़ा। हिः हिः हिः! दादा ठाकुर, फूफीके नारियल तोड़ दिये हैं, इसीसे देखो फूफीने सबसे बडा नारियल अपने हाथसे उठा मुझे खानेको दिया है।

"तो खा। जया फूफी कहाँ है? जया फूफी!"

"कौन मदन? आ बेटा, क्या है?" जया गुड़भरा कटोरा हाथमें लिये बाहर निकलीं।

"माणिककी चिट्ठी आई है—उसने तो फौजदारी कर दी है।"

"क्या? क्या हुआ है? उसने क्या किया?"

"आफिसके साहबको खूब मार-पीटकर भाग गया है।"

जयाके हाथसे गुड़का कटोरा गिर गया। गदाने भी नारियलको जमीनपर रख गड़ासी लिये मुँह ताका। जयाने कहा—"गजब हुआ! साहबको मार-पीट-कर भाग गया! क्या होगा मदन?"

"क्या होगा? यदि पकड़ा जायगा तो कुछ महीनोंके लिए जेल हो सकता है। पर दो चार छः महीने जेलमें रहनेसे माणिकका क्या बिगड़ जायगा?"

"हाँ! जेल होगा? क्या कहता है मदन? मैं फिर क्या करूँगी!"

गदा हाथसे गड़ासी फेंक खड़ा हो गया। मदन बोला–"करोगी क्या? घर बैठी खाओगी, सोओगी और घूमोगी।"

यह सुनकर गदा बोला–"दादा ठाकुर, ऐसी बात कहते हो! लड़का जेलमें रहेगा और माँ घरमें निश्चिन्त बैठी खावेगी, सोवेगी और घूमेगी!"

मदनने कहा-" छिः जया फूफी ! तुम पागल हुई हो ! इस ज़रासी बातके आ पड़नेसेही आँखोंसे आँसू टपकने लगे ! "

जयाने आँसू पोछ डाले और कहा-" बात क्या है मदन ? क्यों मारा, कहाँ भाग गया ? "

यह उसकी चिट्ठी है-सुनो । मदन माणिककी चिट्ठी पढ़कर जयाको सुनाने लगा ।

" मदन दादा,

जिस बातका डर था, वही बात हुई । आज हठात् साहबसे सामना हो गया । वंशी सालकी तरह लम्बा सलाम न करनेसे साहबने जातेही गाली दी । मुझेभी गुस्सा आया, मैंनेभी दो बातें सुनाईं । साहबने उठकर मुझे दो घूँसे मारे । मैंने भी धक्का दे सालेको चित कर दिया, छाती और मुँहपर कई खासे लात जड़े । उसके मुँहसे खून गिरने लगा और साला बेहोश हो गया । मैं वैसे ही चम्पत हुआ । यहाँके लोग कुछ दिनोंतक छिपकर रहने की सलाह देते हैं । मामलाभी कुछ संगीन हो सकता है । फिरभी यदि साहब सहजमें ही आराम होगया तो किसी तरहसे मामला रफा-दफाभी हो सकता है । साहब लोग मार खानेपर वे भी मारते हैं, हम लोगोंकी तरह नालिश करनेके लिए अदालतको नहीं दौड़ते । सब लोग कहते ही हैं, मैंने भी सोचा है कि कुछ दिन छिपकर रहना बुरा नहीं है । पीछे अवस्था देखकर जैसा उचित होगा, किया जायगा । इस बीचमें मैं पश्चिमकी ओर घूम आता हूँ । पश्चिमकी ओर पहले कभी गया नहीं हूँ । माँको देखना, जिससे रोये नहीं ।

माणिक । "

" सुना जया फूफी, डरकी कोई बात नहीं है । माणिक जल्दी ही लौट आवेगा । देखना, कुछ होगा नहीं । ऐसेही सब बखेड़ा मिट जायगा । उस दिन वह कह रहा था कि वह साहब बड़ा पाजी है । क्लार्कोंसे कुत्तों की तरह बर्ताव करता है । बातों ही बातोंमे ' हरामजादा ' ' साला ' आदि कह गाली देता है । बहुत नाराज़ हो जानेपर लात-घूँसों से भी खबर लेता है । "

जयाने कहा--" ऐसी गालियाँ देता है ! गाली और लात-घूँसे सहकर लोग नौकरी करते हैं ? उनमें क्या मनुष्य की आत्मा नहीं ? राम ! राम ! इससे तो

मजूरी कर पेट चलाना अच्छा है । माणिकने मारा है, अच्छा किया है । जेल जाना होगा, जायगा । नौकर होकर क्या कोई गाली-गलौज और मार सह सकता है ? "

" हाँ, यही मेरी जया फूफीकी राय है, माणिककी माँ की सी राय है ! "

गदाने कहा-"फूफीकी राय मानुष जैसी है ! मानों सुमितरा रानीने लक्षिमनको वनवासके लिए साजकर भेजा है । छोटे दादा ठाकुरका क्या कहना ! हाथोंका कैसा सुख लूटा ! और मैं बैठा हुआ नारियल छीलता हूँ। "

जयाको कुछ शान्त देखकर गदा फिर नारियल छीलने लगा ।

जयाने पूछा--" कब लौटेगा, कुछ लिखा है ? "

" नहीं, स्पष्ट तो कुछ लिखा नहीं है। यदि मामला संगीन न हुआ तो पूजाके दिनोंके भीतर लौट आ सकता है। पर एक काम करूँ न जया फूफी ! मैं भी जाऊँ उसे ला दूँ। मैं भी पश्चिमकी ओर घूम आऊँगा । माणिक घूम आवेगा, और मैं न घूम आऊँ ? "

मदनको बाहरी ज्ञान अधिक न था । पश्चिमकी ओर घूम आनेकी बात यद्यपि छोटी है, पर पश्चिम देश कितना बड़ा है, समुद्रमेंसे बालूके कणोंकी तरह वहाँ माणिकको खोजलेना कितना कठिन है, मदनको शायद इस बातका खयाल नहीं हुआ । यदि उसे खयाल होता तो ऐसा असम्भव प्रस्ताव न करता ।

" तुम जाओगे बेटा ? "

मदनने जवाब दिया-" आज ही जाऊँगा । मनमें जब यह बात उठी है, तब जाऊँगा ही । देखना, पूजाके दिनोंके भीतरही माणिक को साथ ले लौट आऊँगा । "

गदाने कहा- ' दादा ठाकुर, मुझेभी अपने साथ लेते चलो, मैं भी घूम-घाम आऊँ । हम लोग गरीबों के लड़के हैं, हम लोगोंको बाहर घूमने जानेकी सुविधा कहाँ ? तुम्हारे पाँव पड़ताहूँ दादा ठाकुर, दयाकरके मुझेभी अपने साथ ले चलो । "

" अच्छी बात है, चलेगा ? एक नौकर साथ रहनेमें बुराई क्या ? "

गदाने तब बुद्धिमानोंकी तरह सिर हिलाकर कहा-" परदेशमें दूसरा साथी होनेसे बड़ी सुविधा होती है । मानलो, तुम नहाने-धोने या और कहीं गये, मैं गठरी-पोटली देखता बैठा रहा । इससे कोई सामान तो चुरा न सकेगा ? फिर देखो, चिलम

भी चढ़ा दिया करूँगा । तमाखू तो पीते ही हो, मुँहसे हुक्का छूटता नहीं । अपने हाथसे तो एक चिलम भी चढाकर नहीं पीते ।"

गदाने सेवा करने की जो इतनी ज़रूरत दिखाई मदनने उसकी ओर ध्यान न दे जया से कहा-" तो जाता हूँ अब जया फूफी, आज ही रवाना हूँगा । चल गदा, चलता है ?"

" अभी ही क्या चलोगे ? नहाओ-खाओगे नहीं !"

" अभी नहीं, रातको जाऊँगा ।"

" फिर मैं इस नारियलको खाकर आता हूँ । फूफीने अपने हाथसे मुझे यह नारियल खानेको दिया था, पर तुम्हारी रंग-बिरंगी बातों में उलझ जानेसे इसे अबतक छीलभी नहीं सका । वाहरे अभाग ! गुड़ का कटोरा देखो ज़मीनपर लुढ़क गया ! लड़केकी चिन्तामें फूफी बेखबर हैं । फूफी, जरा गुड़ ला दो न, नारियलको खालूँ । सोच कर क्या करोगी ? दादा ठाकुर जाते हैं, मैं जाता हूँ, देखना, पूजाके दिनों के भीतर ही तुम्हारे 'माणिक' को ला तुम्हारी गोदमें बिठा देंगे ।"

जयाने गुड़ ला दिया । गदा गुड़ और नारियल खाने लगा ।

द्वितीय खण्ड.

प्रथम परिच्छेद

सखी-लाभ

कोई एक पहर दिन चढ़ आया है। वराह नगरमें गंगाके किनारे एक सुन्दर सुसज्जित उद्यानगृह है। पेड़ोंके पत्तोंपर, फूलोंकी पँखुरियों पर, हरी घासकी रविशोंपर अब भी ओसके कुछ कण नजर आते हैं। तरंगोंसे क्षुब्ध हुई गङ्गाके शीतल जलकी शीतलता ले, हजारों पुष्पोंका सुगन्ध ले, पुष्पित लता-कुंजोंके कोमल किशलयोंको कँपा, सूखे फूलोंकी पँखुरियोंको नीचे गिरा, नाच-नाच कर वायु वह रहा है। कहीं दूर पर पेडोंकी डालियोंपर, कहीं पास ही लता-कुंजोंमें बुलबुल, श्यामा आदि छोटी-छोटी चिडियोंकी मधुर संगीतलहरी रह रह कर उठ रही है। भौंरे जगह-जगह गूँजते हुए मधु पी रहे हैं। कुछ दूर पर कृत्रिम जलाशय है, जो नारियल, केले, सागौन आदिके पेड़ोंसे घिरा है। उसके जलमें राजहंस तैर रहे हैं। किनारेपर मोर अपना आहार खोज रहे हैं। दूसरी ओर हरी घास पर मृगोंके छोटे-छोटे बच्चे फुदक रहे हैं। साफ कपडे पहने हुए दो माली, चुपचाप घूम-घूम कर, बागके सजानेमें अपनी निपुणता दिखा रहे हैं।

पाठक! इस ओर देखिये। इस सुन्दर उद्यान की सारी शोभा छीन कर, गुलाबके कुंजमें गुलाबदानी-जैसी एक सुन्दरी युवती मर्मर पत्थरकी बेंचपर आरामसे बैठी है। युवतीका वेश-भूषा साहबी ढंग का, बड़े घरवालोंका सा है। उसकी सुवासित, काले, घने घुँघरवाले खुले बाल कंधे और पीठपर लटककर बेंचको चूम रहे हैं। सामने सिरपर फीतेसे सुन्दर फूल बँधा है। हाथोंमें हीरेजड़े कड़े पड़े हैं, गलेमें हीराजड़ी माला है, कानोंमें मरकतमणिके इयरिंग हैं। छातीके पास कपडेमें सोनेकी ब्रुच लगी है, जिसपर हीरा और पोखराज जड़े हैं। पाँवोंमें गुलाबी रंगका मोजा और बक्लेस लगा चमकता हुआ पालिश किया जूता सुशोभित है। युवतीका खूबसूरत चेहरा भरा हुआ है। चेहरेपर अत्यन्त

सुन्दर, सरल, शान्त स्निग्ध भाव झलकता है; उसपर रूप और वेशभूषाके गर्वका जी जलानेवाला तेज झलक रहा है ।

पासही कदमके पेड़की घनी पत्तियोंकी ओटमें मीठे स्वरसे एक चिड़िया चहक उठी । अलस उदास भावसे बेंचकी पीठसे अपनी पीठ टेककर आँखें आधी बन्दकर युवतीने चिड़ियेकी बोली सुनी । चिड़ियेकी बोली बन्द हुई । पासही एक भौंरा गुनगुनाता हुआ गुलाबके एक फूलसे दूसरे फूलपर जा बैठा । युवतीने उठकर उस ओर देखा । दोनोंही फूल कँप रहे थे । युवतीने भौंरेको भगाकर उसके वाञ्छित फूलको तोड़ लिया । उसने फूलको घुमा-फिराकर देखा, सूँघा, अनन्तर वह अन्यमनस्क भावसे उसकी पँखुरियाँ अलग-अलग कर फेंकने लगी । सहसा हाथके आधे फूलको फेंककर वह खड़ी हो गई । वह लड़खड़ाते पाँवोंसे जरा आगे बढी और इस ओर उस ओर घूमकर अपने मनही मन बोली—" नहीं ! कुछ सुनता नहीं । ऐसी कोई सङ्गिनी भी नहीं; जिससे मनकी दो बातें कह सकूँ । इस तरहसे क्या दिन कटते हैं ? ठीक पालतू मैनाकी तरह सोनेके पींजरेमें बड़े प्रेमसे दिया हुआ अन्नजल खाती हूँ, सिखाई हुई बोली बोलती हूँ और छटपटाकर यह सोचती हूँ कि किधर भागूँ । अच्छा, बाप क्या चाहते हैं ? इसी तरह बीबियाना ढंगसे खाली सजबज कर जिन्दगी बिता देनी होगी ? कब—उस दिन व्याह हुआ था, उसी वर की, उसी ससुराळकी, पुराने स्वप्नकी तरह, याद आती है । वह वर अब कितना बड़ा है, देखनेमें कैसा है, क्या करता है, क्या जानता है ? चूल्हेमें जाय, यह सब सोचना फ़जूल है । यदि कोई मनमानी संगिनी मिल जाती तो मनकी बातें कह दिन बिता सकती । फिर भी जैसी तैसी मिस बनर्जी थीं भी, उनको भी बुढ़ापेमें वर मिला, व्याह हुआ; वे भी चली गईं । दूसरी जो दो हैं, वे केवल 'सलाम' और 'मिस बाबा' कहना जानती हैं । इस तरह अकेली रहनेसे दिन नहीं बीतते । कोई दूसरी सङ्गिनी मिल जाती तो अच्छा होता । "

पासकी दीवारके बाहर, गंगाके किनारे, कोमल रमणी कंठसे, ऊँचे स्वरमें, गानेकी तान निकल सुनाई पड़ी—

" बताओ सखि, कौन गली गये श्याम,
बताओ सखि, कौन गली गये श्याम ? "

एमाने कान देकर गाना सुना । पाठक ! यह युवतीही हमारी पूर्वपरिचित गौरी है । अब वही 'एमा' कही जाती है; मालूम होता है, उसका अधिक परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं । यह उद्यानगृह घनश्यामका है । गरमीके मौसममें वे प्रायः यहीं रहते हैं ।

" बताओ सखि, कौन गली गये श्याम,
बताओ सखि, कौन गली गये श्याम ? "

गाना और गानेवालीका स्वर एमाको बहुत मीठा लगा । एमाने आवाज़ दी–" माली " । मालीने आकर सलाम किया । एमाने कहा–" बाहर कौन गाता है, बुला तो ला । गाना सुनूँगी । " " जो हुक्म मिस बाबा " कह माली चला गया । गानेवाली गाने लगी—

" गोकुल ढूँढी, वृन्दावन ढूँढी "
ढूँढ फिरी नँदग्राम ।
बताओ सखि, कौन गली गये श्याम ?

सहसा गाना बन्द हो गया । जराही देरमें मालीके पीछे-पीछे गानेवाली बागमें आ पहुँची । गानेवाली सुन्दरी युवती है, वृन्दावनवासिनी वैष्णवीका वेश धारण किये है । गानेवाली एमाको सलाम करके अदबके साथ एक ओर खड़ी हुई । माली अपने कामपर चला गया । एमाने पूछा—" तुम्हीं गारही थी ? तुम तो अच्छा गाती हो, गाओ न, मैं सुनूँगा । "

वैष्णवीने गाया—

" बताओ सखि, कौन गली गये श्याम ?
ऐ बताओ सखि, कौन गली गये श्याम ॥
गोकुल ढूँढी, वृन्दावन ढूँढी, ढूँढ फिरी नँदग्राम ।
बताओ सखि, कौन गली गये श्याम ?
बिन देखे मोंहि कल न पड़त है, तलफत आठों जाम ।
बताओ सखि, कौन गली गये श्याम ?
रसिक पियासे वेगि मिलाओ, जपा करूँ नित नाम ।
बताओ सखि, कौन गली गये श्याम ? "

गाना बन्द हुआ । मुग्धा एमाने एक गंभीर निःश्वास छोड़ा । वैष्णवीने पूछा—
" और गाऊँ ? "

" हाँ, और गाओ, ऐसाही मीठा गाना गाओ । "

वैष्णवीने गाया—

" ऊधो, कान्हासे कहियो जाय ।
ऊधो, कान्हासे कहियो जाय ॥
बालापनकी प्रीति छाँड़िके
कुबरी सवति पै रहे लुभाय ॥
ऊधो, कान्हासे कहियो जाय ।
अधर मधुर धुनि बँसिया बजाके,
सखि मन लीन्ह लुभाय ।
ऊधो, तुम कहियो जाय ॥
बाँकी अदा दिलदार दिखाके,
मेरो मन लियो है चुराय ।
ऊधो, तुम कहियो जाय ॥
कौन सी चूक पड़ी गोपिन से,
जेंहि कारन विसराय ।
रसिक पिया बिन बिकल विरहिनी,
कर मल-मल पछिताय ।
ऊधो, तुम कहियो जाय । "

एमाने और एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा । वैष्णवीने फिर पूछा-" और एक गाऊँ ?"
एमाने कहा-" गाओ "

वैष्णवीने गाया-

दृगनमें आय अड़ी छवि, जहँ देखों तहँ श्याम,
सुखमें, दुखमें, मुखमें, मनमें मूरति मधुर ललाम ।
घरमें, वनमें, तनमें वैसे तीरथमें अभिराम,
सुनति रहति प्यासी सी निशि दिन बंशी स्वर अविराम ।
मैं बूड़ी हौं श्याम-समुद्में औरन सों नाहिं काम ।

दृगनमें आय अड़ी छवि०
जप है, तप है, मन्त्र ध्यान है, मूरति ललितललाम,
श्याम भूप है मनका मेरे, नाम रूप है श्याम।
मैं तो अली बिकानी वहि पै, बनक बनी जो बाम।
दृगनमें आय अड़ी छवि, जहँ देखों तहँ श्याम।"

मुग्ध एमाने और एक गंभीर निःश्वास छोड़ा। अनन्तर उसने छातीसे ब्रुचको खोल कर वैष्णवी को दे दिया और कहा—" तुम बहुत अच्छा गाती हो, ऐसा मीठा गाना कभी मैंने सुना नहीं। यह तुमको इनाम देती हूं।"

वैष्णवीने सलाम करके कहा—" मेम साहब, मैं वैष्णवी हूँ, भीख माँगकर खाती हूँ, इसे ले क्या करूँगी? कहीं बेचने भी जाऊँगी तो चोर कही जाकर पकड़ी जाऊँगी।"

एमाने कहा—" इसे तुम पहन लो न।"

वैष्णवीने ब्रुचको घुमा-फिरा कर, उलट-पलट कर देखा; अनन्तर कहा—" यह क्या हम लोगोंको शोभा देगा मेम साहब? और पहनूँगी कहाँ? तुमने तो छातीसे खोल दिया, कपड़ेमें लगा था। हम सब तो ऐसे कपड़े पहनती नहीं मेम साहब।"

" तुम कुछ पैसा चाहती हो? अच्छा, ला देती हूँ। इसे भी जब तुमको दे दिया है, तब वापस न लूँगी; तुम्हारी जो खुशी आवे करना। चारो जूड़ेमें बाँधलो। और किसी को न दिखा सकना तो अपने वैष्णव को ही दिखाना।"

मेरे वैष्णव नहीं मेम साहब! मैं अकेली ही हूँ, भीख माँगती फिरती हूँ।"

वैष्णवीने निःश्वास छोड़कर फिर कहा—" क्या करूँ मेम साहब? जिसके कोई नहीं होता, उसे इसी तरह अकेले फिरना पड़ता है।"

" क्यों, तुम्हारा व्याह नहीं हुआ?"

" हाँ, कंठीबदल हुआ था।"

" कंठीबदल क्या?"

" तुम लोग जिसे व्याह कहती हो, वही हम लोगोंका कंठीबदल है।"

" फिर तुम्हारा वैष्णव कहाँ गया?"

" भाग गया।"

" भाग गया! ऐसी गानेवाली सुन्दर औरतको छोड़कर भाग गया? क्यों?"

" क्या बतलाऊँ मेम साहब, मुझसे तो कहा नहीं जाता।"

" तुम्हारे और कोई नहीं ? "

" नहीं मेम साहब, मेरे और कोई नहीं । "

" इस तरह रास्ते-रास्ते गाना गाकर भीख माँगने के सिवा तुम्हारे गुज़ारे का और कोई उपाय नहीं ? "

वैष्णवीने जवाब दिया—" नहीं मेमसाहब, किसी भले आदमीके घरमें नौकरी मिल जाती तो कर भी लेती । पर मैं वैष्णवी ठहरी, नौकर भी कौन रक्खे ? इस तरह रास्ते—रास्ते गाना गाकर भीख माँगनेमें बड़ा दुःख पहुँचता है मेम साहब । लोग मुझे सुन्दर और जवान समझते हैं, यही बडा झंझट है । संसार भला नहीं मेम साहब । जहाँ जाती हूँ वहीं लोग बहुत जलाते हैं । करूँ क्या मेम साहब, मेरा भाग्य ही खोटा है । "

एमा—" तुम्हें नौकरी मिले तो करोगी ? "

वैष्णवी—" नौकरी मिल जायगी तो क्यों न करूँगी मेम साहब ? पर रक्खेगा कौन ? मैं वैष्णवकी लड़की हूँ, इससे प्रायः मुझे कोई रखना ही नहीं चाहता । बाहरके काम-काजके लिए कोई रखना भी चाहे तो डर लगता है, कि कहीं उनके घरवालों की आँखोंमें न खटकूँ । फिरभी, अकेले रहनेवाले कोई- कोई बाबू आदि रखनाभी चाहते हैं, पर देखो मेम साहब, ऐसी जगह नौकरी करना ठीक नहीं जँचता । "

एमा—"तुम मेरे पास रहोगी ? मैं मेम होनेपर भी स्त्री हूं । मेरे पास रहनेमें तुम्हें कोई डर नहीं । तुम्हारी जवानी और रूप की मुझे ईर्ष्या नहीं हो सकती, लोभ भी नहीं हो सकता । "

वैष्णवी-" बाँदीकी जवानी और रूपकी रानीको ईर्ष्या होगी ! ऐसा हो सकता है ?"

एमा—" जवानी, रूप और प्राण ब्रह्माने बाँदी और रानीको छाप लगाकर नहीं दिया है । जाने दो इस पचडे को, तुम रहोगी ? "

वैष्णवी—" तुम क्या रक्खोगी मेम साहब ? सच ही मुझे तुम्हारे पास रहने में कोई डर नहीं है, पर तुम्हारे साहब तो हैं ? तुम डरती तो नहीं ? साहब और बाबू सबको ही एकसा लोभ होता है । "

एमा—" नहीं वैष्णवी, मुझे यह डर नहीं । मेरे साहब नहीं, तुम जैसी खाली वैष्णवी हो, वैसी ही मैं खाली मेम हूं । हम दोनोंका खूब बनेगा । "

वैष्णवीने एमाको एक बार सिरसे पैरतक देखकर कहा—" मेम साहब, शायद अब तक तुम कुमारी हो ?"

" कुमारी तो नहीं हूँ।"

वैष्णवीने आश्चर्यसे एमाके चेहरेकी ओर देखा। वह मुस्कुराती हुई बोली—" क्या साहब भी मेरे वैष्णव की तरह भाग गये ? साहब भी क्या ऐसी मेमको छोड़कर भाग जाते हैं ?"

एमाके सरल सस्नेह व्यवहारसे वैष्णवीका संकोच और सम्भ्रम दूर होता जा रहा था। अब वह एमाको बहुत आत्मीय सी समझ रही थी। इसी कारण उसने उससे इस प्रकारका व्यंग करनेमें भी सङ्कोच नहीं किया।

एमानेभी मुस्कुराकर उत्तर दिया—" नहीं, भगे तो नहीं है; पर क्या कहूँ, समझती नहीं। पास रहनेपर धीरे-धीरे सब जान जाओगी। तुम रहोगी तो ?"

वैष्णवीने कहा—" क्यों न रहूँगी मेम साहब ? आज सबेरे, नहीं मालूम, किसका शुभ दर्शन मिला था। मेरे दिन बड़े दुःखसे बीत रहे हैं। तुमने वैकुण्ठकी लक्ष्मी की तरह मुझे वैकुण्ठमें उठा लिया।"

एमाने मुस्कुराकर कहा—" यहाँ अकेली लक्ष्मी का खाली वैकुण्ठ है, नारायण नहीं।"

" नारायण कहीं गये होंगे, ऐसी लक्ष्मीको छोड़कर अधिक दिनोंतक कहीं रह न सकेंगे, वैकुण्ठको लौट आयेंगे ही।"

" वे आयें या न आयें, अकेली लक्ष्मी एक संगिनी भी पा जाती तो भी गनीमत था। तुम्हारा नाम क्या है वैष्णवी ?"

वैष्णवीने कहा—" रंगिणी। मेरा पूरा नाम रायरंगिणी है। पिता मुझे लाड़से केवल रंगिणी कहते थे।"

" तुम्हारे पिता भी थे ?"

रंगिणीने मुस्कुराते हुए कहा—" पिता क्यों नहीं थे, मेम साहब ? मैं अकेली रास्ते-रास्ते भीख माँगती फिरती हूँ सही, पर ज़मीन तोड़कर पैदा नहीं हुई हूँ।"

एमाने ज़रा शर्माकर कहा—" मेरा मतलब तुमने नहीं समझा। मेरा यह मतलब है कि बाप थे तो गये कहाँ ?"

रंगिणीने कहा—" मेरा कंठीबदल होनेके बादही बापकी मृत्यु हो गई। मेम-साहब, जब तुमने मुझपर इतनी दया की है, तब तुमसे सब बातें खोलकरही कहती हूँ। मेरे पिता निताईचाँद वैरागी वृन्दावनके एक बड़े बंगाली वैष्णव थे। उनक पास रुपया-पैसा भी खूब था। मेरे बापके अखाड़ेमें उनका एक प्रिय शिष्य था, जिसका घर इसी बंगालमें था। उसीके साथ बापने मेरा कंठीबदल किया था। मेरे बापके मरनेके बाद रुपया-पैसा सब उसीके हाथ लगा। वह भला न था। मेरी आँख बचाकर शराब पीता था और मुझे घरमें आकर मारता-पीटता था। कुछ दिनों के बाद उसने अखाड़ा बेंच डाला, औरं रुपया-पैसा सब ले भाड़ेके एक घरमें वह रहने लगा। इसके बाद वह मुझसे नवद्वीप जानेका बहानाकर मुझे साथ ल वृन्दावनसे रवाना हुआ। नवद्वीपमें कई दिन ठहरा। नवद्वीपसे श्रीक्षेत्रको चला। रास्तेपर मैंने एक दिन सबेरे सोकर उठनेपर उसे नहीं देखा। वह रुपया-पैसा और मेरे गहने ले कहीं भाग गया। तबसे, एक सालसे अधिक हुआ होगा, मैं इसी तरह गाना गाकर भीख माँगती फिरती हूँ। "

एमा ने कहा—" खैर, जो होना था, होगया; इसके लिए अब व्यर्थ दुखी न हो। नौकरी चाहती हो तो मेरे पास रहो। अधिक कुछ करना न होगा, मेरे-पास रहना होगा, मामूली काम-काज करना होगा, और कभी कभी गाना भी सुनाना होगा। "

रंगिणीने कहा—" सब काम करूँगी मेम साहब। अनाथिनीको आश्रय दे तुमने सदाके लिए खरीद लिया है। खरीदी हुई दासीकी तरह यह तुम्हारे सब काम करेगी। "

एमा रंगिणीको साथ ले उद्यानगृहको चली गई। वैष्णवीकी साज त्यागकर रंगिणीने एमाके अनुरूप वेश बनाया; केवल पावोंमें जूता न पहना।

स्नेहपरायण घनश्यामने रंगिणीको नोकर रखना मंजूर किया। थोड़े दिनोंमेंही, सेव्यसेविकाका भाव दूर हो दोनोंमें सखी-भाव पैदा हुआ। अब रंगिणीने इस सखीत्वकी योग्यता और सम्मान-रक्षाके लिए लिखना-पढना सीखना शुरू किया एमा स्वयं शिक्षयित्री बनी।

दूसरा परिच्छेद।

जनार्दनका वसीयतनामा।

जनार्दनकी मृत्यु हुए कोई नौ वर्ष बीत चुके हैं। मृत्युकालमें उन्होंने अपना वसीयतनामा बदल दिया था।

हरगोपालकी मृत्युके २।३ महीने बाद उनकी स्त्री अमला शिशु कन्याको ले ससुरालमें आश्रय पानेके लिए आई थी, किन्तु कुलटा होनेके सन्देहसे जनार्दननें उसे आश्रय नहीं दिया।

अमला कहाँ गई, किसीको कुछ मालूम न हुआ। पीछे जनार्दनके मनमें यह बात उठी कि यदि कन्याको छीनलेता और अकेली बहूको निकाल बाहर करता तो अच्छा होता। माताके कलंक, माताके पापने शिशुका स्पर्श नहीं किया है, किन्तु सयानी होनेपर तो करेगा ? जनार्दन बहुत पछताये। किन्तु अमलाका कहीं पता न लगा। जनार्दनको धीरे-धीरे पौत्रीकी याद भूल गई। मरनेके वक्त वह पुरानी स्मृति फिर जग उठी। अनुतापसे जनार्दनका अन्तःकरण जलने लगा। उन्होने एटर्नी रामसदय बाबूको बुलवाया। रामसदय बाबूके आनेपर उन्होंने अपने अन्तःकरणकी यातना उनसे प्रकटकर कहा—"रामसदय, ऐसी कोई व्यवस्था करो, जिससे मैं शान्तिपूर्वक मरूँ, परलोकमें देवताका आशीर्वाद पाऊँ!"

रामसदय बाबूने कहा—"अब क्या व्यवस्था करूँ ? ७।८ वर्ष हो चुके यदि वह लड़की जीतीभी होगी तो भी उसका क्या पता चलेगा ? कहाँ किस अवस्थामें है, इसका ठिकाना क्या ?"

जनार्दनने बहुत दुःखित स्वरसे कहा—यदि वह जीती हो, यदि कुलधर्मपूर्वक कभी लौटे तो वह अन्ततः अपनी न्याय्य सम्पत्तिसे वंचित न हो, ऐसी व्यवस्था कर सकनेपर भी परलोकमें देवताके निकट कुछ जवाब दे सकता हूँ।"

"तो क्या आप अपना वसीयतनामा बदलना चाहते हैं ?"

"हाँ।"

वसीयतनामा निकाला गया। रामसदय बाबूने मुमुर्षुके आदेशानुसार पुराने

वसीयतनामेको रदकर नया वसीयतनामा लिखा। नया वसीयतनामा इस प्रकार लिखा गया—

" मैंने अपने द्वितीय पुत्र हरगोपालको त्यागकर उसे अपनी धन–सम्पत्तिसे वंचित किया है। उसकी स्त्री उसकी मृत्युके बाद अपनी शिशु–कन्याको लिये लौट आईथी, पर कुलटा होनेके सन्देहसे मैंने उसे निकाल दिया। कन्याकी माता चाहे कैसी भी हो, पर कन्या बेकसूर है। अपनी उस पौत्रीके प्रति मैंने जैसी निष्ठुरता दिखाई है, उसके लिये अब पछताता हूँ। हरगोपालकी वारिस होनेसे वह मेरी आधी सम्पत्तिकी अधिकारी है। जो हो, यदि वह जीती हो और कुलधर्मपूर्वक हो, तो मैं उसे उसकी न्यायप्राप्य सम्पत्तिसे वंचित नहीं करना चाहता। इसलिए बहुत बिमार होनेपर भी अपने होश–हवाशमें मैं सब समझ बूझकर सन्......
......के...की...तारीखके अपने वसीयतनामेको रदकर इच्छापूर्वक यह लिखता हूं कि आजसे आठ वर्षके भीतर यदि मेरी वह पौत्री, हरगोपालकी कन्या, लौट आयेगी, अथवा उसका पता मिलेगा, और वह अपने कुलधर्मपूर्वक होगी तो वह मेरी सारी जायदादका आधा हिस्सा पायेगी। इन आठ वर्षोंके भीतर सरकारी पत्रोंमें विज्ञापन छपा उसका पता लगाया जाय। यदि इस अवधिके भीतर वह स्वयं, अथवा उसका स्वामी अथवा उसका कोई अभिभावक प्राप्य सम्पत्तिका दावा न करे तो यह समझ लिया जाय कि वह जीवित या कुलधर्मपूर्वक नहीं है और मेरी सारी सम्पत्ति घनश्याम मैत्रको दे दी जाय। इस अवधि तक सारी सम्पत्ति गवर्नमेण्टकी देखरेखमें रहे। गवर्नमेण्ट दयाकर मेरे एटर्नी रामसदय चट्टोपाध्याय की सलाहसे एक योग्य मैनेजर नियुक्तकर सम्पत्तिकी रक्षा करेगी। आमदनीका आधा हिस्सा घनश्याम मैत्र को मिलेगा, बाकी आधा हिस्सा हरगोपालकी कन्याके नाम सरकारी बैंकमें जमा होगा। यदि आठ वर्षों के भीतर वह लड़की न आये तो जमा हुआ रुपया उसकी यादगारमें सरकार बहादुरकी विवेचनाके अनुसार किसी लोक-हितकर काममें लगाया जाय।

जनार्दनने वसीयतनामा पर दस्तखत किया। रामसदय और अन्यान्य २।१ उपस्थित सज्जन साक्षी हुए।

रामसदय बाबूने कहा–" घनश्याम भी राजी हो जाते और दस्तखत कर देते तो अच्छा होता। "

जनार्दनने सिर हिलाकर सम्मति दी। घनश्याम आये। रामसदय बाबूने उनसे सब बातें समझाकर कहीं और वसीयतनामा उनके हाथपर रक्खा। जर्नादनने क्षीण-स्वरसे कहा—" घनश्याम अधर्मी न बनना। सही करो।"

घनश्याम एक मुहूर्त तक चुप रहे। जनार्दनने भौएँ टेढ़ीकर फिर कहा–" सही न करनेसे तुम इसमें बाधा न डाल सकोगे।"

घनश्याम अत्यन्त स्वार्थपर और अनुदार प्रकृतिके मनुष्य न थे। किन्तु इन आठ सालोंसे वे एकमात्र अपनेको ही सारी जायदादका उत्तराधिकारी समझते आ रहे हैं। हरगोपाल और उसकी कन्या इस घरकी कोई हैं, यह वे एक प्रकारसे भूल गये थे। सहसा इस प्रकार हरगोपालकी कन्याके कारण नया वसीयतनामा लिखा जानेसे उनके मनमें स्वभावतः यह बात उठी, कि मानों वे किसी अज्ञात अपरिचित व्यक्तिको अपनी प्राप्य व अधिकृत वस्तुका आधा हिस्सा देनेके लिए बाध्य हो रहे हैं। किन्तु, ' घनश्याम अधर्मी न होना ' पिताके इस कथनने उनके हृदय पर चोंट पहुंचाई। हरगोपाल, हरगोपालकी लड़की और स्त्री उनके घरके लोग हैं, हिस्सेदार हैं, ये सब बातें घनश्यामके मनमें जग उठीं। घनश्यामने सोचा–' छिः अधर्मी क्यों बनूँगा ? मैं और हरगोपाल दोनों भाई-भाई हैं। उसकी लड़की और मेरी लड़की दोनों समान हैं। घनश्याम कलम उठा सही करने जा रहे थे, इसी समय जनार्दनने फिर कहा–' सही न करनेसे तुम इसमें बाधा न डाल सकोगे।"

घनश्यामकी भौएं बल खा गईं। उनको पिता ऐसा हीन समझते हैं। सरल हृदयसे, अपनी इच्छासे वे जो काम करने के लिए तैयार हैं, उसीके सम्बन्धमें पिता ऐसी बातें कहते हैं। घनश्यामकी स्वाभाविक उदारताका उच्छ्वास सहसा सूख गया। अच्छा मजबूत होने पर ही वे ऐसा करेंगे। हरगोपालकी लड़कीके प्रति उनका कोई कर्तव्य नहीं। यदि वह आयेगी तो मजबूर होने पर ही उसे आधा हिस्सा दे देंगे, आत्मीय समझकर उसे ग्रहण क्यों करेंगे ?

रामसदय बाबूने पुकारा–" घनश्याम ! "

" जो आज्ञा, सही करना होगा ? किन्तु बाबा तो कहते है कि न करनेपर भी मैं बाधा न डाल सकूँगा। फिर सही करने की ज़रूरत क्या ? "

"फिरभी करो, करना चाहिए; नहीं तो लोग तुम्हारी निन्दा करेंगे।"

कर्तव्य नहीं, निन्दा का भय है? घनश्यामको और भी विरक्ति, और भी अनिच्छा हुई। जो हो, निन्दाके भयसे ही उन्होंने दस्तखत किये। दस्तखत करके वे उठ गये। उनको अब यह खयाल हुआ कि पिताने उनको आधी सम्पत्तिसे वञ्चितकर अत्यन्त अन्याय किया है। हाय, एक सामान्य बातसे ही, एक सामान्य घटनासे ही लोगोंका मन इसी तरह विपरीत दिशाकी ओर दौड़ जाता है। जनार्दन अपनी अन्तिम बात करनेके पहले ज़रा और भी अपेक्षा करते तो घनश्याम उदार हृदयसे, सन्तुष्ट चित्तसे, वसीयतनामापर दस्तख़त कर देते, हरगोपालकी लड़कीका पता लगाना वे अपना परम कर्तव्य समझते, प्राणपणसे उसका पता लगाते। शूलपाणिके हजारों कौशल और चेष्टाएँ भी उनको निवृत्त न कर सकतीं। वे यद्यपि साधारणतः शूलपाणिके मतानुसार काम करते थे, तथापि यदि उनके मनमें कभी इस प्रकारका विचार पैदा हो जाता था, कि ऐसी दशामें ऐसा करना कर्तव्य है, तो फिर उनका विचार किसी तरह बदला न जा सकता था। शूलपाणि भी साधारणतः ऐसी अवस्थामें वाधा दे उनके विरागभाजन न बनते थे।

किन्तु इस विषयमें शूलपाणि वाधा देना चाहेंगे क्यों? इसमें उनका क्या स्वार्थ है?

कलकत्तेमें घनश्याम और हरगोपाल दोनोंही शूलपाणिकी शिक्षकता और देखरेखमें रहते थे। शूलपाणिके द्वारा ही रामतारणके साथ दोनों भाइयोंका परिचय हुआ। हरगोपाल रामतारणके संसर्गमें जा पड़ा, घनश्याम बचगये। शूलपाणि जानते थे कि रामतारणका संसर्गकर हरगोपाल नष्ट हो रहा है, पर उन्होंने इसके प्रतिकारकी कोई चेष्टा न की। जब हरगोपालको सन्मार्गमें लाना कठिन हो गया, तब शूलपाणिने रामसदय बाबूको खबर दी। पाठकों को ये बातें पहलेसे ही विदित हैं। जब पिताने हरगोपालका परित्याग कर दिया, जब पिताकी सम्पत्तिके एकमात्र अधिकारी घनश्याम हुए, तब शूलपाणि मन ही मन बहुत आनन्दित हुए। घनश्यामके एक शिशु-कन्या है। शूलपाणिके भी ८।९ वर्षका पुत्र है। कन्या बड़ी होने लगी, किन्तु घनश्यामके और सन्तान न हुई। घनश्यामका मत साहबी है, वे गोद कभी न लेंगे। इधर हिरणकाभी लिखना-पढ़ना ठीक चलरहा है, देखनेमें भी बुरा नहीं है। व्यवहार और वार्तालापमें भी चतुर और सप्रतिम है। शूलपाणि पुत्रको घनश्यामके पास

सदा साहबी पोशाकमें ले जाया करते हैं। घनश्याम भी हिरण को साथले खाना खाते हैं, गाड़ी पर चढ़ा घूमने जाते हैं, टेनिस खेलाते हैं । शूलपाणिने सरल-चित्तसे पुत्रको घनश्यामको सौंप दिया है, जिससे घनश्याम उसे इच्छानुसार अपने साँचेमें ढालसकें। पुत्रहीन, कन्याविरहित घनश्याम हिरणको पुत्रवत् चाहते हैं। एमा घनश्यामकी एकमात्र सन्तान है, हिरण उनका अति प्रिय पुत्रवत् स्नेहपात्र है, उनके द्वारा ही वह शिक्षित और गठित हो रहा है । वृद्ध जनार्दनने एमाका ब्याहकर एक खेल किया है सही, किन्तु घनश्याम इस विवाहको स्वीकार नहीं करना चाहते। भविष्यकी बात कौन कह सकता है? ईश्वरेच्छासे एमा विधवा भी हो सकती है।

जनार्दनकी मृत्युके बाद घनश्याम कलकत्ते आये । इस नये वसीयतनामाकी चर्चा सुन शूलपाणि कुछ चिन्तित हुए । उन्होंने घनश्यामको भी इससे विरक्त देखा। वसीयतनामाके सम्बन्धकी सब घटना शूलपाणिने सुनी; वे घनश्यामकी विरक्तिका कारण समझ गये।

शूलपाणिने सोचकर देखा कि घनश्यामको समग्र सम्पत्तिका अधिकारी बनानेके लिए इस बातकी ज़रूरत है कि इस वसीयतनामाकी सारी बातें गुप्त रक्खी जाँय और हरगोपालकी कन्याका, जो शायद जीतीही हो, वैसा अनुसन्धान न किया जाय। सरकारी गजटमें बीच-बीचमें अवश्य ही विज्ञापन देना होगा। किन्तु सरकारी गजटको कितने आदमी पढ़ते हैं ? (हाय! वृद्ध जनार्दन पुराने जमानेके मनुष्य थे; उन्होंने सोचा था कि सरकारी गजटसे अधिक और किसी गजटका प्रचार नहीं हो सकता; उस गजटका विज्ञापन सर्वत्र पहले फैल जायगा। रामसदय बाबूनेभी अनवधानता या सामयिक अस्थिरतावश इस ओर वैसा ध्यान न दिया था) फिर विज्ञापन भी इसतरह दिया जा सकता है, कि जिससे गजट पढनेवालोंकी दृष्टि उस ओर आकर्षित न हो। २।३—सालका अन्तर होनेपरभी 'बीच-बीचमें' हो सकता है। इसके लिए चिन्ता क्या ? किन्तु ये सब बातें उसपर निर्भर होंगी जो मैनेजर नियुक्त होगा। मैनेजरके पसन्द करनेका भार रामसदय बाबू पर है। इसलिए भविष्यमें चिन्ताका कोई कारण नहीं। और कुछ साक्षी हैं । फिरभी, प्रधान साक्षी रामसदय बाबू ही हैं। यदि वे शूलपाणिको मैनेजर नियुक्त करदें और वसीयतनामाके अनुसार उनको काम करनेका भार दे दें तो इस सम्बन्धकी अपनी

सब जिम्मेदारियोंसे अपनेको बरी समझेंगे । फिरभी, बुढ़ापेके कारण काम—काजकी ओर उनकी शिथिलता और उदासीनता भी देखी जाती है, अधिक खोज-खबरभी न लेंगे । बहुत दिनोंतक जिन्दा भी नहीं रह सकते । अन्य साक्षी भी वृद्ध हैं । वृद्ध और धर्मभीरु जानकर जनार्दनने उन लोगोंको साक्षी बनाया है । ईश्वरकी इच्छा होनेपर वे लोग भी कितने दिन जीते रहेंगे ? और उन लोगोंको ऐसी गरज भी क्या है, कि मैनेजर आदिके नियुक्त हो जाने परभी, अपने वृद्ध शरीरको तकलीफ दे हरगोपालकी लडकीको ढूँढ़ते फिरेंगे ? फिरभी, दूसरोंसे चर्चा कर सकते हैं । किन्तु उनकी चर्चा कितनी दूर फैलेगी ?

उस समय घनश्यामकी जैसी अवस्था हो रही थी, उस अवस्थामें उनमें इस प्रकारके खयाल उठानेसे, नहीं मालूम, उनके मनमें क्या खयाल पैदा हो सकता है। किन्तु सब ठीक कर लेनेपर वे अपने परम हितैषी बन्धु शूलपाणिके इच्छानुसार काम करेंगेही । इसलिए शूलपाणिने घनश्यामसे कुछ न कह जल्दीही रामसदय बाबूसे भेंट की । जनार्दनकी मृत्यु और घनश्यामके व्यवहारके सम्बन्धमें चर्चा उठी । शूलपाणिने घनश्यामके निन्दनीय व्यवहारके लिए दुःख प्रकट किया । कहा— " घनश्याम ऐसा नीच और स्वार्थी है ! उसे तो मैं अबतक उदार और न्यायपरायण समझता था । सच्ची परीक्षाका अवसर पड़े बिना मनुष्यका प्रकृत चरित्र समझना कठिन है ।

हरगोपालकी कन्याके सम्बन्धकी चर्चा छिड़नेपर शूलपाणिका हृदय सहानुभूतिसे भर गया । हाय ! हतभाग्य हरगोपालकी कन्या अब, मालूम नहीं, कहाँ है ? ईश्वर करें, वह जीती हो, और लौट आकर अपना हक पाये । इससे परलोकमें हरगोपालकी आत्मा बहुत कुछ शान्ति पायेगी । रामसदय बाबू अति सुदक्ष सहृदय व्यक्तिको मैनेजर बनायें, जो हरगोपालकी लड़कीके प्रति हृदयमें गहरी सहानुभूति रख उसका अनुसन्धान करे । वे भी उस मैनेजर को इस विषयमें सहायता पहुँचायें । इधर उनके बन्धु घनश्यामभी, जिससे बुद्धिमानकी तरह यह असन्तोष भूलकर हरगोपालकी लड़कीको उसका हक देनेको तैयार रहे, इस विषयमें भी वे प्राणपणसे चेष्टा करेंगे । उनके जी में यह लहर लहराती है कि वे समग्र पृथिवीको छानकर उस लड़कीको ढूँढ़ निकालें ।

शूलपाणिकी बातोंसे रामसदय बाबू अत्यन्त सन्तुष्ट हुए । २।३ दिनोंके बाद

रामसदय बाबूने शूलपाणिको बुलवाकर कहा कि उन्होंने उनको ही मैनेजर चुनकर गवर्नमेण्टको लिखा था। गवर्नमेण्टने उनकी राय मंजूर कर उनकोही मैनेजर नियुक्त किया है।

इस अप्रत्याशित सम्मानसे शूलपाणि अत्यंत विस्मित हुए और चकराये। शूलपाणिने कहा–" मुझे! क्या गज़ब किया! ऐसी बड़ी ज़िम्मेदारीका भार मेरे निर्बल कन्धोंपर! मैं यह काम कर सकूँगा, क्या आप यह सोचते हैं?"

" तुम कर सकोगे ही शूलपाणि। इसीसे तुमकोही चुना है।"

" किन्तु घनश्याम मेरा बन्धु है। फिर मैं उसके स्वार्थके विरुद्ध धर्मकी ओर नज़र रखकर काम करूँगा, लोग इस बात का क्या विश्वास करेंगे? अन्तमें कहीं बदनामी न हो।"

रामसदय बाबू बोले—" इस बातका विचार तो लोग तुह्मारे काम देखकर ही करेंगे। मैं जानता हूँ, तुह्में बदनाम न होना पड़ेगा, तुम न्याय और धर्म का ख़यालकर काम करोगे, इस बातका मुझे दृढ़ विश्वास है।"

" ऐसा तो मैं अवश्य ही करनेकी चेष्टा करूँगा। भगवान मुझे सुमति दें।"

शूलपाणि कुछ देर तक आँखें बन्दकर और चेहरे को दोनों हथेलियों से ढककर बैठे रहे; बन्धुत्वका मोह न भूलकर, धर्म और न्यायके साथ ऐसे गुरुतर कर्तव्यका पालन करें, मानों इसके लिए वे भगवान्से शक्ति माँग रहे हैं।

रामसदय बाबूने सोचा, वे शूलपाणिसे अधिक योग्य व्यक्ति न चुन सकते थे। मुमुर्षु जनार्दनकी पार्थिव-शेष इच्छाकी पूर्त्तिके लिए, उनकी परलोकगत आत्मा की शान्तिके लिए जो कुछ उनका कर्तव्य हो सकता है वह सब वे कर चुके हैं। शूलपाणिको आशीर्वाद दे उन्होंने धन-सम्पत्तिके कागज़ समझानेके लिए समय निर्दिष्ट कर दिया।

यहाँ तक पक्का बन्दोबस्तकर शूलपाणिने इस आनन्दकी खबर अपने बन्धुको सुनाई।

विस्मयचकित घनश्याम कुछ देरतक शूलपाणिकी ओर ताकते रहे, अनन्तर बोले—" शूलपाणि! तुमने यहां तक सब ठीक कर डाला, मुझे बिलकुलही नहीं बतलाया!"

शूलपाणिने कहा—" यदि कृतकार्य न हो सकता, तो तुम कष्टके ऊपर इस निराशाका और एक कष्ट पाते, इस खयालसे पहले तुमसे नहीं कहा । मैं ने क्या अनुचित किया है ? "

" अनुचित ! तुमको किन शब्दोंमें मैं धन्यवाद दूँ, शूलपाणि, तुम्हारे जैसा बन्धु मिलना संसारमें दुर्लभ है । "

शूलपाणिने कहा—" अधिक किया क्या घनश्याम ? बन्धुके लिए बन्धु इतना भी नहीं करता ? "

" करता नहीं, ऐसा नहीं कह सकता । पर ऐसा बन्धु कितने आदमियोंको प्राप्त होता है, शूलपाणि ? "

घनश्यामने ज़रा चिन्ता की; अनन्तर कहा—" फिर हरगोपालकी लड़कीके आने की सम्भावना अधिक नहीं ? "

" कुछभी नहीं । तुम निश्चित रहो ? "

घनश्यामने फिर ज़रा सोचा । अन्तमें धीरे-धीरे कहा—" किन्तु ऐसी इच्छा करनाभी क्या अत्यन्त अन्याय नहीं है ? "

" फिर यदि ऐसा तुम्हारा खयाल हो तो हरगोपालकी लड़कीकी खोज-ढूँढ़ कराने लगूँ । इस वक्त तो सब मेरेही हाथमें है । तुम जिस कामसे खुश होगे, वही मैं करूँगा । "

शूलपाणि जानते थे कि ऐसी अवस्थामें वाधा या आपत्तिके बदले साग्रह अनुमोदन ही घनश्यामके मनको फिरानेका प्रधान उपाय है ।

घनश्यामने कहा—" नहीं नहीं, यह नहीं कहता । अच्छा, कुछ दिन बीतने दो, सोच देखूँगा । "

शूलपाणि समझ गये, अब चिन्ता नहीं । विचार करनेके लिए घनश्यामने समय लिया है, इससे सिद्ध होता है कि वे उनके अनुसार ही चलेंगे; विरुद्ध विचार न करेंगे ।

घनश्यामने फिर कहा—" शूलपाणि, तुम मुझे बहुत चाहते हो, तुम मेरे बड़े हितैषी बन्धु हो । तुम्हारे इस बन्धुत्वका बदला कैसे चुकाया जाय, सोच नहीं पाता । मैं क्या सोचता हूं, जानते हो ? "

शूलपाणिने मुस्कुराते हुए कहा—" क्या ? हिरणको खर्च देकर विलायत

भेजोगे ? पर यह भार मैं तुमपर रखना नहीं चाहता । इसके लिए मैंने स्वयं बहुत कुछ रुपया बचाया है । ”

“ यह नहीं, यह नहीं । यह तो कोई बात ही नहीं । इससे अधिक क्या होगा ? मैं जो कहता हूँ, वह—”

“ क्या ? ”

यही कहता हूँ कि एमा मेरी एकमात्र उत्तराधिकारिणी है । यदि उसका फिर से विवाह कर देनेकी सम्भावना होती, तो हिरणसे ही उसका व्याह करता । हिरणको मैं बहुत चाहता हूँ । इससे तुम्हारे योग्य बन्धुत्वका बदला भी चुकता । शूलपाणि, क्या ऐसा किसी तरहसे भी नहीं हो सकता ? कानूनसे क्या कोई उपाय निकाल नहीं सकते ? ”

“ नहीं । बहुत कुछ सोच देखा है । विवाहिता हिन्दू-कन्या पतिके जीते-जी दूसरा व्याह नहीं कर सकती । ”

“ यदि हम लोग ब्राह्म या ईसाई हो जायँ ? ”

“ तब भी न हो सकेगा । हिन्दू-कन्याके रूपसें एमाका व्याह हुआ था । दूसरा धर्म-ग्रहण करनेसे वह विवाह-बन्धन विच्छिन्न नहीं हो सकता । हां, यदि वह विधवा हो जाय, तो हो सकता है । ”

“ विधवा होनेपर हो सकता है, पर जबतक वह अभागा मदन जीता है, तब तक तो वह विधवा नहीं हो सकती ? ”

“ नहीं; और वह अपने आप जल्दी ही मर जायगा, ऐसा लक्षण भी कुछ दिखाई नहीं देता, फिर—”

“ फिर—”

“ यदि उपायसे वह काँटा रास्तेसे अलगकर दिया जाय ? ”

घनस्याम काँप उठे । भय और विस्मयसे उनका चेहरा विवर्ण हो गया । उन्होंने आंखें फाडकर शूलपाणिकी ओर देखा, अनन्तर कहा—यह क्या कहते हो शूलपाणि ! सर्वनाश ! खून ! कन्याके सुखके लिए खून करूं ? ऐसी बात तुम्हें कैसे सूझी शूलपाणि ? ”

शूलपाणि हँस पडे, बोले—“ तुम पागल हुए हो क्या ? मैंने तो दिल्लगी की थी

मैं तुमको मदन का खून करने कहूँगा ? तुमने यह कैसे सोच लिया कि मेरी यह भीतरी मंशा है ? खून ! कैसा सर्वनाश ! ”

घनश्याम स्वस्थ हुए; बोले—“यही तो ! ऐसा हो सकता है ? जाने दो, मजाकमें भी ऐसी बात कभी मुँह पर न लाना । मजाकमें भी ऐसी बातें करना या सुनना पाप है । ”

शूलपाणिके मनमें इस समय कोई पाप—अभिसन्धि थी या नहीं, इसे वे तथा उनके पाप या पापविचारके दण्डदाता सर्वदर्शी अन्तर्यामी जानें । फिरभी, उन्होंने घनश्याम का दिल टटोल लिया । यह वे समझ गये कि यदि वे कभी ऐसी चेष्टा करेंगे और सफल होंगे तो घनश्याम इस जिन्दगीमें उनका और हिरणका मुँह न देखेंगे । किन्तु एमा अभी बालिका है । वक्त काफी है । यत्नेन किं न सिद्ध्यति ।”

इसके बार ७-८ वर्ष तक कोई उल्लेखयोग्य घटना नहीं हुई । कई महीनोंके बाद ही रामसदय बाबू इस संसारसे बिदा हो गये । हरगोपालकी लडकीका पता लगानेके विषयमें शूलपाणि निश्चिन्त होगये । वे दो-तीन सालके अन्दरसे, बहुत संक्षेपमें, सरकारी गजटमें विज्ञापन देते थे । उस विज्ञापनको कोई पढ़ता था या नहीं, विधाता ही जानें । हरगोपालकी लड़की या उसके पक्षका कोई आदमी अबतक न आया ।

दोनों बन्धुओंमें एमाके विवाहके सम्बन्धमें कभी-कभी आलोचना होती थी, किन्तु निर्णय कुछ न होता था । यथासमय हिरण विलायत गया । यद्यपि शूलपाणिने आपत्ति अवश्य की, तथापि घनश्यामने उसे अपने खर्चसे भी विलायत भेजा । कही महीने हुए, हिरण लौट आया है, और बहुत कुछ खर्च कर शूलपाणि उसका समन्वय—अनुष्ठान कर आये हैं । पाठकोंको यह पहलेही विदित हो चुका है ।

तीसरा परिच्छेद ।

चिंता ।

दुर्गा-पूजाका समय आ पहुचा है । अन्यान्य धनी और विलासी बंगालियोंकी तरह घनश्यामभी पूजाके दिनोंमें घूमने जाते हैं । ५।६ महीने हुए, हिरण बिलायतसे लौट आया है । इस बार हिरण और प्रभाको साथ लेकर घनश्याम घूमने

जायँगे। जरूरी खर्चपात और अन्यान्य विश्रयोंका बन्दोबस्त करनेके लिए शामके बाद घनश्याम शूलपाणिके घर आये हैं।

एक सुन्दर सजे कमरेमें सुन्दर कुरसियोंपर दोनों बन्धु बैठे हैं। कुरासियोंके आगे एक खूबसूरत टेबल है, जिसपर मखमली कपडा पड़ा है। कमरेमें बिजलीकी रोशनी हो रही है और बिजलीका पंखा चलरहा है। घनश्याम साहब हैं, उनके मुँहमें चुरुट है, आगे चुरुट रक्खा है। बंगाली विलासी शूलपाणिके बगलमें गडगडा है, मुँहमें गडगडेकी नल है। कुछ दूर पर, एक दीन आसनपर, दीनमूर्ति चुपचाप मुखोपाध्याय बैठे हैं। नौकर टेबलपर चायके दो प्याले रख गया है। दोनों बन्धु धीरे धीरे कभी चायका एक घूंट उष्ण मधुर रस, कभी तमाखूका कुछ गरम सुरभित धूम पीते हुए बातें कर रहे हैं।

बातोंही बातोंमें एमाके विवाहके सम्बन्धमें चर्चा छिडी। हिरण जबसे विलायत से लौट आया है, तबसे अब तक शूलपाणिने इस सम्बन्धमें कोई बात न उठाई थी। घनश्यामभी न मालूम क्या सोचकर खामोश ही थे। आज बहुत दिनोंके बाद प्रसंगवश चर्चा छिड़ी। घनश्यामके चेहरेपर अधीर उत्तेजना और शूलपाणिके चेहरेपर शान्त मुस्कुराहट दिखाई पड़ी।

घनश्यामने कहा—" अब न छेंड़ो शूलपाणि! उस बातका खयाल आते ही मेरे शरीरमें आग जल उठती है। इस एक लड़कीके सिवा मेरे और कोई नहीं। अभागा बुड्ढा मुझे एक बारगी मार गया है। तुम यदि जानते शूलपाणि, कि एमा मेरी क्या चीज है, तो समझते कि मैं कैसा दुःखी हूँ।"

शूलपाणिने मुस्कुराते हुए कहा—" वह तो व्याह था ही नहीं। तुम उसे विवाह माननेके लिए अवश्यही बाध्य नहीं हो।"

" विवाह तो नहीं ही था, वह तो लड़कों का खेल था। खेलमें भी तो ऐसे बहुतसे व्याह होते हैं।"

शूलपाणिने कहा—" फिर भी, जानतेहो, धर्मका एक अनुष्ठान तो हुआ था।"

" चलो, होने दो धर्मका अनुष्ठान; मैं इसकी जरा भी परवाह नहीं करता।"

" तुम परवाह नहीं कर सकते। किन्तु तुम्हारे परवाह न करनेसे तो प्रभाको कुमारी-जैसी स्वाधीनता प्राप्त नहीं हो सकती। कानूनके लिहाज़से वह विवाह ही माना जायगा।"

"यह तो कानून में बड़ा अन्याय है। बचपनमें लड़की का व्याह चाहे कैसे ही अपदार्थ पुरुषसे कर दिया जाय और हिंदू-लड़कीको डाइवोर्सका अधिकार न दिया जाय, यह अन्याय नहीं तो क्या!"

"शूल—" तुम चाहे इसे न्याय कहो या अन्याय, पर जो कानून में वह है ही।

घनश्याम—" एमाका दूसरा व्याह करनेमें मुझे दुविधा नहीं है। हाँ, यदि कानून वाधा डाले तो अलहदा बात है।"

शूल—" कानून बड़ी आफ़त है। प्रचलित किसी धर्म या कानूनके अनुसार नहीं हो सकता।"

घनश्याम—" फिर क्या उस अभागे बुड्ढके एक खेल खेलानसे एमाको सारी ज़िन्दगी दुःखसे बितानी पड़ेगी?"

शूल—" क्यों उसे सारी जिन्दगी दुःखसे बितानी पड़ेगी। मदन तो है ही। उसको ही सौंप दो।"

घनश्याम—" क्या! उसे सौंप दूँ! कभी नहीं! इसकी अपेक्षा यों ही जिन्दगी-बिताना अच्छा। कोई शिक्षिता महिला क्या किसी हलवाहेके साथ सहवास कर सकती है?"

शूल—" फिरतो और कोई उपाय मुझे सूझता नहीं।"

घनश्याम—" उपाय ढूँढना ही पड़ेगा। मैं एमाको इस अवस्थामें देख नहीं सकता। पहले छोटी थी, इससे वैसा ख़याल न था। पतिके बिना वह कभी अपनेको सुखी नहीं समझ सकती। उसको इस तरह दुखी देखकर मैं भी सुखी नहीं हो सकता।"

शूलपाणिने तमाखू पीतेहुए चुपचाप चिन्ताकी; अनन्तर कहा-" अपने मतलबके मुवाफ़िक़ कोई स्वामी मिलजाता तो शायद हिन्दू-मतके अनुसार कोई व्यवस्था की जा सकती।"

"स्वामी! 'स्वामी मिल जाता' क्या?"

शूलपाणिने समझाकर कहा-" स्वामी अर्थात् संन्यासी। संन्यासी ही तो आज-कल स्वामी कहे जाते हैं। क्यों, अगमानन्द, निगमानन्द, चिदानन्द, सुधानन्द, आदिनामके न मालूम कितने स्वामी हैं, तुमको खबर नहीं। स्वामियों की आजकल तो भरमार है। दो-चार श्लोक याद कर, अंगरेजी झाड़कर, दो एक वक्तृतायें

देकर आजकल चालाक छोकरे संन्यासी बन जाते हैं और चार पैसा पैदा करते हैं। क्लार्कों, वकीलों और माष्टरों के व्यवसायकी अपेक्षा यह व्यवसाय बहुत अच्छा है।"

घन-"ओहो। Your Husbandism! यह तो बुरा ढोंग है। ऐसे ढोंगियों से क्या काम होगा?"

शूल-" ढोंगी ही तो चाहिए! नहीं तो इच्छानुसार कार्य कैसे सिद्ध हो सकता है?"

घन-" ढोंगी मिल जानेसे क्या काम बन जायगा? अंगरेजी कानूनमें जिसके लिए कोई उपाय नहीं, हिन्दूसंन्यासी के ढोंगसे उसकी क्या व्यवस्था होगी?"

शूल-" ओह, तुमतो मानोगे नहीं। हमारा हिन्दूधर्म एक विशेष कल्पतरु है। खोजनेवालों को उसमें सब प्रकारकी व्यवस्था मिल जाती है। रुपया चाहिए, रुपया बाँटो, जो चाहोगे कर सकोगे।"

घन-" अच्छा!"

शूल-" हिन्दू-शास्त्रमें एक व्यवस्था है—

नष्टे मृते प्रव्रजिते, क्लीबे च पतिते पतौ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां, पतिरन्यो विधीयते॥

अर्थात्, यदि पतिका पता न हो, यदि पति मर गया हो, संन्यासी हो निकल गया हो, क्लीब हो गया हो, या धर्मसे पतित हो गया हो, तो इन पाँच आपत्तियोंमें स्त्रियाँ दूसरा व्याह कर सकती हैं।"

घन-" अच्छा! तुम्हारा हिन्दूशास्त्र ऐसा उदार है! फिरलोग क्यों इस बढ़िया नियमके अनुसार नहीं चलते?"

शूल-"यह नियम अप्रचलित है, इससे कोई इसके अनुसार नहीं चलता। फिरभी, किसी स्वामीको फुसला लेने पर शायद काम हो सकता है।"

घन-" अच्छा! कैसे? बतलाओ न?"

शूल-" ऐसे अनेक स्वामी हैं, जो अपना-अपना धर्म और समाज संगठित कर चलाते हैं। अपार समुद्र-जैसे हिन्दू-शास्त्रमें अपने मतका समर्थन करनेके लिए वे कोई व्यवस्था भी पा जाते हैं, उनके शिष्य भी बहुत जुट जाते हैं।"

घन-" अच्छा!"

"कौन है? दो प्याला चाय और एक चिलम तमाखू दे जा।"

"चाय नहीं, पेग मँगाओ।"

शूलपाणिने कहा-"ठहर ठहर, व्हिस्की और सोडा ले आ"

नौकर दो गिलास ह्विस्की दे गया। दोनों ने पीया। घनश्यामने दूसरा चुरुट लिया। शूलपाणिने नई तमाखू पी।

"फिर बतलाओ?"

शूलपाणिने फिर आरम्भ किया—"मान लो, हम लोगोंको यदि एक ऐसा स्वामी मिल जाय, जो 'नष्टे मृते' की व्यवस्थाको अपने धर्म और समाजका विधान मानले, तो हम लोग उसके शिष्य हो सकते हैं। फिर उसके समाजकी इस व्यवस्थाके अनुसार एमाके उस विवाहको रदकर उसका दूसरा व्याह किया जा सकता है।"

घन—"हुं! किन्तु एमाके पक्षमें इन पाँचमेंसे कौन सा काम आ सकता है।"

शूल—"मदनने अपना पैतृक गुरुपुरोहितका व्यवसाय छोड़ दिया है। वह अब हल जोत कर खेतीसे गुजर-वसर करता है। गाँव के ब्राह्मण पण्डित सब मेरी मुट्ठीमें हैं। मैं अनायास ही उसे पतित ठहरा समाजसे बाहर कर सकता हूं।"

घन—"यह ठीक है? किन्तु—"

शूल—"किन्तु फिर क्या?"

घन—"मन आगेको नहीं बढेता। न मालूम कैसा मालूम होता है, बुरा काम सा जँचता है।"

शूल—"मन तो आगेको नहीं ही बढेगा। फिरभी यदि उपाय पूछते हो, तो एक यही उपाय है। और किसी तरह नहीं हो सकता।"

घन—"यह विवाह कानून-सम्मत होगा?"

शूल—"मुकदमा लड़कर देखा जा सकता है। यदि होगा तो समाजका एक बड़ा संस्कार हो जायगा।"

घन—"यदि न हुआ?"

शूल—"नहीं भी हो सकता। निश्चित रूपसे कुछभी नहीं कहा जा सकता। एक विधवा-विवाहको ही कानून-सङ्गत करनेमें विद्यासागरको बहुत कठिनता

पड़ी थी। फिरभी, यूरोपमें विधवा-विवाह प्रचलित है, उससे सरकार उसका समर्थन करती है।"

घन—"फिर ?"

शूल-"फिर जैसी तुम्हारी मर्जी हो।"

घन-"मान लो, यदि कानूनी लड़ाईमें अपनी हार हुई तो बड़ी बदनामी होगी। एमा कानूनन पत्नीका सम्मान न पा सकेगी। एमाके बाल-बच्चे अवैध कहे जायँगे। वे क्या मेरी सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हो सकते हैं?"

शूल-"इसकी फ़िक्र नहीं। वसीयतनामा लिखदेनेसे ही काम चल जायगा।"

घन-"किन्तु बदनामी जो होगी? वह कैसी दूर होगी?"

शूल-"हाँ, बदनामी तो होगी। फिर कानूनमें न उलझना ही अच्छा है।" चुपचाप व्याह करके चुपचाप बैठे रहना अच्छा होगा। और जायदादका वसीयत-नामा लिख देना होगा।"

घन-"किन्तु समाज? समाज क्या इस विवाहको मंजूर करेगा?"

शूल—"समाजकी फिक्र न करो। यदि कोई ऐसा स्वामी मिल जायगा तो उसके शिष्यों-द्वारा एक समाजभी बन जायगा। बाहरके समाजसे सम्बन्ध नहीं रक्खा तो क्या हुआ?"

घन—"सबलोग धिक्कारेंगे। एमाको बाहरके लोग विवाहिता स्त्रीका सम्मान न देंगे।"

शूल—"ऐसा खयाल नहीं भी कर सकते। हिन्दू-समाजमें विधवा-विवाह प्रचलित नहीं है, पर ईसाई और मुसल्मान-समाजमें तो है। कोई ईसाई मुसल्मान विधवा स्त्री दूसरा व्याहकर ले तो क्या हिंदू-समाजके लोग उससे घृणा करेंगे?"

घन-"ईसाई और मुसल्मानोंका समाज बड़ा है। और यह प्रथाभी बहुत दिनोंसे चली आती है। इसीसे लोग ध्यान नहीं देते।"

शूल-"जो बुरा है, वह सदा ही बुरा है; जो अच्छा है, वह सदा ही अच्छा है। समाज छोटा हो या बड़ा, प्रथा पुरानी हो या नई, इससे किसी कामसे भले बुरेका विचार हो सकता है?" फिर यह कहो न कि, एमाका दूसरा व्याह करना ही अन्याय है!"

"कभी नहीं!"

" फिर ? "

" काम तो अच्छा ही है। पर इसके लिए एक बुरे ढोंग की सहायता लेनेमें घृणा होती है। "

शूलपाणिने कहा—" चाहे ढोंग कहो, या जो कहो, काम अच्छा समझ कर यदि करना चाहो तो इस कौशलके सिवा और उपाय नहीं। ढोंग कह कर यदि इस कौशलको छोड़ोगे तो एमा के दूसरे व्याहका इरादा भी छोड़ना पड़ेगा। "

" यह तो ठीक है। "

शूलपाणिने फिर कहा—" ज़रा धैर्य भावसे सोच देखो। इस उपायको ढोंग कह कर छोड़ना ठीक नहीं। फिर भी, यदि तुम्हारे मनमें कुसंस्कार बद्धमूल हो तो और बात है। "

कुसंस्कारका नाम लेते ही घनश्यामने उत्तेजित होकर कहा—" कुसंस्कार ! मैं कुसंस्कारके वशीभूत हूं ? क्या कहते हो शूलपाणि ? "

ज़रा देरतक खामोश रहकर घनश्यामने फिर कहा—" सच ही तुह्मारा कहना युक्तियुक्त है, इस संम्बंधमें मुझे और कुछ करना नहीं है। यदि दूसरा रास्ता न निकला तो यही सही ?"

शूलपाणि ने नौकरको फिर सोडा, ह्विस्की लानेका हुक्म दिया? सोडा-ह्विस्कीके आजानेपर शूलपाणिने एक गिलास घनश्यामके हाथमें दिया; दूसरा गिलास स्वयं पीया।

घनश्याम आरामकुरसीपर पाँव फैलाये हुए चुरुट पी रहेथे; सहसा उठ बैठे। टेबलपर हाथ रख और आगे की ओर ज़रा झुककर घनश्यामने कहा—" किन्तु एक बात सोचता हूं। एमा राजी होगी ? अब वह सयानी है। उसके मतामतकाभी हम लोगोंको विचार करना चाहिए। "

शूलपाणिने उत्तर दिया—" तुम्हारी लड़की तुह्मारे हाथकी गढ़ी हुई है। वह क्या कुसंस्कारका पक्ष लेगी ? वह अपने सुखकी ओर भी ध्यान न देगी ? समझाने परभी न समझेगी ? "

घनश्यामने कहा—" स्त्रीकी जाति ही कुछ अबूझ होती है। वह युक्तिकी अपेक्षा भावकी ही पक्षपातिनी अधिक होती है। "

" तो भाव-द्वारा ही काम करना होगा। "

" कैसे ? "

शूलपाणिने मुस्कुराते हुए कहा-" तुम कुछ समझते नहीं। स्त्रियोंके भावके आवेशोंमेंसे प्रेम ही सबसे बढ़कर है। प्रेमका फन्दा पड़नेपर वे सब कुछ कर सका हैं। एमा के योग्य किसी अच्छे युवकको पसन्द करो, उसके साथ एमा को रक्खो, और ऐसा करो जिससे वह उसके प्रति प्रेमासक्त हो। फिर कुछ भी गड़बड़ी न होगी।"

घनश्यामने भी मुस्कुराते हुए कहा-"देखो भाई, मेरे मनमें एक विचार उठता है। तुम उसे सुनकर क्या-क्या कहोगे, जानता नहीं।"

"कहो, सुनूँ तो।"

घनश्यामने कहा—" यह बात तुम अवश्य ही जानतेहो कि एमाके लिए यदि पति पसन्द करना पड़ेगा तो मैं हिरण के सिवा और किसीको पसन्द न करूँगा। मुझे मालूम होता है कि हिरण और एमा प्रेम-जालमें फँस गये हैं। मैं उनको दोष नहीं देता। हिरण जैसा लड़का और एमा जैसी लड़की आपसमें दोनोंसे मेल मुलाकात और बातचीत होती रहती है—प्रेम जालमें क्यों न फँसें?"

" अच्छा! क्या सचही तुम हिरणको पसन्द करोगे?"

" कहते क्या हो शूलपाणि? यदि एमाका फिर व्याह कर सका, तो हिरण जैसा लड़का कहाँ मिलेगा? कितने बंगाली लड़के हिरण जैसे पूरे साहब हो सके हैं? वह किस तरह सहजमें ही तुमको 'ओल्ड मैन' कहता है। कैसे सुन्दर, सहज भावसे तुम्हारे हाथमें शराबका गिलास उठा देता है। वह शराब पीता है, गालियाँ बकता है, मस्त रहता है, बिलकुल अङ्गरेज जैसा है।"

शूलपाणिने मुस्कुराते हुए कहा—" हाँ, हिरणको अच्छी पूरी शिक्षा मिली है। फिर वह तुम्हारा ही शागिर्द ठहरा, हो क्यों नहीं। मुझ जैसे भतरवौआ बंगालीको उसे अपना लड़का कहनेका भी साहस नहीं होता।"

घनश्याम फिर कुर्सी पर लेट गये और फिर चुरुट पीते पीते उठ बैठे; बोले— " शूलपाणि! सचही क्या ऐसा हो सकता है?"

शूलपाणिने फिर चाल चली; कहा-" नहीं हो सकता, यह बात नहीं है। किन्तु स्वामी ही कहाँ मिलेगा? और एमा ही क्या हिरण को प्यार कर ऐसी पागल बनेगी कि एक पतिके होते हुए भी दूसरा व्याह करना चाहेगी?"

घनश्यामने बहुत व्यस्त भावसे कहा-" नहीं नहीं, स्वामी एक मिलना ही चाहिए

और एमा भी प्यार करेगी ही, प्यार करती ही है। सुनो, मैं तो 'पूजा दूरमें' जाता हूँ; इस बीचमें हो सके तो कोई स्वामी जुटाना। हिरण भी मेरे साथ जाता है। यदि एमाका हृदय उसमें ही होगा, तो उस पर अधिकार करनेका हिरणको अच्छा अवसर मिलेगा।"

शूलपाणिनें कहा—"पागल हुए हो! एमा विवाहिता है। तुह्मारी लड़की है। हिरणको क्या इतना भी ज्ञान नहीं है, जो उसे प्यार करनेकी चेष्टा करेगा? यह तो विश्वासघातका काम होगा!"

फिर चाल! घनश्याम जबतक बिल्कुल पागल न बन जायँगे, तबतक शूलपाणि-का मतलब कैसे हल होगा। हिरणको जो कुछ करना होगा, घनश्याम उसे स्वयं करायेंगे!

घनश्यामने कहा—"उसे इन सब आशाओं का आभास दे देनेमें हर्ज क्या? और स्पष्ट भी कहा जा सकता है। अपना काम बनानेमें जब उसके मदद्की जरूरत है, तब उसे अपनी सलाह दिये बिना काम कैसे चलेगा? मेरे इच्छानुसार, मेरी लड़की का प्रेम पाने की चेष्टा करनेमें उसे किसी तरह की दुविधा न रहनी चाहिए?"

"ठीक है! जो अच्छा समझो करो, पर एमासे आगेसे कुछ न कहना। मन यदि तैयार नहीं होता, तो वह एक बारगी विपरीत हो सकता है, तब हिरण क्या, तुम भी उसके मनमें वह भाव पैदा न कर सकोगे!"

घनश्यामने कहा—"ठीक है! उसको फन्दमें फँसाना है, आगेसे कह देनेसे वह क्यों फँसेगी? लड़कियोंको अज्ञात रूपसे धीरे-धीरे प्रेममें, खींचना पड़ता है। सब बातें खोलकर कह देनेसे उनका मन बिगड़ जाता है। वे फिर हाथ न आयेंगी, प्रेम की तो यही रीति है। आहा, रात बहुत अधिक हो गई है, मैं फिर अब जाता हूँ। रुपये पैसे का आर्डर दे सबका बन्दोवस्त कर देना। कल नाइट मेल से इलाहाबाद जाऊँगा।"

शूलपाणि-"इलाहाबादमें कितने दिन ठहरोगे?"

घनश्याम-"प्रायः २।१ दिन वहाँ ठहर सकता हूँ। मिटार (मित्र) वहाँ बीमार पड़ गये हैं! उन्होंने एक बार मिलनेको मुझे लिखा है। अन्यथा मैं वहाँ उतरता ही नहीं। गुडबाय!"

शूलपाणि-"गुडबाय! किन्तु, देखना, मिटारसे भी ये सब बातें न कहना। और किसीसे भी न कहना, समझे?"

घनश्याम–" मुझे पागल समझते हो? ये सब बातें मैं आगेसे कहता क्यों फिरूँगा? जबतक व्याह न हो जायगा, तबतक किसीसे कुछभी न कहूँगा! फिर मेरे बन्धु इसे स्वीकार करेंगे ही। आगेसे कह देने पर वे वाधा डाल सकते हैं। मैं क्या इतना भी नहीं समझता?"

घनश्याम बिदा हुए। शूलपाणिने साथ जाकर उनको गाड़ीपर बिठाया और फिर वापस आ वे आरामकुर्सीपर लेट गये और जोर-जोरसे तमाखू पीने लगे।

मुखोपाध्यायने कहा–" आपने खूब दाँव चलाया है, पर अन्त तक निबह जाय तब है।"

शूलपाणिने हुक्के की नली हाथमें ले मुस्कुराते हुए कहा–" अन्ततक निबाहूँगा नहीं? कहते क्या हो मुखोपाध्याय? तुम क्या सोचते हो? घनश्याम इस जालको काटकर निकल सकेगा? उसकी जमींदारी तो अब मेरी ही समझो।"

मुखो–" किन्तु आप एक बात सोचते नहीं। बाईगेमी*का चार्ज जो लगेगा?"

शूल–" चार्ज लगायेगा कौन? मदन? वह इतना कानून क्या जाने? जानता भी होगा तो भी ऐसी बदनामी में न उलझेगा।"

मुखो " यदि उलझे तो? आपका कोई शत्रु यदि उसे बहका कर चार्ज कराये?"

शूल–" करेगा, तब देखा जायगा। कूद पड़ने पर रास्ता निकलेगा ही। विपद्का दायित्व लिये बिना काम नहीं होता। और किसी तरहसे कामयाब न भी हो सकूँगा तो उस आखिरी उपाय से ही काम निकालना होगा।"

मुखो–" वह उपाय पहले ही कर डालते तो अच्छा होता।"

शूल–" नहीं, ऐसा नहीं कर सकता। घनश्याम को तुम जानते नहीं? ऐसा करनेसे वह बिलकुल विरुद्ध हो जायगा।"

मुखो–" फिर भी तो वह विरुद्ध हो सकता है?"

शूल–" फिर विरुद्ध होकर क्या करेगा? लड़की को एक बार हाथमें आ जाने दो, फिर उसे जो ही कहूँगा, वही वह लाचार हो खुशीसे करेगा।"

---

* एक पतिके रहते यदि किसी स्त्रीका दूसरा व्याह किया जाता है, तो अँगरेजी कानूनमें उसे बाईगेमी कहते हैं। अँगरेजी कानूनके अनुसार ऐसा व्याह करना बड़ा अपराध है।

चौथा परिच्छेद ।

गुरुपद ।

माणिक इस घटनाके कोई एक महीने पहले भागा था। शहरमें रहने पर खर्च बहुत होता है और पकड़े जानेकी सम्भावना भी अधिक थी। वैद्यनाथमें २।४ दिन रहकर वह संन्यासी बना। हाथमें चिमटा और एक बड़ी लाठी ली। कपड़े के भीतर एक भुजाली भी सावधानीसे छिपा ली। इसके बाद 'जय सीताराम' कह वह संताल परगने के जंगलों-पहाड़ों की ओर चल पड़ा। माणिक बहुत साहसी, चतुर और सप्रतिम था। कबीर, तुलसीदास आदि साधुपुरुषों के अनेक पद उसे कण्ठस्थ थे। वह श्रम क्लेशसे कभी घबराता न था। उसकी स्फूर्ति किसीभी अवस्थामें क्षुण्ण न होती थी। इसलिए उसको किसी तरहकी तकलीफ या असुविधा न हुई। सर्वत्र बहुत उपचारोंसे उसकी पूजा होती थी। वनके निकट रहनेवाले सरलहृदय ग्रामवासी उसे घेरकर बैठते थे। माणिक वैराग्यका उपदेश देता था, पद कहता था, और कितनीही सुन्दर उपमाओंसे उनकी व्याख्या करता था। सब उसे भक्ति-गद्गद चित्तसे खाद्य सामग्री देते थे। माणिक खाता था, बाँटता था, हंसता था, बातें करता था; कभी लाठी भाँज कर, कभी पत्थर तोड़कर संन्यासीकी शक्तिका परिचय देता था। सरल आनन्दमय प्रकृतिराज्यमें, सरल आनन्दमय प्रकृतिकी सन्तानोंमें, सरल आनन्दमय निर्मलहृदय माणिकके दिन अच्छी तरहसे बीतने लगे।

एक दिन दो पहरको गाँवसे कुछ दूरीपर शालवनशोभित एक पर्वतके पास शालवृक्षकी छायामें माणिक पाँव फैलाकर आराम कर रहा था। पासही एक पेड़के नीचे पत्थर पर एक प्रौढवयस्क संन्यासी चिन्तामें डूबा बैठा था। माणिककी आलस्यभरी दृष्टि संन्यासी पर जा पड़ी। माणिकने सोचा, अकेला पड़ा हूँ, चलूँ इससे बातें करूँ, हर्ज क्या है! माणिक उठा। किन्तु उठतेही उसे संन्यासीके पीछे वनकी आड़में एक बाघ दिखाई पड़ा; जो संन्यासीकी ओर लक्ष्य कर रहा था। माणिकने चटपट कमरसे छुरी निकाली। "महाराज भागो भागो! मरे! बाघ है!" उसने चिल्लाकर यह कहते कहते संन्यासीके पास आ धक्का दे उसे दूर कर दिया और छुरी लिए वह दृढ़तापूर्वक खड़ा हुआ। बाघभी शिकारमें बाधा पहुँचती देखकर गरजता हुआ लक्ष्यस्थलकी ओर लपका! वह देखतेही देखते माणिककी छुरी

पर आ पड़ा। देहके भार और कूदनेके बेगसे छुरी बाघके पेटमें आमूल विध गई। माणिक भी वेगसे बाघके साथ ही बाघके नीचे जमीनपर गिर गया। माणिककी देह खूनसे लथपथ हो गई। मरे बाघको देहसे अलग फेंक कर माणिक उठ खड़ा हुआ। संन्यासी, जो डर के मारे स्तम्भित होरहा था, उसके सामने आया।

संन्यासीने पूछा—" बाबू, तुम कौन हो ? तुममें साहस, विक्रम और शक्ति अद्भुत है। तुमने आज अपनी जानको खतरेमें डालकर मेरी जान बचाई है। "

माणिकने जवाब दिया—" तुमने मेरी जानका क्या खतरा देखा, महाराज ! खतरेमें तो बाघही कूदकर मर गया। साला बिलकुल मरणबुद्धि था, नहीं तो संन्यासीको अपना लक्ष्य बनाता? तुम्हारी आयु है, धर्ममें बल है, नहीं तो बाघ क्या छुरीके ऊपर आ गिरता ! अन्यथा वह सहजमें न मरता। जरा कहीं दाँत लगा पाता, तो मुश्किल हो जाती। "

संन्यासी स्थिर तीक्ष्ण दृष्टिसे देखता हुआ माणिककी बातें सुन रहा था। उसने पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है बाबू ? घर कहाँ है ? इस उमरमें संन्यासी क्यों बने हो ? "

" संन्यासी बनाहूँ ? मैं तो संन्यासी हूँ ही ! संन्यासीका वेश फिर क्यों न धारण करूँ ? और उमरमें मुझे कम ही कैसे ठहराया ? तुम बुड्ढे हो गये हो, इसीसे क्या सब संन्यासियों को तुम्हारी ही तरह बुड्ढा होना चाहिए ? "

संन्यासीने माणिक की ओर देखते हुए धीरे धीरे कहा—" तुम्हारे सरीखे सरल आनन्दमय हृदयवाले सुगठित, बलिष्ठ साहसी सुन्दर युवक संन्यासी-वेशमें कम देखे जाते है। "

माणिकने उत्तर दिया—" फिर क्या महाराज संन्यासियों को कुटिल होना चाहिए, या उल्लुओं की तरह मुँह फुला बैठे रहना चाहिए? संन्यासियों को चोपदार बरकन्दाजोंके साथ चलने की व्यवस्था नहीं है। यदि जरा साहस न होगा, तो वे पहाड़-जंगलोंमें बाघ-भालुओंके बीच कैसे विचरते फिरेंगे ? यह क्या बड़ा आरामवाला पद है ? फिर रूपयौवनकी बात लो। जवानी तो आगई है सही, सभी एक वक्त जवान होते हैं, पर रूप मुझमें क्या देखा, जानता नहीं। महाराज, क्या पुराने जमानेके सब ऋषि-मुनि काले मुँहवाले बन्दरों जैसे थे और वे क्या अस्सी बरस माँके गर्भमें रहनेके बाद जन्म लेते थे ? फिर अपनी ही ओर देखो न ?

तुम्हारा चेहरा बड़ा रोबदार है, तुम यदि राजाका वेश धारण करते तो गैर मौजूँ न होता । हाँ, तुम जवान नहीं कहेजा सकते, पर बिलकुल बुड्ढे भी तो नहीं हो । "

संन्यासीने कहा—" ठीक कहते हो भैया । तुमको मुनि-युवक समझता हूं । तुमने किसी गुरु से दीक्षा ली है ?

" नहीं, गुरु तो अभी तक कोई मिला नहीं । मैं हालमें ही संन्यासी हुआ हूँ। महाराज, तुम्हीं क्यों मेरे गुरु नहीं बन जाते । ऐसा बाघ मारनेवाला शिष्य कितने जनों को मिलता है ? "

संन्यासीने कहा—" तुमको आदरपूर्वक शिष्य बनाऊँगा । "

" किन्तु यदि मैं संन्यासकी दीक्षा न लूं; घर लौट जाऊँ ? "

" यह तुम्हारी इच्छाकी बात है । फिर भी शिष्यकी तरह मेरे साथ रहो । यदि इस बीचमें तुम्हारा मन संन्यास ग्रहण करनेके लिए प्रस्तुत हो जायगा और मैं भी परीक्षा करके यह जान लूँगा कि तुम संन्यास ग्रहण करने के योग्य हो, तो तुम्हें संन्यासकी दीक्षा दूँगा । "

" और मैं भी इस बीचमें यदि घर लौट जाना चाहूँगा तो लौट जा सकूँगा । इससे कोई अधर्म तो न होगा ? "

" नहीं । "

" तो अच्छा इस शर्तपर मैं आपाततः आपका चेला हुआ "

माणिकने संन्यासी को प्रणामकर उसके चरणों की धूलि माथे पर लगाई ।

संन्यासीने पूछा—" तुम्हारा विवाह हो गया है ? "

" नहीं । "

" फिर घरमें कौन कौन हैं ? "

" माँ अकेली है, और कोई नहीं । "

" संन्यास लेने के लिए माँ से आज्ञा ले ली है ? "

" ऐसी आज्ञा किसी को मिलती है महाराज ? मैं भाग कर आया हूँ । "

" क्यों ? "

" भागने का कारण इस वक्त न बतलाऊँगा । "

" तुम्हारा नाम क्या है ? तुम्हारा घर कहाँ है ? "

" यह भी इस वक्त न बतलादूँगा । जिस वक्त दीक्षा लूँगा, उसी वक्त जो।

कुछ परिचय देना होगा, दूँगा। इसके पहले कुछ बतलाना नहीं चाहता। इस शर्त पर आप अपना चेला बनायेंगे ? मैं दुष्ट नहीं हूँ, अविश्वासी नहीं हूँ, आपको किसी तरहका भय नहीं है। ठगनेकी इच्छा होती तो झूठा परिचय दे सकता था।"

"फिर तुमको किस नामसे पुकारना होगा ?"

"आप ही कोई नाम रख लें।"

"अच्छा मैं तुम्हारा नाम सर्वदमन रखता हूँ।"

"जो आज्ञा।"

माणिकने संन्यासीको फिर प्रणाम किया और उसके पाँवोंकी धूलि अपने माथे पर लगाई।

संन्यासी ने कहा–" फिर चलो सर्वदमन मेरे साथ। पासही मेरे कुटिया है।

माणिकने पूछा–रास्तेके अवलम्बोंको क्या फेंक जाऊँ महाराज ? मेरी लाठी वह पड़ी है, छुरी अबतक बाघके पेटमें है।"

"नहीं, फेंक क्यों जाओगे, ले लो।"

माणिक लाठी, छुरी और चिमटा ले संन्यासीके साथ चला।

माणिकने कुटियेमें जाकर देखा कि संन्यासीके एक और चेला है।" वह दृढ़, बलिष्ठ और लम्बा चौड़ा है, नाम सुन्दर है। देखनेमें सुन्दर नामके अनुरूप न होनेपर भी बुरा नहीं है। किन्तु उसके चेहरे और आँखों का भाव देखकर माणिक सन्तुष्ट न हुआ। अपने आपही उसके मनमें यह बात उठी कि यह आदमी अच्छा नहीं है। यह संन्यासीका चेला क्यों हुआ ? शायद किसी मतलबसे चेला बना है, अथवा फ़रार मुलज़िम है। माणिकने मुस्कुराते हुए सोचा–" मैं भी तो एक फ़रार मुलज़िम हूँ, अच्छा जोड़ा मिला है। संन्यासी का भाग्य बुरा नहीं।"

माणिकके ये नये गुरु ब्रजगिरिके नामसे पुकारे जाते हैं ! ब्रजगिरि अधिक समय तक कहीं ठहरते नहीं हैं। कुछ ही दिन हुए यहाँ आये हैं। २।१ दिनके भीतर ही वे इन दोनों चेलों के साथ प्रयागकी ओर चल पड़े। ब्रजगिरिने प्रयाग पहुँचकर यमुनाके किनारे एक निर्जन स्थान पर क साधारण कुटी खड़ी की और दोनों चेलों के साथ वे उसमें रहने लगे।

पाँचवाँ परिच्छेद ।

शत्रु-शाक्षात् ।

" गौरदास ! "

" व्रजगिरि ! "

सहसा एक दिन यमुनाके किनारे व्रजगिरिकी दुबले, पतले कौपीनधारी एक वैरागी से भेट हुई, जिसके सिरके बाल मुड़े थे, जिसकी आँखें क्रोधसे चढ़ी हुई और लाल थीं, जिसका शिर कँप रहा था।

व्रजगिरिने कहा—" सावधान गौरदास ! यदि प्राणकी आशा हो तो मेरा पीछा छोडो, मैं जहाँ जाता हूं वहीं तुम धूमकेतुकी तरह मेरे पीछे पीछे फिरते हो । मैं बहुत सह चुकाहूँ, आज भी तुझें माफ करता हूं। फिर यदि कभी तुमको पीछा पकड़ता देखुँगा तो यह छुरी तुह्मारे छातीका खुन पीयेगी । "

यह कर व्रजगिरिने कपड़ेके भीतरसे एक तेज छुरी निकाली।

" हाः ! हाः ! हाः ! " बिकट रूपसे हँस कर गौरदासने भी अपनी झोली से एक छुरी निकाली और कहा—" हाः ! हाः ! हाः ! तुम मुझपर बड़ी दया करते हो व्रजगिरि । इस छुरी का भय दिखा इतनें दिनोंसे मुझे इस तरह माफ करते आ रहे हो ! "

व्रजगिरिकी आँखें जल रही थीं । उन्होंने क्रोधकंपित स्वरसे कहा—" पहले चाहे जैसे माफ किया हो, अब फिर न करूंगा । फिर कभी छुरी दिखाकर भाग न जा सकोगे। यदि प्राणका भय हो तो मेरे पीछे न लगना। "

गौरदासने कहा—" प्राणका भय क्या दिखाते हो व्रजगिरि ? जो प्राणसे अधिक है, प्राणही जिसके लिए है, उसका तुमने हरण किया है । तुमसे बहुत कुछ चुकाना है व्रजगिरि, इसीसे यह असार प्राण लिये इतने दिनों से तुह्मारे पीछे पीछे फिर रहाहूँ। जबतक शरीरमें प्राण है, जब तक उन सबका भुगतान नहीं ले लूँगा, तबतक इसी तरह तुह्मारे पीछे पीछे फिरूंगा ! "

दाँत पीसकर व्रजगिरिने उत्तर दिया—" फिर इसी छुरी से सब चुकता कर दिया जायगा । "

गौरदासने कहा-" यह जानता हूँ ब्रजगिरि, ऐसा मौका यदि तुम पाते तो आज क्यों, इसके बहुत पहले ही मेरी छातीमें छुरी भोंक देते। किन्तु इसजीवनमें ही मेरे हाथोंसे तुह्मारे प्राणोंका प्रायश्चित्त होगा, इसीसे विधाताने तुमको वैसा मौका नहीं दिया। किन्तु मुझे बहुतसे मौके मिले हैं। यदि एकान्तमें तुह्मारा रक्तपान करनेसे मेरी वह निदारुण तृष्णा शान्त हो सकती, तो बहुत पहले ही ऐसा कर सकता था। किन्तु मैंने ऐसा नहीं किया। क्यों नहीं किया, जानते हो? लोगोंके निकट तुम मरे ही हो। मरनेसे तुह्में क्या शान्ति मिलेगी। मरनेसे दुःखकी शान्ति होती है, कलंककी शान्ति होती है, अपमानकी शान्ति होती है, किन्तु जिस शत्रुने मर्मके मर्म तकको जला दिया है, जिस शत्रुने जीवन की सब आशाओं को छीन लिया है, जीवनकी सब स्मृतियों को भयंकर और विषमय बना दिया है, उस शत्रुको मार कर अपने ही हाथों से शान्ति क्यों दूँ? नहीं, मैं तुह्में मारूँगा नहीं। यदि तुम मेरे पाँव पकड़करके भी मुझसे अपने वधकी प्रार्थना करोगे तो भी मैं तुमको इसी तरह छोड़ दूँगा। जब तक मैं तुमसे अपना सब भुगतान न ले-लूँगा तब तक मैं इसी तरह तुह्मारे पीछे पीछे फिरूँगा, और तुह्मारे सब सुखों में विष डालूँगा, तुह्में दो दिन भी कहीं शान्तिपूर्वक ठहरने न दूँगा।"

वैरागी जल्दीसे चला गया। ब्रजगिरिने कहा-" जाओ गौरदास, शत्रु होकर भी तुमने मुझे जो दण्ड नहीं दिया है, वह दण्ड मैं तुह्में दूँगा। मृत्युके समय मुझे अपना परम मित्र समझना।"

सहसा पीछेकी ओर किसीकी आहट पाकर ब्रजगिरिने उस ओर देखा। उन्होंने सर्वदमनको आते देखा; पुकारा—

" सर्वदमन!"

माणिकने जल्दीसे पास पहुंचकर पूछा-" महाराज, क्या बात है? यह वैरागी कौन है? मालूम होता है, आपका उसने खूब अपमान किया है और वह आपको धमका कर चला गया है"

" तुमने क्या सुना है?"

माणिकने उत्तर दिया—" वैरागीकी विकट आवाज कानों तक पहुँची है, पर कुछ समझ नहीं सका। शायद वह आपको बहुत धमका रहा था। यही बात है न महाराज?"

" हाँ !——सर्वदमन ! "

" जो आज्ञा । "

" उसको अभी जाकर पकड़ सकते हो ? "

क्रोधसे व्रजगिरिकी आँखें अभी तक जल रही थीं; ललाट और भौएं खूब सिकुड़ रही थीं, होंठ काँप रहे थे, कँपते हुए हाथकी दृढ़ मुट्ठीमें पड़ी छुरी भी जरा जरा काँप रही थी ।

माणिकने कहा—" क्यों नहीं पकड़ सकता महाराज ? आप कहें तो अभी ही उसे पकड़ लाकर आपके चरणोंके निकट हाजिर करूं । "

व्रजगिरिने माणिकके कन्धे पर हाथ रखकर कहा, " सुनो सर्वदमन, मैं तुमपर बहुत स्नेह रखता हूँ । तुमकोही मैं अपना प्रधान शिष्य बनाऊँगा । मेरे पास जो बहुमूल्य रत्न हैं, उनको तुम देख चुके हो । मेरे बाद, मेरे प्रधान शिष्यकी हैसियतसे तुम्हीं उनके अधिकारी होगे "

" महाराज मुझ पर बड़ी कृपा रखते हैं । "

व्रजगिरिने कहा–" तुमको याद होगा, जिस दिन पहले पहल तुमसे भेट हुई थी, उस दिन मैंने कहा था कि योग्य परीक्षासे तुम्हारे मनकी जाँच कर और संतुष्ट होकर तुम्हें दीक्षा दूँगा । "

" हाँ याद है । "

" आज परीक्षा का योग्य अवसर आ पड़ा है । उस परीक्षामें यदि तुम मुझे सन्तुष्ट कर सकोगे, तो मैं आज ही तुमको दीक्षा दे अपने प्रधान शिष्यका पद दूँगा । "

" जो आज्ञा । "

" जो आज्ञा पाते ही, प्रश्न किये बिना, गुरु की किसी भी वासना को पूर्ण करनेको तैयार रहता है, वही सच्चे शिष्यके योग्य है । इससे बड़ी और कोई परीक्षा नहीं । क्यों परीक्षा दे सकोगे सर्वदमन ? साहस है ? "

माणिकने कहा–" मेरे साहस का यथेष्ट परिचय, महाराजको पहले ही मिल चुका है, अब हुक्म जानना चाहता हूँ । महाराज ने मेरा सर्वदमन नाम रक्खा है, वह नाम कभी वृथा न होगा । "

अच्छी बात है! तो यह लो, इस छुरीको ले अभी ही जाओ। उस वैरागी का पीछा करो, जिससे आँखोंकी ओट न हो। इसके बाद—"

"इसके बाद—?"

"इसके बाद—देखो सर्वदमन नाममें बट्टा न लगाना, गुरु के आदेशसे शिष्य होनेकी योग्य परीक्षामें पीछे पैर न रखना; मेरे सच्चे स्नेहका अपमान न करना।"

माणिकने पूछा–"इसके बाद क्या करना होगा, आज्ञा दीजिये।"

ब्रजगिरिने कहा–"मौका देखकर रातमें इस छुरीको बैरागी की छातीमें आमूल भोंक देना और उसके रक्तसे रँगी हुई इस छुरी को फिर मुझे लाकर देना। तुझारे कपाल पर उसके उसी गरम खूनकी टीका देकर मैं तुम्हें अपने प्रधान शिष्यका पद दूँगा। जाओ, और कुछ कहना नहीं है। मैं जाता हूँ, देखूँगा तुम मेरे योग्य शिष्य हो या नहीं?"

स्तंभित माणिकको जलती आँखों की एक भीषण, वैद्युतिक, अग्निशिखामय, अति तीव्र, तीक्ष्ण, स्थिर एवं गम्भीर दृष्टिसे देखकर संन्यासी महाराज चलपड़े। निश्चल, निस्पन्द, जड़, प्रस्तरमूर्ति जैसा माणिक जाते हुए गुरुकी ओर देखता खड़ा रहा। माणिक मानों संन्यासी द्वारा लाई गई किसी अज्ञात दानवीय शक्ति के मोहमें अबतक अभिभूत था। जब संन्यासी आँखों की ओट हो गया तब माणिक मानो मोहसे छूटकर होशमें आया।

माणिकने अपने मन ही मन कहा–"यह क्या? बात क्या है? क्यों मैंने इस दानव संन्यासीका साथ पकड़ा? मैं, मानों मैं नहीं हूँ! यह तो एक दिनका झगड़ा नहीं मालूम होता? यह पुराना झगड़ा मालूम होता है। इसके भीतर कुछ न कुछ रहस्य है। बैरागी बाबाको ढूँढना ही चाहिए, उनको अपनी मुट्ठीमें कर असली बात जाननी होगी। इस डाकू संन्यासीके पास अब न रहूँगा। बैरागी बाबा कैसे होंगे मालूम नहीं। यदि हो सका तो उनका ही साथ पकड़ूँगा। उनसे सब बातें मालूम होने पर यदि यह समझूँगा कि यह संन्यासी ही झगडे की जड़ है, तो बेईमान को मज़ा चखाऊँगा। गुरुजी, तुमको यहीं से प्रणाम है। खून ख़राबी कर मैं तुझारा चेला नहीं बनना चाहता। सुन्दरसे यदि ऐसा करा सको तो कराओ। फिर भी माणिकके रहते शायद बाबाजीके रक्तसे तुझारी प्यास न मिट सकेगी।"

छठा परिच्छेद ।

प्रतिशोधमें सहायता ।

इलाहाबाद नगरके छोरमें, एक मैली--कुचैली तंग गलीके एक टूटे-फूटे घरमें दीपकके मन्द प्रकाशमें माणिक और गौरदास बैठे हैं ।

गौरदासके चेहरे पर क्रोधकी वह उत्तेजना अब नहीं है । वह दुबला चेहरा बिषादकी गहरी छायासे काला पड़ गया है । किन्तु उस कालिमाके भीतर एक अत्यन्त सुन्दर, शान्त, स्निग्ध, करुण भाव मानों आधा छिपा हुआ है । गौरदासका चेहरा मुरझाया हुआ है, ललाटमें गहरे दुःखके कारण झुर्रियाँ पड़ हुई हैं, सूखे तुचके कपोलों और गढ्ढोंमें घुसे हुए म्लान निष्प्रभ नेत्रोंके चारों ओर गहरी कालिमाकी छाया है, होंठ पतले, सूखे और रक्तहीन हैं । जीर्ण-शीर्ण, और कालिमामय होते हुए भी गौरदासके सब अवयव गँठीले हैं, वर्ण भी, मालूम होता है, कभी गौर था; किन्तु अब वही ग्रीष्मकी तेज धूपसे जले हुए और पेडसे गिरकर धूलमें पड़े हुए फूलकी पँखडियों की तरह हो रहा है ।

दोनों जनोंमें बातें हो रही थीं । गौरदासने जरा दृढ़ और म्लान स्वरसे कहा--" इससे अधिक परिचय अभी न दे सकूँगा भैया । भगवान यदि कभी वैसा दिन दिखायेंगे तो परिचय पाओगे, नहीं तो इतना ही परिचय बस है । "

माणिकने कहा--" परिचय चाहे दो या न दो बाबाजी, पर तुमको बहुत सावधानीसे रहना होगा । संन्यासी बहुत विकट मनुष्य है । मैं अब यह समझ सका हूँ कि क्यों इतना आदर करके एक दिन की ही मुलाकातमें उसने मुझे अपना चेला बनाना चाहा था । मुझे तो देख ही रहे हो, सुन्दर नामका उसके एक और भी चेला है । वह मेरा जोड़ीदार है । उसका भी चेहरा और आँखें डकैतों जैसी हैं । मैं तो भगा आया हूँ, अब सुन्दरकी पारी है । वह भी आकर मेरी ही तरह तुमसे मिलजायगा, ऐसा मालूम नहीं होता । वह रक्तकी टीका पहन, गुरुका प्रधान शिष्य बन, चमकीले मणि माणिक्योंको अपनाना चाहेगा, यह सच जानना । लोभसे किसी दिन कहीं गुरुकाही खून न कर बैठे । तुमने अपनी छातीका रक्त, मालूम नहीं, कैसे ऐसा मीठा बना लिया है, जिससे संन्यासीको उसकी बड़ी प्यास लग रही है । अपनी छातीके

माठ रक्त की यदि रक्षा करना चाहते तो तो तुम्हे विशेष सावधानीसे रहना चाहिए। इस तरह घूमने फिरनेसे निस्तार नहीं, समझे बाबाजी!"

गौरदासने गंभीर दीर्घ निश्वास त्यागकर कहा—"केवल प्रतिशोधके लिए ही मैं जी रहाहूँ, नहीं तो मुझे जीनेकी ममता नहीं।"

माणिकने उत्तर दिया—"फिरभी, जीते रहोगे, तभी तो बदला ले सकोगे? हाँ, यदि यह खयाल हो कि कि मरनेपर भूत हो उसका गला तोड़ोगे, तो जुदी बात है। बाबाजी, तुम वैष्णव हो, कृष्णका नाम जपते फिरते हो, तुम क्या भूत हो संन्यासीके पीछे पीछे पेड़ पड़ फिरते रहोगे? तुम तो मरनेपर सीधे वैकुण्ठको चले जाओगे, और वहाँ संन्यासीसे भेट होनेकी कुछ भी सम्भावना नहीं।"

गौरदासने कहा—"मरकर भूत हो और उसके पीछे लग, उसके जीवनको दारुण विभीषिकामय बना सकूँगा, यदि मुझे ऐसा खयाल होता तो अभी ही स्वयं जाकर संन्यासीकी छुरीको प्राण अर्पित कर देता।"

यह कहते कहते रुद्ध क्रोधकी उत्तेजनासे गौरदासका शीर्ण ललाट फिर कुञ्चित हो गया। कालिमावेष्टित, कोटरगत म्लान नेत्र फिर आगकी तरह जल उठे; दाँत कड़कड़ा उठे, दुबली पतली देह कँपने लगी।

माणिकने कहा—"गजब किया! ठहरो बाबाजी दोहाई देता हूँ! भूत होने की बात अब कभी मुँहमें न लाऊँगा। तुमने जो मूर्ति दिखाई है, इससे अधिक भूत क्या दिखायेगा? इसे देखकर भी जब संन्यासी डरकर नहीं मरा, तब वह तुम्हारा भूत देखकर क्या मरेगा?"

गौरदास मुस्कुराये। माणिककी बातों से उनका क्रोध दूर हो गया; वे हँस पड़े। माणिक बोला—"ओः! बच गया, भाग्यसे तुह्मारे पास बैठा बातें कर रहाथा, नहीं तो रातके वक्त अकेले इस घरमें अचानक यदि यह मूर्ति देखता तो राम राम कह भाग खड़ा होता। बाबाजी, तुम भी तो संन्यासीसे कुछ कम नहीं हो। वह तुम्हारे खूनका प्यासा है, और तुम उसे ज़िन्दगी भर जलाना चाहते हो। तुम असलमें, संन्यासीके बहुत अत्याचारोंके सहनेके कारण क्रुद्धहो रहे हो और संन्यासी भी तुह्मारे प्रतिशोधके भयसे तुह्मारा खून करना चाहता है। तुम भी यदि संन्यासीकी तरह खून करना चाहते तो तुह्मारे पास भी मैं न फटकता। दोनों आदमी खून-खराबी कर मरते, मुझे क्या पड़ी भी। पर तुम संन्यासीका खून नहीं

करना चाहते, केवल उसे तंग करना चाहतेहो, इससे मैं तुह्मारा पक्ष ले रहा हूँ । किन्तु यदि तुह्में मेरी बातें न सुनकर इसी तरह घूमते रहना है, और अपनी छाती-का रक्त दे संन्यासीकी प्यास बुझा ही देना है, तो मेरा-तुह्मारा साथ व्यर्थ है । तुम यदि मर ही गये तो फिर संन्यासीको कैसे तंग कर सकोग ? पर यदि तुम मेरे साथ रहोगे और मेरे कहनेके अनुसार चलोगे तो मेरे द्वारा तुह्मारा काम हो सकता है । "

गौरदासेने उत्तर दिया—" खूब अच्छी तरहसे तुह्मारे कहनेके अनुसार काम करूंगा भैया । कहो, मुझे क्या करना होगा भैया–तुम जो कहोगे, मैं वही करूँगा । "

" केवल परिचय देना छोड़कर "—माणिकने मुस्कुराते हुए यह कह गौरदासको वाधा दी ।

गौरदासने मुस्कुराते हुए कहा—" हाँ भैया, परिचय देना छोड़कर । "

" अच्छा, मैं भी अपना परिचय न दूँगा ! दोनोंको एक दूसरेका परिचय कभी मिलेगा ही । तब तक तुम बाबाजी हो और मैं—"

" भैया । "

" अच्छा, ठीक है । आजसे मैं तुम्हारा भैया, मुरब्बी या अभिभावक हुआ । क्यों ? "

" हाँ भैया, कहो फिर मुझे क्या करना होगा । आजसे छोटे बच्चेकी तरह मैं तुम्हारी आज्ञाके अनुसार चलूँगा । मानों कोई मुझसे कह रहा है कि तुम्हारे द्वाराही मेरा सर्वस्व मिलेगा । "

माणिकने कहा–" इतना बड़ा भरोसा पहलेसे ही न रक्खो । फिर भी जो कुछ कर सकूँगा करूँगा । "

" फिर अब मुझे क्या करना चाहिए ? "

माणिकने कहा–" पहले तुमको बाबाजीका यह वेश बदलना होगा, जिससे संन्यासी सहज में ही तुम्हे पहचान न सके । "

गौर–" इस वेशसे तो मेरे दो काम होते हैं । भीख माँग कर पेट भरता हूं और संन्यासीको भी खोजता फिरता हूं । "

माणिक–" भीख माँगे बिना क्या पेट नहीं भर सकते बाबाजी ? "

गौर–" पेट भर सकता हूं, पर घूमना–फिरना कैसे हो सकता है भैया ? "

माणिक-" बुद्धि ही बाबाजी, घूमते फिरते हुए भी भीख माँगे बिना पेट भर सकते हो। बाबाजी के वेशमें धर्म-कर्मका तो मतलब छिपा नहीं है।"

गौर-" नहीं भैया, प्रतिशोध लेना ही मेरा सब धर्म-कर्म है। सन्यासीका खोज करता रह सकूँ, और अपना पेट भी चला सकूँ, इस तरह का चाहे जो काम बताओ मैं करने को तैयार हूं।"

माणिक-" अच्छा, फिर बाबाजीका यह वेश बदल दो, और कोई वेश धारण करो, जिससे यह वेश बिलकुल छिप जाय और संन्यासीके बापके बाप भी तुम्हें पहचान न सकें।

गौर--" ऐसा क्या वेश धारण करूँ भैया?"

माणिक-" ठहरो, ज़रा सोच देखूँ। हाँ, ठीक है। तुम काबुली बन जाओ; अभी सिरके बाल और डाढ़ी-मूँछ मुड़ाये बाबाजी हो। अब घूँघरवाले बाल, सिरपर अच्छी बड़ी काबुली पगडी और डाढ़ी मूँछ धारण करो। इसके बात यदि आँखों पर नीला चश्मा लगा सको तो कहना ही क्या? आँखें बहुत ख़राब होती हैं बाबाजी। इनके द्वारा मनुष्य पहचाना जा सकता है। सन्यासीसे भेट होते ही तुम्हें गुस्सा आयेगा, लाल लाल आँखें कर उसकी ओर घूरोगे ही। तुम्हारी वह दृष्टि मैंने एक दिन देखी थी, उसे कभी भूल नहीं सकता। फिर संन्यासीने तो खूब देखी है, उसे कैसे भूलेगी? तुम्हें चश्मा लगाना ही होगा। किन्तु बाबाजी, तुम हो बहुत दुर्बल, काबुलीका वेश क्या तुम्हें शोभा देगा? खैर, लम्बे खूब हो, एक प्रकारसे ठीक ही होगा। तुमने मेरे ऊपर सब भार रख दिया है। अब क्रोधको ज़रा भूल जाओ, मनको शान्त करो। अच्छी तरह खा पी कर शरीरको ज़रा स्वस्थ बनाओ। किन्तु काबुली बनोगे तो? बोलो?"

गौर-" हाँ भैया, तुमने यह अच्छी सलाह दी है, किन्तु भोजन कैसे प्राप्त होगा?"

माणिक-" क्यों, फेरीसे कपड़े बेंचकर? केवल काबुली बनकर घूमनेसे काम कैसे चलेगा? काबुलीको तो कोई भीख न देगा। खासे घूँघरवाले बाल और दाढ़ी मूँछसे सज, चश्मेसे आँखें ढक, सिर पर एक बड़ी काबुली पगडी रख, ढीले ढाले कपडे पहन, पीठ पर कपडोंकी एक गठरी लाद, हाथमें मोटी लाठी ले मजेसे घूमते फिरोगे।

इससे पेट भी चला सकोगे और संन्यासिकी भी खोज करोगे । कुछ रुपया-पैसा हाथमें है बाबाजी ? इतने दिनोंतक भीख माँगी, कुछ जमा नहीं किया ?"

गौर-" हाँ, कुछ जमा किया है । उससे एकबारके लिए एक गठरी कपड़ा मिल जायगा और खर्चको भी कुछ बच रहेगा । "

माणिक-" बस, फिर और क्या चाहिए ? मान लो, आज गौरदास बाबाजी मारे गये, और फिर वे ही अमीरखाँ काबुली हो जन्मे हैं । किन्तु एक बात है, मेरी मदद चाहते तो हो ?"

गौर-" हाँ, तुम्हारी मदद तो चाहता ही हूं भैया । "

माणिकने ज़रा चिन्ताकर कहा-" पर काबुली बनकर घूमनेसे मेरा काम तो न चलेगा । एक महीना हुआ, घरसे भाग आया हूँ । घरमें मेरे अकेली माँ है, वह मालूम नहीं कितना रोती होगी । मुझे एक बार घर जाना ही होगा । ज़मींदारी ताल्लुकेदारी कुछ है नहीं, किसी तरहसे अपने और अपनी माँ के पेटका प्रबन्ध कर आना होगा । "

गौरदासने उदास हो कर कहा-" फिर भैया तुम घर जाओ, मैं अकेला ही घूमूँगा । "

माणिकने कहा—" नहीं बाबाजी ऐसा तो न हो सकेगा । तुम यदि कहीं क्रोध सँभाल न सके और पहचान लिये गये तो संन्यासी तुम्हें जीता न छोड़ेगा । मेरे पास रहे बिना काम न चलेगा । और फिर तुम्हारे जैसे छोटे बच्चेको मैं तुम्हारा भैया होकर इस तरह छोड़ सकता हूँ ? ऐसा न हो सकेगा । मेरे पास ही पास रहना होगा । "

" ऐसा कैसे होगा भैया ? "

माणिकने ज़रा सोचकर कहा—" एक काम किया जाय । संन्यासी को इस बातका ज़रूरही सन्देह होगा कि मैं तुमसे जाकर मिल गया हूँ । और उसे यह भी मालूम है कि घर लौट जानेकी भी मेरी प्रवृत्ति है । इसलिए उसे यही खयाल होगा कि मैं तुमको साथ लेकर बंगालको ही गया हूँगा । मेरे खयालमें तुम जिस तरह क्रोधके मारे उसकी खोजमें फिरते रहते हो, उसी तरह डर के मारे वहभी तुम्हारी खोजमें फिरता है । अब संन्यासी कलकत्ते की ओर जायगा, यह ठीक जानना । इससे तुम भी मेरे साथ चलो । "

" फिर ? "

" फिर और क्या ? मैं घर जाऊँगा, तुम कलकत्तेमें रह फेरी लगा कपड़े बेंचना। इधर मैं भी सब प्रबन्ध करके आ जाऊँगा। फिर जैसा मौक़ा होगा, किया जायगा। "

" अच्छा भैया, ऐसा ही करो। "

माणिगेने फिर जरा चिन्ता की। उसने घरका दरवाजा खोलकर सावधानीसे सब ओर दूर तक अच्छी तरहसे देखकर अनन्तर वह फिर दरवाजा बन्दकर बैठ गया और बोला " सुनो बाबाजी, संन्यासी मेरा विश्वास करता है। उसे अबतक इस बातकी खबर नहीं है कि मैं तुमसे आकर मिल गया हूं। वह बैठा यही सोच रहा होगा कि मैं छुरीलिये तुम्हारी खोजमें ही फिर रहा होऊंगा। आज रातको उसे कुछभी सन्देह न होगा।। किन्तु कल वह खोज करेगा ही। तुमको भी काबुली बनना है, मुझे भी बंगाली बाबू बनना है। चलो रातमें ही दोनों जने यहीं से चलदें। शहरकी दुकानें अबतक बन्द नहीं हुई होंगी। कपड़ा, घूँघरवाले बाल, दाढ़ी, मूँछें, पगडी आदि सब चीजें खरीदलें। संन्यासी और सुन्दर किस वेशमें शहरमें कल मेरी तुम्हारी खोज करेंगे इसका कोई निश्चय नहीं। हम दोनों कलही कलकत्ते को रवाना हो जायँ। और फिरभी, हम दोनोंको एक साथ ही इस तरहसे चलना होगा, गोया एक दूसरेसे परिचय नहीं। "

" चलो भैया "

बगलके घरमें जा घरके मालिकको घरका भाड़ा दे दोनों रातमें ही चलपडे।

सातवाँ परिच्छेद।

शुभ दृष्टि।

दुर्गा पूजाके दिन आ पहुँचे। मदन अब तक नहीं लौटा। मेनका ठकुरानी बहुत घबरा उठीं। मण्डपमें देवीकी मूर्ति चित्रित और सज्जित की जारही है। घर-घरमें पूजाके आनन्दका कोलाहल हो रहा है। किन्तु मदनके न होनेसे मेनकाके लिए सब निरानन्द है, सब शून्य है। वे सबपर व्यर्थही नाराज होकर इस शून्यताको कुछभी पूर्ण कर न पाती थीं।

पूजाके दिनोंमें ही वे मदनके लौट आनेके लिए नित्य नारायणको तुलसी, महादेवको विल्वपत्र और देवीको रक्तजवा चढ़ाने लगीं। इसके अतिरिक्त देवीको नैवेद्य और बकरा और सब देवालयोंमें नाना उपचारोंसे पूजा करनेको कहा।

सचही मदन कहाँ गया ? हम लोगों को भी क्या उसका पता लगाना उचित नहीं ?

पश्चिम-यात्रामें मदनने सोचा, घूमने चले हैं, तब तीर्थ करनेमें क्या दोष ? माणिकसे भेट होनेकी अधिक सम्भावना तीर्थोंमें ही है।

मदन पहले वैद्यनाथ गया। उसने बाबा वैद्यनाथकी पूजा की और उस स्थानकी प्राकृतिक शोभा देखी। इसके बाद वह गया गया। वहाँ उसने पितृपितामहको पिण्डदान दिया। अनन्तर वह काशी पहुंचा। काशीमें गंगा स्नान किया, विश्वेश्वर और अन्नपूर्णाके दर्शन किये। मान-मन्दिर गया, वेणिमाधवकी ध्वजापर चढ़ा और पन्द्रह दिन रहकर माणिकको ढूंढा। वहांसे मदन प्रयाग गया। प्रयागमें त्रिवेणीके संगमपर स्नानकर तीर्थ यात्रियोंके ठहरनेकी जगहोंमें और अन्यत्र माणिकको खोजा। माणिक इस समय ब्रजागिरिकी निर्जन कुटीमें गुरुसेवा कर रहा था। तब मदनने विन्ध्याचल जानेका विचार किया। पूजाके दिन वहाँ बिताना निश्चित किया।

मदन गदाके साथ स्टेशन गया। माणिकभी उसी दिन अमीरखाँ रूपी गौर-दासको साथ ले कलकत्ता जानेके लिए स्टेशनपर आया था। किन्तु पूजाके दिनोंके कारण स्टेशनपर बड़ी भीड थी। संन्यासीके पीछा करनेकी आशंकासे माणिक छद्मवेशमें था। इसलिए स्टेशन परभी माणिक और मदनसे भेट न हुई। गाडी छूटने और टिकट मिलनेमें अभी बहुत देर है। इसलिए मदन यात्रियोंकी भीड़के बाहर एक निरापद स्थानपर पोटलीके पास गदाको बिठा चहलकदमी करने चला।

मदन गया, पर लौटा नहीं। गदा बैठा-बैठा घबरा गया। गदाने सोचा, जरा आगे बढ़कर देखूँ, दादा ठाकुर आते हैं या नहीं। गदा उठकर सामने की ओर कुछ बढ़ा। इधर-उधर उसने नजर दौड़ाई और सोचा, कितने लोग हैं, पर दादा ठाकुर तो नजर नहीं आते; वे कहाँ गये कौन जाने ?

गदा जरा विरक्त भावसे फिर अपनी जगहको लौटा, किन्तु लौट आनेपर उसे पोटली न दिखाई पड़ी, कोई उसे उड़ा ले गया था। गदा कुछ देर तक घबराया

और डरा हुआ सा ताकता रहा, अनन्तर मन ही मन बोला—"अरे सर्वनाश! पोटली कौन ले गया? अब क्या होगा? दादा ठाकुरसे क्या कहूँगा। दादा ठाकुरके साथ यह कह कर आता था कि उनके कहीं जानेपर उनके सामानकी रखवाली करूँगा, जिससे कोई गठरी-पोटली चुरा न सकेगा। पर पोटलीको कोई चुरा ही ले गया। वाहरे मेरा अभाग! अब क्या करूँ? दादा ठाकुर जब आकर पूछेंगे, 'गदा गठरी कहाँ हैं?' तब उनको मैं क्या जवाब दूँगा। और मालूमभी किसे था कि यहां पोटली चोरी हो जायगी। मैं समझता था, यह पराग है, यहाँ लोग तीरथ करने आते हैं। यहाँ चोरी करने कौन आयेगा? अरे बेईमानों, अगर तुमको चोरी करकेही पेट चलाना है तो क्या बरह्माण्डमें तुम्हें और कहीं जगह नहीं मिली? यहाँ तीरथमें कुकरम करने आये हो! हरामज़ादो! बदमाशो! नरकके कीड़ो! पाया क्या, दो चार कपड़े और लोटा कटोरा; इतनेसे मेरे दादा ठाकुर मर न जायँगे। तुम लोग ही नरकमें पच पचकर मरोगे; यमके दूत लोहेकी सलाई से तुम लोगों को खींच-खींच नरकके कुण्डमें डुबो रक्खेंगे, तीरथमें बरहमनके कपड़े-लत्ते चुरानेका मज़ा चखायेंगे। और दादा ठाकुर भी कहाँ अँटक रहे, कबके गये हैं, लौटे नहीं। कितनी गाड़ियाँ आईं, कितनी गाड़ियाँ गईं। यहाँ बहुत जगह भी नहीं है। मैं एक जगह बैठा भी रहूँ कबतक? और ये चोर बेईमान कहाँ थे? अरे बेईमानों, क्या तुम यहीं खड़े थे? मैं बैठा ही तो था। अभी ही तो उठकर उधर यह देखने गया था कि दादा ठाकुर आते हैं या नहीं। इसी बीचमें पोटलीको चील्ह जैसे उड़ा ले गये। बापरे बाप! ऐसी जगहमें भी आदमी तीरथ करने आते हैं! चलूँ, देख आऊँ, दादा ठाकुर कहाँ गये? लोग गाड़ीमें चढ़ रहे हैं। गाड़ी से उतर रहे हैं। टिकट लेनेम कितना रेलपेल कर रहे हैं। मछली की दूकानमें भी ऐसी रेलपेल नहीं होती। भागकी बात है कि ऐसी रेल-पेलमें दो चार जने पिस नहीं जाते। अरे इतने लोग हैं! इतने लोग कहाँ जाते हैं, और आते ही कहाँ से हैं? इस भीड़में दादा ठाकुर क्या मिलेंगे? इस तरह बैठा भी रहूँ कबतक? चलूँ, एक बार इधर-उधर खोज ही आऊँ। पर इस जगह को अच्छी तरहसे पहचानता चलूँ, अगर दादा ठाकुर न मिले तो यहीं लौट आकर उनके आनेकी राह देखूँगा। वह वहाँ चौकीदार खड़ा है, बडे-बड़े एक दो तीन

खोले खंभे हैं । उनमें से एक झुक सा रहा है । यहाँ मेरी पोटली रक्खी थी । उस जगहसे गाड़ी जाती है, और वह दो बेईमान उस भले आदमीका बक्स ले खींच-तानी करते हैं । एक आदमी गठरी रख ' कुली कुली ' पुकार रहा है, उन दोनों में से एक आदमी उसकी गठरीको उठा ले, पर वे ऐसा नहीं करते, दोनों बेईमान एक बक्सको खींच तान रहे हैं। अरे अभाग! उस पोटली को तीन जनोंने खींचा ! हिः! हिः ! हिः ! मरो बेईमानो, लड़-झगड कर । नहीं, मैं चलूँ, आगे बढ़कर दादा ठाकुरको ढूंढू, यह तमाशा देखनेसे क्या होगा ?"

गदाने एक बार सावधानीसे फिर इधर—उधर देखा । अनन्तर चिन्होंको याद कर वह आगे की ओर बढ़ा ।

उधर मदन इच्छापूर्वक घूमते-घूमते उच्चश्रेणीके विश्रामघरके पास आया । मदनने कौतूहलवश घरके भीतर की ओर देखा । देखकर मदन चौंका और खड़ा हो गया । उसने देखा, कमरेमें साहब हिरण और उसके ससुर सरीखे प्रौढ़ वयस्क एक बाबू साहबी पोशाकमें बैठे हैं । साथमें दो युवतियां है, वेशभेषासे एक दूसरेकी सहचरी जान पड़ती है । मदनने खूब अच्छी तरहसे देखकर पहचान लिया कि वे बाबू उसके ससुर ही हैं । किन्तु यह युवती कौन है ? मदनने विवाहके समय गौरीके घूँघटसे ढके कोमल हास्यमय मुखको केवल २।४ बार देखा था । उस मुखकी मधुर स्मृतिसे उसका हृदय अबतक भरा था। मदनने अच्छी तरहसे देखा । यह वही मुख तो नहीं ? वह सङ्कुचित कोमल कली ही तो खिलकर सुन्दर फूल नहीं हो गई है ? हाँ—नहीं—मानों वही है । और कौन होगी ? हिरणका व्याह नहीं हुआ है! ससुरने भी दूसरा व्याह किया नहीं है, यह मदनको मालूम था । मदन उसे देखकर मुग्ध हो गया, उसे देखता ही रह गया । देशकालपात्रकी दृष्टिसे उसका यह काम अनुचित है, इसका खयाल उसे न हुआ । इस सुन्दर सजे हुए धनिजन सेव्य विश्रामगृहमें विलास—आसनपर आधी सोई हुई सुसज्जिता, सुशिक्षिता, सुसभ्या, उच्च समाजके परिमार्जित उच्च आचारोंमे अभ्यस्ता इस सुन्दरी, और उसके सामने अदबसे खड़े हुए भ्रमणमालिन दीनवेशधारी ग्राम्य, अर्द्धशिक्षित दीन बंगाली युवकमें कितना अन्तर है, वह इस युवतीको दूरसे भी देखने योग्य नहीं समझा जा सकता, मदन को इस बातका खयाल न हुआ ।

मदन आत्मविस्मृत सा हो उस युवतीको देखता रहा। अनन्तर उसे अपना स्मरण हुआ। वह युवती कितनी उच्च है, और वह कितना निम्न है, मानों उसे इस विषयका ख़याल हुआ। गंभीर लम्बी सांस बाहर निकली। लाल मुंह लज्जासे नीचे झुक गया। मदन दूसरी ओर घूमा, किन्तु उसने फिर लौटकर देखा, टकटकी बंध गई।

घनश्याम कुर्सी पर बैठे ऊंघ रहे थे। हिरण सिर नीचा किये अखबार पढ़ रहा था। एमा एक कोचपर आरामसे बैठी थी और दीवारकी एक सुन्दर तस्वीर को देख रही थी। एमाके बगलमें बैठी हुई रंगिणीनें बाहरकी ओर ताका। उसने मदनको देखा। उसने मुस्कुराते हुए एमासे धीरे-धीरे कहा—" मज़ा देखोगी दीदी साहब एक मर्द तुह्मारी ओर आंखें फाड़-फाड़ कर कैसा देख रहा है! मानो निगल जायगा, स्त्रीजातिको मानो कभी आंखोसें नहीं देखा!

एमाने देखा। एक मुहूर्तमें ही आंखोंसे आंखें जा मिलीं। मदन जल्दीसे ओटमें हो गया। एमाने पूछा वह कौन था?

हिरणने मुंह ऊपर उठाकर बाहरकी ओर देखा। देखा, कोई जल्दी-जल्दी आगे बढ़ कर आंखों की ओट हो गया। हिरणने मुस्कुराते हुए साहबी रसिकता कर कहा—" आहा उस बिचारेका क्या दोष? प्रभातके खिले हुए फूलको कौन नहीं देखता रह सकता? दोष तुह्मारे चेहरेका है एमा, उस आदमीका नहीं।

रंगिणी मुस्कुराई। एमाने मुंह फेर लिया। उसका ललाट और भौएं कुछ बल खागईं। रंगिणीने यह देखा, वह और भी मुस्कुराई।

घनश्यामने आँखें खोलीं और सबके चेहरों की ओर देखकर बाहर की ओर नज़र दौड़ाई। इसके बार उन्होंने आँखें पोछ आलस्यका परित्याग कर एक चुरुट लिया।

इसी विश्रामगृहके बगलमें ही साहबोंका होटल था। एक अँगरेज गार्ड उसीमें घुसा और उसने एक गिलास शराब पी। इसके बाद उसने चुरुट जलाया और चुरुट पीता हुआ खटाखट करता वह इस विश्रामगृहके सामने आ पहुँचा। गार्डने देखा, बिश्रामगृहमें एक बढ़ी सुन्दरी युवती आरामसें कोच पर बैठी है। उसके बगलमें एक और युवती है। साथमें दो पुरुष हैं, जो मयूर पुच्छधारी काकमात्र हैं। भय या सम्मानकी कोई बात नहीं। गार्ड साहबने मुंहमें चुरुट दबाये हुए कमरे के भीतर पैर रक्खा। उसने निर्लज्ज लोलुप दृष्टिसे एमाके सुन्दर चेहरे और देहसौष्ठवको

अच्छी तरहसे देखा । हिरणने विरक्ति के साथ और घनश्यामने विस्मयके साथ गार्ड की ओर देखा, किन्तु किसीको कुछ कहने का साहस न हुआ ।

गार्ड साहबने पास आकर कहा—Where are you going Babus? your tickets—?" (बाबू, तुम लोग कहाँ जाते हो? तुह्मारा टिकट ?)

हिरणने गर्व आर विरक्तिके साथ कहा—"We are not Babus-let me tell you but gentlemen, (हम लोग बाबू नहीं, भले आदमी हैं । ")

गार्डने उत्तर दिया—" Gentlemen! O yes! I shouldn't have recognised you-you look so very nice in your borrowed plumes-ha! ha!" (भले आदमी । ठीक है! तुम लोग उधार लाये हुए पंखोंसे ऐसे सुन्दर दिखाई देते हो कि मैंने तुम लोगों को न पहचानकर उचित काम नहीं किया है । हाः! हाः!")

घनश्यामके चेहरेपर कुछ रंजभरी घबराहटका भाव दिखाई पड़ा । हिरणका चेहरा लाल हो गया । उसने भौएं टेढ़ीकर कहा—" But allow me to tell you, sir, that your fine pleasantries seem to us neither very agreeable nor suitable" (" महाशय, मैं आपसे यह कह देना चाहता हूँ कि आपका यह रहस्य विशेष सन्तोषप्रद या सङ्गत नहीं मालूम होता । ")

हिरणने एमाकी ओर एक बार देखा, और फिर बोला—" I think you will do well, sir, to leave us alone." (" यदि आप हमलोगोंको अकेले ही रहने दें तो अच्छा । ").

" Oh? I didn't know you rented this room all to your yourselves to have a merry time of it with these two nice girls, till the train starts they are just two for two which for which I wonder " (" ओ! मुझे मालूम न था, कि गाड़ी न छूटने तक तुमने इन दो लड़कियोंके साथ आनन्द करने के लिए इस कमरेको भाड़ेसे ले लिया है? देखता हूँ, ये दो दो के लिए हैं, सोचता हूँ, कौन किसके लिए है?")

गार्डने अब अधिकतर निर्लज्ज लोलुप दृष्टिसे एमा और रंगिणीकी ओर देखा। एमा डरके मारे सिकुड़कर कोचकी एक ओर सरक बैठी और सभय करुण दृष्टिसे उसने पिताकी ओर देखा। पिता खामोश हैं।

हिरणने उत्तेजित और कम्पित स्वरसे (क्रोधसे, भय से, लज्जासे, या सबके मिश्रणसे, मालूम नहीं.) कहा—" Hold your tongue man! take care what you say about this lady here (" चुप रहो! इस भद्र महिलाके सम्बन्धमें सावधान हो बातें करो।")

" Hold my tongue! what! for fear of borrowed feathers? Eh!!" (" चुप रहूँ? क्या? तुह्मारी उधार लाई हुई पूंछके डरसे? आँ!")

यह कह साहबने हिरणको एक घूंसा मारा और कहा—" How now? ha! ha! how do you like it my fine gentleman, my brave knight of barrowed plumes? ha! ha ha!" (" ऐ भले आदमी, घूँसा कैसा लगा,—उधार पुच्छधारी वीर? हाः! हाः! हाः!"

हिरणने बहुत नाराज होकर धमकाते हुए कहा—" you will rue its consequences in a law court, sir" (" अदालतमें तुमको इसके लिए दुःख प्राप्त होगा")

"Ha! ha! That's exactly like you gentleman, and not Babus as you are, but oh! what a brute I have been to have frightened so my fair charmer." (" हाः! हाः! यह ठीक तुह्मारे मुँह जैसी ही बातें हैं। तुम भले आदमी हो। बाबू नहीं हो न? ओः! इस सुन्दरीको डराकर मैंने पशुकी तरह कैसा व्यवहार किया है!")

यह कह साहब लज्जा, घृणा, और भयसे सङ्कुचित हुई एमाके बगलमें सटकर बैठ गया। उसने एक हाथ एमाकी पीठपर रक्खा और दूसरे हाथसे एमाका हाथ पकड़कर हंसते हुए कहा—" Oh never mind! my sweet angel" (ओ! कुछ खयाल न करो परीजादी!) " डरो मत! हाम टोम्हारा–"

" बाबा! बाबा!"

एमा चिल्ला उठी। उसने उठकर सरक जानेकी चेष्टा की। साहबने उसे पकड़ कर

खींच लिया । घनश्यामके मुँहसे बात नहीं फूटती ! रोती हुई सूरतसे उन्होंने एक बार हिरणके चेहरेकी ओर, एकबार एमाके चेहरेकी ओर, और एकबार साहबके चेहरेकी ओर देखा ।

हिरणने दम्भपूर्वक उछलकर कहा—" How sin ? Are you a gentle man and thus insult a lady ? let her go, I say–or–or–" (" यह क्या महाशय, तुम भले आदमी होकर एक भद्र महिलाका अपमान करते हो ? इसे छोड़ दो । नहीं तो–नहीं तो–")

" I shall rue its consequences in a law court, eh? Never mind ! Go and find a lawyer and in the mean-time the girl is mine. (" अदालतमें मुझे दुःख प्राप्त होगा - नहीं ? अछा, जाओ किसी वकीलको ढूँढो । तबतक यह छोकरी मेरी है । ")

" डरो मट छकरी । हाम टुमको बहूत पियार करेगा । "

साहबने फिर एमाको खींचकर बगलमें बिठाया ।

एमा कातर स्वरसे चिल्ला उठी । रंगिणी यह बरदाश्त न कर सकी । बहुत दिनो तक असहाय अवस्थामें रहनेसे उसमें साहस आ गया था । उसने उठकर साहबको धक्का दिया और एमाको छुड़ानेकी चेष्टा करते हुए कहा—" बाहरे मुँहजला साहब ! तेरे माँ–बहन नहीं ? भले घरकी लड़कीकी इज्जत बिगाड़नेमें तू डरता नहीं ? छोड़ दे दीदी साहबको अभागा ! "

विस्मित साहबने कहा—" O what a brave girl ! (आँः कैसी बहादुर छोकरी है ") टोम बी अच्छा सिपाईका माफ़िक रंडी है । come my dear, I have love enough for you both. " (आओ प्यारी, मुझमें तुम दोनोंके लिए ही काफ़ी प्रेम है)

साहबने रंगिणीका हाथ पकड़ लिया और जबर्दस्ती उसे अपनी बग़लमें बिठाया । हिरणने स्पर्द्धा कर कहा—" डरो नहीं एमा ! मैं अभी पुलिस बुलाता हूँ ! देशमें क्या कानून नहीं, अदालत नहीं ? पुलिसमैन ! पुलिस मैन ! "

इसीबीचमें मदन फिर लौटकर विश्रामगृहके सामने आया । मुहूर्त्तमात्रमें ही वह सब बातें समझ गया, उसकी नस-नसमें आगकी लहरें लहराने लगीं । सिंहगर्जनके साथ एक छँलागमें वह कमरेके भीतर घुस आया और घूँसों और लातों से साह-

बको ज़मीनपर गिराकर गुस्सेसे बोला—" क्यों साला साहब ! भले घरकी लड़-कियोंको पकड़कर खीचता-तानता है ? सोचता था, यहाँ मनुष्य नहीं ? "

एमा मूर्छित होती जा रही थी। रंगिणीने उसे पकड़कर और कोचपर बिठाकर कहा—डरो नहीं; डरो नहीं, दीदी साहब ! यह देखी, उसी बाबूने आकर साहबको मारकर चित गिरा दिया है। "

एमाने करुण कृतज्ञ नेत्रोंसे मदनकी ओर देखा। मदनने भी देखा। दोनोंकी चार आँखें हुई। एमाने सिर नीचे झुका लिया।

हिरणने कहा—" कौन मदन ? "

" हाँ, मैं वही देहाती भूत मदन हूं। साहबी चालसे, लड़कियोंको साथ ले बाहर निकले हो, और विपदके समय रक्षाकरनेका साहस नहीं है। "

मदनका नाम सुनकर एमाने फिर देखा; अच्छी तरहस देखा। मदन ! देहाती भूत मदन ! हिरणका परिचित है ! यह कौन मदन है ? एमा आँखें फाड़कर देखती रही।

मदनने भी फिर देखा। फिर चार आँखें हुई ! एमाने अपना लाल हुआ मुँह फिर नीचे झुका लिया।

इसी बीचमें साहबने उठकर मदन पर हमला किया। गोलमाल होनेसे, रेलवे पुलिस, टिकट कलेक्टर आदि अनेक लोग आ गये। वे सब मदनको घेरकर मारने लगे। सप्तरथियोंसे घिरे अभिमन्युकी तरह खाली हाथ मदन आत्मरक्षा करने लगा। घनश्याम और हिरण एक कोनेमें सरककर खड़े हुए। रंगिणी एमा को ले उनकी आड़में जा खड़ी हुई। मुग्ध नेत्रोंसे दोनों मदनका विक्रम देखने लगीं।

" आँ ! मदन दादा। डरना नहीं मदन दादा ? मैं आ पहुँचा ! " सहसा माणिक यह कहते हुए पुलिस आदिको धक्का दे मदनकी बगलमें जा पहुंचा।

इत्तिफाकसे गदा भी मदनको खोजता हुआ वहाँ आ पहुँचा। " अरे सर्वनाश मारपीट हो रही है शायद ! दादा ठाकुर ! छोटे दादा ठाकुर ! मारपीटकर एक बारगी खून ही कर दिया ? "

गदा भी दौड़कर मार-पीटमें जा शामिल हुआ। तीन जनोंके एकत्र हो जानेसे मदनका पक्ष दुर्द्धर्ष हो गया। इधर स्टेशनके कर्मचारी, यात्री आदि आकर बाहर जमा हुए। कमरेके भीतर मार-पीट हो रही थी, बाहरसे लोग चिल्ला रहे थे, इससे बड़ी गड़बड़ी मची।

माणिक और गदा जल्दी ही विपक्षियोंको पराजित कर, मदनको साथ ले, सामने जमा हुई जनताको वेगसे छिन्न-विछिन्न करते हुए बाहर आ पहुँचे । स्टेशनके सब लोग "पकड़ो-पकड़ो" चिल्लाते हुए पीछे-पीछे दौड़े । मदनको ले माणिक और गदाभी भागे। भागनेके पहले माणिकने चकित दृष्टिसे एक बार चारों ओर देखा। गौरदास कहाँ हैं? माणिकने भागनेके रास्तेपर ही अमीरखाँ रूपी गौरदासको पीठपर गठ्ठर लादे अपनी ओर ताकते हुए खड़े देखा । प्रत्युत्पन्नमति माणिक समझ गया कि गौरदास उन लोगोंके साथ भाग न सकेंगे । माणिक गौरदासके बगलसे होता हुआ अस्फुट स्वरसे "उसी पेड़के नीचे" कह भागता चला गया ।

तीनों इतने वेगसे दौड़े कि स्टेशनके लोग उनको पकड़ न सके ।

इधर स्टेशनमास्टर आदि उच्च कर्मचारी घटनास्थलपर आ पहुँचे । इतनी देरके बाद गार्ड साहब को होश आया । वह लोगों की भीड़ ठेलकर अन्यत्र सरक गया ।

पुलिसने लोगोंको खदेड़ कर भीड़ कम की । स्टेशनमास्टर आदि कमरेके भीतर पहुँचे । हिरणने आगे बढ़कर रोष और असन्तोष प्रकट करते हुए अङ्गरेज़ीमें घटनाका वर्णन किया और लाञ्छित एमाको दिखा यह इच्छा प्रकट की कि स्टेशन-मास्टर इसके न्यायपूर्वक विचारसे उन लोगोंको सन्तुष्ट कर भद्रलोक एवं स्टेशनके प्रधान कर्मचारी-रूपमें अपना कर्तव्य पालन करें ।

स्टेशनमास्टरने चेहरेको गंभीर बनाकर सब सुना और यह वचन दिया कि वे इस सम्बन्धमें इंसाफ करेंगे । अनन्तर स्टेशनमास्टरने उन लोकोंके नाम, गार्डका नाम, तारीख और घंटा, हिरणके वर्णित घटनाका संक्षिप्त विवरण नोट बुकमें लिख लिया और शिष्ट विनीत वचनोंसे प्रथम श्रेणीके लांच्छित यात्रियोंको सन्तुष्ट कर अपने काम पर चले गये।

एमाको धैर्य्य दे कर कोचपर बिठा हिरण और घनश्यामने अपना-अपना आसन ग्रहण किया । और कुलीको जोरसे पंखा खींचनेको हुक्म दिया । इस असभ्य गार्डके नीच व्यवहारसे जो यह विरक्तिकर घटना हो गई, उससे उन लोगोंकी सुखी देहकी शान्त नसें विशेष संक्षुब्ध, क्लान्त और अवसन्न हो रही थीं । हिरणने होटलके खान-सामेको बुला एमा और रंगिणीके लिए चायके दो प्याले और अपने और घनश्यामके लिए सोडा-मिली ब्राण्डीके लिए हुक्म दिया ।

एमाने सिर लटकाये हुए ही चायका प्याला दूसरी ओर सरका दिया । रंगि-णीने छुआ तक भी नहीं । उसने थोडासा पानी मांगा । पानी आजानेपर उसने एमाके पास पानीका गिलास रख दिया । एमाने दो घूंटे पानी पीया और आंख-मुंह धोया । पुरुष-युगलने सोडा और ब्राण्डी पीकर क्लान्त स्नायुओंको सबल बनाया ।

हिरणने कहा--" कैसा असभ्य आदमी था ! अङ्गरेजों के लिए कलङ्करूप था। उस बेईमानने लेडीको इस तरहसे अपमानित करनेका साहस किया । "

घनश्यामने कहा--" बड़ा अपमान हुआ हिरण ? "

हिरणने उत्तर दिया--"क्या कहूं! नीच आदमी था । उससे लडना शोभा न देता था, फिर भी एमा पासथी, वह डरती, नहीं तो लात मार-मारकर कुत्तेको दूर कर देता । स्टेशनमास्टर बहुत भला आदमी है । उसने हमलोगोसे भले आदमीयों सा ही व्यवहार किया है, वह इसका प्रतिविधान करेगा ही । "

घनश्यामने दीर्घ निश्वास छोड़ा । हिरण कहनेलगा-" कैसा पाजी था ! दिल्ली पहुंचते ही इस घटनाका पूरा विवरण अखबारमें देना होगा । अखबारोंद्वारा आन्दो-लन करना चाहिये । रेलवेके अधिकारियों की दृष्टि इस ओर आकर्षित होनी चाहिए । नहीं तो, भले आदमी इज्जत-आबरूके साथ कहीं आ-जा न सकेंगे ।

घनश्यामने पूछा—" हां हिरण, वह आदमी क्या तुम्हारे गांवका वही मदन था, जिसके साथ एमाका—"

" हां वही मदन था । पूरा असभ्य, गंवार, मूर्ख था " ।

एमा बोल उठी—" असभ्य, मूर्ख या गंवार, चाहे जो हो; कायर नहीं हैं । "

" ठीक है ! मन ही मन तुम्हारे वीरकी बड़ाई करता हूं । "

एमाने उत्तर दिया—" पतिकी वीरतासे किस स्त्रीको गौरव नहीं मिलता ? "

घनश्यामने धमका कर कहा—" खबरदार एमा ! फिर ऐसी बातें मुंहमें न लाना । वह तुम्हारा पति नहीं है । अभागा कहां से आ कूदा ! स्टेशनवाले पकड़ कर जेल भेज दें, तो बच्चा मज़ा चख । "

हिरणने मुस्कुराते हुए कहा—" मिस्टर मयटार ! मैं अन्तःकरणसे आपकी बातोंका समर्थन करता हूं । ओ ! ट्रेन प्लेटफार्मपर आ लगी है ! चलिये, चलें । बेहरा !"

बेहरा आया । लगेजके सम्बन्धमें यथायोग्य आदेश दे घनश्याम और हिरण एमा और रंगिणीके साथ गाड़ीमें जा बैठे । ये लोग दिल्ली जा रहे थे ।

आठवाँ परिच्छेद ।

‘ दादा ठाकुरको करोध आगया है । ’

मदन, माणिक और गदा तीनों स्टेशनसे बाहर हो किसी तंग गलीमें लोगोंकी भीड़में जा पहुंचे । वहां दौड़ना सहज न था । यथासम्भव जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाते हुए वे मोडकी गलियों होकर जाने लगे । कुछ दूर जानेपर उनको मालूम हुआ कि स्टेशनके आदमी अब उनका पीछा नहीं कर रहे हैं । तब वे पहलेकी अपेक्षा धीरे-धीरे चलने लगे । गलीसे एक बडे रास्तेपर पहुंचनेपर माणिकने एक गाड़ीको पुकारा । माणिकके आदेशानुसार गाड़ीवानने गाड़ीको शहरके बाहर ले जाकर खड़ा किया । तीनों जने गाड़ीसे उतर पडे और गाड़ीवानको बिदाकर कुछ दूर पैदल चले । इसके बाद तीनों एक सूनसान खुले छोटे खेतपर खड़े एक बड़के पेड़के नीचे बैठ गये । इसी पेड़के नीचे कल माणिकने गौरदासके साथ वेश बदलकर रात बिताई थी ।

मदन और माणिक अब अपने-अपने भ्रमणका वृतान्त कहने लगे । किन्तु गदा उस गठरीकी बात सोच रहा था, जो स्टेशनपर चोरी हो गई थी । दादा ठाकुरको अब वह क्या जबाब देगा ? न मालूम क्या सोचकर उसने पुकारा—

“ दादा ठाकुर ! ”

“ क्या रे ! ”

“ तुम्हारी गठरी चली गई । ”

“ जाने दे, मारपीटकर भागते भागते जानकी आलगी, फिर गठरी कैसे लाता ? गई, जाने दे ! ”

गदाने मनही मन कहा—“जैसी अवस्थामें पड़ भागे हैं, वैसी अवस्थामें गठरी साथ लाना संभव न था । उसके चोरी हो जानेकी खबर दादा ठाकुरको मालूम नहीं हो सकती ! चलो, बच गया । अब बात गढ़नेकी फिकर नहीं, किन्तु छिः ! दादा ठाकुरसे असल बात छिपा रखुँ ? दादा ठाकुरसे कपट करूँ ? ”

उसने रोती आबाजमें दादा ठाकुरसे गठरीके चोरी जानेकी बात कही ।

मदनने मुस्कुराते हुए कहा—“ किसी तरहसे भी गई, जाने दे । अब फिर ऐसी बेवकूफी न करना । ”

" फिर ! प्राण रहते तो फिर ऐसा होगा नहीं । एक बार बेवकूफ बना, अब फिर बनूँगा ? देहके ऊपरसे चाहे गाड़ीभी निकल जाय, तो भी तुह्मारे सामानके लिए लड़ूँगा नहीं ? । फिर इस तरह कोई उठा ले जायगा ? मजा चखा दूंगा । "

गदाके मनका उद्वेग दूर हुआ । उसने अब निश्चिन्त हो दादा ठाकुर और माणिकके भ्रमण वृत्तान्तोंका वर्णन सुननेकी ओर ध्यान दिया ।

मदन स्टेशनकी घटनाका वर्णन कर रहा था । हिरणकी बात, घनश्यामकी बात, उनकी संगिनी और बंगाली बीबीकी बात, और उनके अपमानकी बात छिड़ी ।

माणिकने पूछा–" वह बीबी कौन है दादा ? तुह्मारी बहू तो नहीं ? "

मदनने गहरी लम्बी सांस छोड़कर कहा–वही थी, शायद माणिक । "

दोनों चुप हो रहे । मदनके चेहरेपर गंभीर विषादकी छाया और माणिकके चेहरेपर क्रोधकी उत्तेजना दिखाई पड़ी । माणिकने कहा–" मदन दादा, वह तुह्मारी स्त्री थी ! इस तरह वह दूसरोंके साथ रास्ते-रास्ते घूमती है, और फिरंगी लोग उसका अपमान करते हैं । "

" क्या करूं माणिक ? "

" ले क्यों नहीं आते ? "

" साहस नहीं होता । "

" तुममें इतना साहस होते हुए भी अपनी स्त्रीको लानेका साहस नहीं होता ।"

मदनने कहा–" मैं इस सम्बन्धमें बड़ा डरपोंक हूं । मैं उसका पति हूं, वह मेरी स्त्री है-उस पर मेरा अधिकार है, किन्तु शायद वह मुझे तुच्छ समझती हो ? "

" तुच्छ समझती या नहीं, पूछा तो है नहीं ? "

पूछूंगा क्या माणिक ? साहब बंगालियों से घृणा करते हैं और साहबी चाल–ढालके बंगाली मुझ जैसे असभ्य गँवार बंगाली से उनकी अपेक्षा भी अधिक घृणा करते हैं । "

माणिकने कहा––" वह यदि मनुष्य होगी तो समझ गई होगी कि तुम हिरण और उसके बाप-जैसे साहबों से बहुत ऊँचे हो । "

गदा बोला––" ऊँचे नहीं ? क्या कहते हो ? मेरे दादा ठाकुरके मुकाबलेमें वे लोग कहाँ ? साथमें एक लड़की को बीबी बना कर लाये थे, उसे एक साहब आकर खींचने–तानने लगा, भाग्य से दादा ठाकुर उधर हीं जा पहुँच, तब उसकी इज्जत बची । दादा ठाकुर उसी बीबीसे तुम डरते हो ? तुम कहो तो दादा ठाकुर, मैं

अभीं जाकर उस बीबीको भी तुम्हारे पाँवों तले हाजिर करूँ, तब मेरा नाम गदा।"

मदनने धमका कर कहा—" चुप रह! बहुत बकबाद न कर।"

गदाने सोचा—" दादा ठाकुर को करोध आ गया है।"

ऐसी दशामें करोध किसे नहीं होता? अपनी व्याही बहूको साहब लोग खींचते तानते है, ठेलाठेली करते हैं। इससे मेरा ही खून खौल उठता है, दादा ठाकुर को तो करोध आना ही चाहिए।"

माणिकने और कुछ न कहा। मदन दादाका मन खराब हो रहा था। इसलिए माणिकने मदनके मनको दूसरी ओर फिरानेकी ग़रज़से घर चलनेकी बात उठाई। यह सलाह तय पाई गई कि नावके द्वारा वे तीनों किसी छोटे स्टेशनपर पहुँचकर गाड़ीमें चढ़ेंगे। किन्तु गौरदासके लिए क्या किया जाय? वे इस वक्त अमीर खाँ काबुली हैं। उनको नावसे साथ लेजाना ठीक न होगा। तब यह तय हुआ कि वे इलाहाबादसे रेलगाड़ी द्वारा जाकर आगे के निर्दिष्ट स्टेशनपर इन्तज़ार करेंगे।

अब अमीरखाँ आ जायँ तो ठीक हो।

माणिकने रास्तेकी ओर देखा। पास ही खाँ साहब पीठ पर कपड़ोंका गट्ठर लादे हुए आते दिखाई पड़े। माणिक उठ गया और उनको आवश्यक उपदेश दे लौट आया और बोला—" चलो, कहीं खा-पीकर नाव ठीक करें।"

" सब उठ खडे हुए। रास्ता चलते-चलते माणिकने पूछा—" अच्छा दादा, मेरे साहबने तो नालिश नहीं की।"

" नहीं, उस सम्बन्धमें डरनेकी कोई बात नहीं। मैंने इधर आनेके पहले शहर जाकर आफिसके क्लार्कोंसे दरियाफ्त किया था। उन लोगोंने कहा कि साहबने नालिश करनेकी बात उठाई ही नहीं। बंशीने बहकानेकी चेष्टा की थी, पर साहबने 'चुप रह, पाजी शुअर' आदि कह गालियाँ दी और कहा—'नालिश न होगी, बाबू भला आदमी है, भेट होगी तो घूंसोंसे लड़ूँगा।'"

" ठीक है,! पर साहब तो बड़ा पाजी है; हम लोगों को फिर गीदड़-कुत्तोंकी तरह क्यों देखता है।"

मदनने कहा-" हम लोग गीदड़-कुत्तों-जैसे ही हैं। इसीसे वह हम लोगोंको गीदड़-कुत्तों-जैसा देखता है। मनुष्य की तरह खड़े होने पर वनका बाघ भी नरम हो जाता है।"

नवाँ परिच्छेद।

सोनेका पींजड़ा।

घनश्याम दिल्ली पहुंचे, और यमुनाके किनारे पुष्पोद्यानवेष्टित किरायेके एक छोटे से बंगलमे ठहरे।

एक दिन वे शामको हिरणके साथ घूमने गये थे। एमा साथ न गई थी। उसके सिरमें दर्द था। रंगिणी एमा को ले बागमें गई। रंगिणीने सोचा—" यहाँ जबसे आई, तभी स दीदी साहबका सिर क्यों दुखा करता है? खासकर शामको घूमने जानेके वक्त।"

सूर्यास्त हो गया है। पश्चिम आकाशमें अब भी लाल आभा दिखाई देती है। चन्द्रोदय हो रहा है। यमुनाका नीला जल शरद् ऋतुकी चांदनीसे धीरे-धीरे उज्ज्वल होता जारहा है। फूलके एक पेड़के नीचे एक बेंचपर एमा अन्यमनस्क भावसे बैठी है। उसकी विषण्ण उदास दृष्टि यमुनाकी ओर है। पास ही फूलके एक पेड़के नीचे रंगिणी खड़ी मुस्कुरा रही है और एमाके चिन्ताभरे स्निग्ध गंभीर चेहरेकी ओर ताक रही है।

" रंगिणी!"

" क्या दीदी साहब?

" अबसे दीदी साहब न कहा करो, दीदी साहब कहना अब नहीं सुहाता।"

" फिर क्या कहा करूँ?"

" केवल दीदी या दीदीमणि जो मनमें आवे कहा करो, दीदी साहब नहीं।"

" बाबा साहब नाराज़ न होंगे।"

एमाने ज़रा चिन्ता की; कहा—" सच है, वेशभूषा, चाल-ढाल जब सब साहबी है, तब ऐसा कहनेमें क्या दोष? अच्छा, दीदी साहबही कहना।"

रंगिणीने कहा—" यदि यह साहबी वेश-भूषा, साहबी चाल-चलन अच्छा न लगता हो तो छोड़ क्यों नहीं देती, दीदी साहब?"

" कौन छुडाये?"

" जो छुड़ा सकता है।"

" वह कहाँ हैं रंगिणी ? आठ नौ सालोंसे बापके घरमें पड़ी हूँ, उन्होंने कभी खबर तक न ली ।"

" तुम्हारी साहबी रहन-सहन है । इससे शायद उनको तुमको ले जानेका साहस नहीं होता ।"

एमाने कहा-" वीरों-जैसे मेरे स्वामी हैं, स्त्रीके पास आनेमें, उसे ले जानेमें, वे डर सकते हैं ?"

रंगिणीने उत्तर दिया—" तुम चाहे जो कहो, दीदी साहब, बाहर चाहे वे कितनी ही वीरता दिखायें, पर स्त्रीके पास आनेमें अनेक वीर डरते हैं । उनको देखनेसे मालूम होता है कि उनका मन ऊंचा है । इसीलिए उनको घृणा भी अधिक है । तुम लोग साहब हो, बडे आदमी हो, तुम्हारी चाल-ढाल ऊंची है और वे देहाती गृहस्थके लड़के हैं । वे इस खयालसे नहीं आते हैं कि शायद तुम लोग उनको तुच्छ न समझो । ऐसा बेजोड व्याह कैसे हुआ, समझमें नहीं आता ।"

एमाने अपने पितामहकी, पितामह द्वारा सम्पादित इस विवाह की, पितामहकी मृत्युके बाद पिताके व्यवहारकी बातें विस्तृत रूपसे रंगिणीसे कहीं ।

रंगिणीने सुनकर कहा —" ये सब क्या काण्ड हो गये ! मैं भी सोचा करती थी कि ऐसा बेजोड़ विवाह कैसे हुआ ! तुमने तो इस तरह खोलकर सब बातें कभी कहीं नहीं । तो उस वक्तके सिवा अपने श्यामसुन्दर मदनमोहनको कभी देखा नहीं ?"

एमाने कहा—" देखना न देखना दोनों बराबर है । वही बचपनमें विवाहके वक्त जरा देखा था । उस दिन स्टेशनपर नाम सुननेके पहले उनको देखकर पहचान भी न सकी थी ।"

" फिर कहना पड़ेगा कि उस दिनका मिलन शुभ था । एक बारगी मन मुट्ठीसे निकल गया ।"

" इस तरहके काम देखनेपर किसका मन मुट्ठीसे निकल नहीं जाता ।"

" हां सखी, मारपीट कर, जबरन मनको छीन ले गये ।"

एमाने विषादपूर्वक मुस्कुराते हुए कहा—"कितनेही लोग दूसरेकी चीजें जबरन ले लेते हैं और वे अपनी चीज न ले सकेंगे ? फिर लिया ही जब, तब सब क्यों न ले लिया रंगिणी ? आधा ले आधा क्यों फेंक गये ? प्राण लिया, पर देहको क्यों न लिया रंगिणी ?"

रंगिणीने मुस्कराकर व्यंग करते हुए कहा—" यह तो मरी देह है, कहो तो मुर्दाफरास बन इसे उठा उनके दरवाजे पर फेंक आऊं ? "

" पांवोंसे ठुकरा कर यदि फेंक दें ? "

" ठुकराकर फेंक देने दो। मरी देहकी गति न होनेसे वह पचेगी ही। फिर यहां व्यर्थ न पचकर वहां उनके पांवोंकी ठोकरसे शुद्ध होकर क्यों न पचे ?"

एमाने न मालूम क्या सोचा; अनन्तर निश्वास छोड़कर कहा—" नहीं, रंगिणी पांवोंसे वे न ठुकरायेंगे। वे ऐसे हीन नहीं मालूम होते।"

" फिर क्या ? चलो मरी देहकी सद्गति कर आयें। "

" नहीं, रंगिणी, इस पापी मुर्देके संस्पर्शसे उनको कलङ्कित करने न जाऊंगी। "

रंगिणीने कहा—" तुह्मारे जाने और न जानेसे क्या होता है ? वे यदि खुद आकर घसीट लेजाना चाहेंगे, तो तुम उनको रोक सकोगी ? "

घसीटकर जिस दिन ले जायेंगे, उसी दिन जाऊंगी। आगे नहीं। "

" नहीं, क्यों दीदी साहब, सच कहती हूं, तुम बीबी हो, इसीसे वे डरके मारे नहीं आते। तुम उनको चाहती हो, मनसे ऐसी श्रद्धा रखती हो, यदि उनको यह बात जराभी मालूम हो जायगी, तो वे निश्चयही आयेंगे। तुमसे भरोसा पानेपर, केवल बाबा साहब क्या, ऐसे दो सौ साहबभी यदि तुमको घेरकर खड़े हो जायें, तो भी वे न डरेंगे। "

" उनको कैसे मालूम होगा ? "

" तुम मालूम कराओ। "

" नहीं, रंगिणी ऐसा न कर सकूंगी छिः ! "

" यह कैसा मान है ? "

" दोष क्या ! वे पति हैं, स्वयं आकर ले नहीं जाते, इससे स्त्रीको क्या मान नहीं हो सकता ? "

" तो मानभी पीछे लगा है ? यह कह रंगिणी कृष्णलीलाकी वृन्दादूतीका भाव धारण कर आगे बढ़ी और बोली—" कहो श्रीमति राधे ! किस अभिमान से इस तरह गर्दन झुकाये बैठी हो ? मैं तुम्हारी वृन्दा सखी हूं। कहो तो, तुम्हारे चितचोर श्याममोहनको अभी पकड़ लाकर तुम्हारे चरणोंके निकट हाजिर करूं ? "

रंगिणीने गाया—

हो जहाँ तुम्हारे मनका चोर, मोर के पंखोंवाला श्याम,
ले आऊँ अभी पकड जो कहो, न लूं तबतक विराम विश्राम !
छिपा नहिं रहने पावेगा, ढूँढ मैं लूँगी ही घनश्याम,
करूँगी हाजिर चरणोंपास, तभी तो सच्चा मेरा नाम।
गामका नाम बता दो बाम अभी जा पहुंचूँ उसी मुकाम,
काम कर आऊँ सुखमा-धाम, मुझे जो दो आधा ईनाम।

एमाने कहा—" रंगिणी, तू मेरे पास रहती है, इसीसे अबतक जीती हूं ! नहीं तो छाती की व्यथा छातीमें ही दबाये मर जाती या पागल हो जाती । "

रंगिणीने कहा—" सचही दीदी साहब, तुम कहो तो एक बार जाऊं। नहीं और कुछ दिन वैष्णवी बन घूम आऊं। मैं यह जाहिर न करूंगी कि तुमने मुझे भेजा है। कौशलसे तुह्मारे मनकी अवस्था उनको सुना आऊंगी । फिरभी, क्या वे न आयेंगे ? "

एमाने कहा–" वे आयेंगे। किन्तु रंगिणी मैं क्यों उनको विपदमें फंसाऊँ। अबतक बापके साथ साहबी ढंगसे रही हूं। मैं अवश्यही जातिभ्रष्ट हो गई हूँ। लोग न मालूम और भी क्या-क्या कहते हों, इसका ठिकाना क्या ? मुझे अपने घर ले जाने पर उन्हें जातिच्युत हो, सिर नीचा कर रहना पड़ेगा। यदि उनको इसकी परवाह न होती, तो वे स्वयं आकर मुझे ले जाते, और मुझको जाना ही पडता। किन्तु स्वयं जाकर उनपर क्यों आफत लाऊँ ? शायद उन्होंने दूसरा व्याहभी कर लिया होगा। क्यों जाकर उनके सुखकी कण्टक बनूं ? "

" फिर क्या जिन्दगीभर इस तरह बैठी आँसू बहाती रहोगी ? "

" इसके लिए तो तैयारहा हूं, रंगिणी। बाबाने रोनेके लिये ही मुझे सोनेकी जंजीरसे बांधकर सोनेके पींजड़ेमें डाल रक्खा है। यदि विधाता कभी मुंह उठाकर देखेंगे, यह पींजडा टूट जायगा और यह जंजीर खुल जायगी तो वनकी सारिका बनके शुकके साथ हंसती, खेलती, गाती घूमेगी, नहीं तो इसी पींजड़ेमें रोते-रोते ही दिन बितानें पड़ेंगे। "

तिसरा खण्ड।

पहला परिच्छेद।

आनन्द-धर्म।

" क्यों सर्वदमन ? अच्छे तो हो ? "

" ओ सुन्दर हो ! खूब, कहाँसे आये दादा ! अच्छे हो ?"

कलकत्तेके फोर्टके मैदानपर मानूमेण्टके सामने शामको एक दिन अकस्मात् सुन्दर और माणिकसे मुलाकात हुई।

माणिकके कुशल-प्रश्नके उत्तरमें सुन्दरने कहा-" हाँ, गुरुजी की कृपा से एक प्रकारसे सब कुशल ही है। "

माणिकने कहा-" हाँ, गुरुजीकी कृपासे अबतक फाँसीमें नहीं लटके, इसे कुशल ही कहना चाहिए। तुम्हारे गुरुजी उन बैरागी बाबाके खूनके प्यासे थे। क्या अब तक तुम उनको परितृप्त नहीं कर सके ? "

" बैरागी बाबा तो तुम्हारे साथ ही यहाँ आये हैं ?

" मेरे साथ ? कहाँ, नहीं तो ! "

" गुरुजी तो कहते थे कि बाबाजी तुम्हारे ही साथ कलकत्ता आये हैं। "

" ओहो, तबतो यह कहना होगा कि तुम बैरागी बाबाजीकी खोजमें प्रयाग छोड़कर कलकत्तेमें उदित हुए हो। तुमने बड़ी भूल की है दादा; बाबाजी इधर नहीं आये हैं। मैंने उनको यह बात अच्छी तरहसे बुझा दी थी कि तुम्हारे गुरुजी उनके रक्तके प्यासे हैं; अनन्तर मैं घर चला गया था। बाबाजी शायद वृन्दा-वनकी ओर होंगे, उन्होने शायद उधर ही जाने कहा था। "

सुन्दरने कहा-" जायें जहाँ उनकी खुशी हो। मुझे क्या पड़ी है ? मैं ने भी अब उस संन्यासी की चेलागिरी छोड दी है। भाई, कौन खून खराबीमें उलझ कर फाँसीपर लटके। "

माणिकने सुन्दरको अच्छी तरहसे देखा । सुन्दरका वेश संन्यासी जैसा है सही, किन्तु उसका वर्तमान वेश सुन्दर और नये ढंगका है । वह ब्रजगिरिके शिष्यरूपमें मोटे कपड़ेका गेरुआ जामा पहनता था, । मोटे कपड़ेका गेरुआ साफ़ा बाँधता था । किन्तु वह इस वक्त गुलाबी रंगकी एक सुन्दर महीन धोती कोंछा मारकर पहने हुए है, गुलाबी रंगका पंजाबी जामा घुटनों तक लटकता है, कमरमें हरे रंगका दुपट्टा बँधा है, सिरपर हरे रंगका साफ़ा है, और कन्धेपर हरे रंगका सुन्दर पश्मी दुशाला ह । यहाँ यह लिख देना उचित है कि आजकल मौसम जाड़ेका है ।

माणिकने कहा—" ठीक है ! तुह्मारे साज–बाजसे तो तुह्मारे वे श्रीचरण आनन्दमय प्रतीत होते हैं ! ये महाराज किस आनन्द–सागरस प्रकट हुए हैं ? किस आनन्द–साधना से, कहाँ, किस तीर्थमें, वह चरणानन्द तुह्में प्राप्त हुआ है ? "

सुन्दरने गंभीर स्वरसे उत्तर दिया—" वे हिमालयमें तपस्या करते थे; हालमें ही वहाँ से अवतीर्ण हुए हैं; वे कुछ दिन कामाख्यामें रहे थे । उन्होंने वहाँ शक्ति–साधना से सिद्धि और यह नया आनन्दमन्त्र प्राप्त किया था । अब उन्होंने यहाँ आकर आनन्दाश्रम स्थापित किया है । "

" अच्छा दादा, इस आनन्दसाधनामें भी तो शोणित-पानानन्द की जरूरत नहीं हुई ? "

" नहीं नहीं ! वह एक अपूर्व शान्तिमय धर्म है । गुरुदेव आश्रममें उसी शान्तिमय आनन्दसुधाका पान कर आनन्द–अवस्थामें ही सर्वदा निमग्न रहते हैं । वे वहाँ कभी-कभी शिष्योंमें आनन्द-धर्मका प्रचार करते हैं । आहा ! गुरुदेव जब आनन्द अवस्थामें गद्गद हो अपने उस आनन्द–धर्मकी व्याख्या करते हैं, तब मुझ अधमकी आँखों में से भी आनन्दाश्रु की धारा नहीं टूटती । वाह, आनन्दमय प्रभो ! दासको अपने आनन्द–सुधामय श्रीचरणोंके सदा निकट रखना । "

" तथास्तु ! दादा देखता हूँ, तुमभी इस बीचमें आनन्द धर्मरससे परिपूर्ण हो गये हो । "

" श्रीचरणप्रसादात् । "

" हाँ, समझ रहा हूँ । श्रीचरणप्रसादका माहात्म्य बहुत बड़ा है । अच्छा, क्या अपने इस आनन्द-धर्मरसका ज़रा अपूर्वास्वाद मुझे भी दे सकते हो ? शायद

तुम्हारे समग्र हृदयमें आनन्दरस छलछला आया है। इस अधमके निरानन्द श्रवणोंमें भी थोड़ासा रस ढाल दो न भैया।"

सुन्दरने कहा—"तुम उस आनन्दको क्या समझो भैया। वह तुम लोगों जैसे विषयी लोगोंके भोग-विलासका क्षणिक, नश्वर आनन्द नहीं है। वह आनन्द देहकी कुलकुण्डलिनी शक्तिका, आत्मा-ह्लादिनी शक्तिका जागरण है। वह आत्माके अविछिन्न आनन्दमय कोषमें विराजती है।"

माणिकने कहा-"इन कठिन कोषोंको ज़रा धीरेसे तोड़कर रस ढाल दो न भैया, कोष कानोंमें कड़कड़ करते हैं, रसका अनुभव नहीं होता।"

"हूँ—अच्छा—वे ही आनन्दमय कोष हैं—"

माणिकने पूछा-"दादा, वे कोष क्या कटहलके कोषोंकी तरह मीठे हैं? सीठेको दूरकर थोड़ा सा दो न दादा?"

सुन्दरने अत्यन्त गंभीर चेहरा बनाकर कहा—"नहीं जी, वे तुम्हारे कटहलके कोष नहीं हैं! तुम लोगोंकी स्थूल बुद्धि है, तुम लोग इस निगूढ़ तत्वको क्या समझो? फिर भी, एक प्रकारसे इस उपमा-द्वारा समझाया जा सकताहै।"

"फिर समझा दो ज़रा, सुन समझ लें। क्या कहूँ दादा, उसका नाम ही सुनते मुँहसे पानी टपक पड़ता है!"

सुन्दरने कहा—"जीभको रोंको, जीभको रोंको! यह भौतिक रसनाका बिषय नहीं है; चिद्गत आध्यात्मिक रसका विषय है।"

"कहो दादा, यथासाध्य इस भौतिक रसको रोंकने की चेष्टा कर रहा हूँ। देखूँ शायद इस आध्यात्मिक रसका अधिकारी हो सकूँ।"

सुन्दरने व्याख्या की—"यही देखो न, कटहल जबतक कच्चा रहता है, तबतक उसके कोषोंमें रस नहीं होता, वह रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-शब्दहीन जड़द्रव जैसा रहता है।"

"क्यों दादा, कटहल कच्चा खानेमें भी तो बुरा नहीं लगता।"

"तेल या घी और मसाला आदिके संयोगसे, आगपर पकाने से अच्छा हो ही जायगा। कच्चा तो अच्छा लगता नहीं। फिर जो कहता हूँ सुनो, जब कटहल पक जाता है, तब कोष सब रससे परिपूर्ण हो जाते हैं।"

" वाह दादा, तुम भी तो भौतिक रसनाके रसको रोक नहीं सके । वह तो निकलकर दर्शन दे ही गया, अंग पवित्रमें भी कुछ पैदा हो ही गया । दादा, कटहलके नामकी ऐसी ही महिमा है । "

यह तो लालानिःसरण है । अधिक देर तक बातें करते रहनेसे लाला निकल पड़ता है । फिर जो कहता हूँ सुनो,–वे कोष जब पक जाते हैं, तब वे स्वर्णचम्पक जैसे रणपूर्ण मालूम होते हैं । वे रससे लबालब भर जाते हैं, उनकी सुगन्ध चारों ओर फैल जाती है, वे छूनेमें कैसे मुलायम और गुदगुदे मालूम होते हैं, और आकृष्ट मक्षिकाओं के गूँजनेसे कैसी मधुर झंकार उठती है । हमारे आनन्द कोष भी उसी तरहके हैं,—और क्या ? समझ गये ? अब रसका अनुभव हुआ ? "

माणिकने कहा—" हाँ, समझ गया । कटहलके कोषों के रसका अनुभव न होगा ? फिर ऐसा कहो कि तुम्हारे गुरुदेव कटहल-लगे कटहलके वृक्ष-सदृश हैं और तुम सब उसी पेड़के नीचे ग्रीष्म, शीत आदि सभी ऋतुओं में, बारह महीने, बैठे उसके रसपूर्ण पके कोष खाते हो । क्यों ऐसा ही न ? "

सुन्दर—" हाँ भैया, उपमा तो तुमने बड़ी सुन्दर दी है । "

माणिक—" अच्छा दादा, बारह महीने कटहलके पके कोष खानेसे तुम्हें बदहज़मी नहीं होती ? "

" हम लोगोंमें ग्रहण करने की शक्ति है, इसीसे गुरुदेव आनन्दरस प्रदान करते हैं । "

मा—" तुम कितना हज़म कर सकते हो दादा ? "

सु–" यही दो–चार बोतल । "

मा–" बोतल ! बोतल किसकी उपमा हुई ? "

सुन्दर कुछ लज्जित सा हुआ । वह बोला–" वह–वह–वही रसाधार–"

" वह शराबकी बोतल तो नहीं है ? वहभी तो देह और मनकी आनन्दशक्तिको जाग्रत करनेकी प्रबल कारण है । तान्त्रिक साधक तो उसे कारण ही कहते हैं ? फिर कामाख्यामें साधना कर तुह्मारे गुरुजीने आनन्दमन्त्र प्राप्त किया है, देहमें कुलकुण्डलिनी शक्तिको भी तुम लोग जाग्रत करना चाहते हो । चाहे अनधिकारी लोग तुम लोगोंके आनन्दरसको मद कहें, किन्तु साधकोंके निकट तो वह सुरा-

नामधारिणी मृतसंजीवनी सुधाही है। इस सुधाकी आहुति पाते ही देहमें आनन्दकी लहरें लहरा देवी कुलकुण्डलिनी नाच उठती हैं।"

सुन्दरने कहा—" हाँ भैया, तुम शायद इस आनन्द–धर्म-साधनाका निगूढ तत्व खूब अच्छी तरहसे समझ गये हो। तुमको सब रहस्य बताया जा सकता है। हम लोगोंकी आनन्दरूप इस देहमें स्थित कुलकुण्डलिनी को जगानेकी कारणस्वरूपिणी, सुरानामधारिणी, सुरजनसेव्य जो सुधा है, उसीको गुरुदेव आनन्दमन्त्रसे पवित्र कर हम लोगोंको पान करनेके लिए देते हैं।"

माणिक—" हा, अब रास्तेपर आये दादा। रत्नही रत्नको परखता है। अधिकारीसे ही अधिकारी धर्म–तत्वके रहस्यकी आलोचना करता है।"

सुन्दर–" तुमने भी क्या इसी कारणका पान करके देहमें देवी कुलकुण्डलिनी की जाग्रतिका अनुभव किया है ?"

माणिक–" मैंने किया नहीं ? कहते क्या हो दादा ? नहीं तो इतना तत्व मिलता कहाँ ? हमारा वंश तान्त्रिक है न ? इस कारणके बिना हम लोगोंको किसी कार्यमें सिद्धि प्राप्त नहीं होती। अच्छा, आश्रममें दो चार आनन्द–भैरवी हैं न ? नहीं तो भैरवी चक्रमें पूर्ण आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता।"

सु–" भैरवी नहीं हैं, देवी कुलकुण्डलिनी की नायिकाएँ हैं। "

मा–" हुँ ? वे कहाँसे आविर्भूत हुई हैं ?"

सु–" गुरुदेवने व्याख्या की है कि मानवदेहके मध्यभागमें, अर्थात् नाभिमूलमें इड़ा–पिङ्गला–सुषुम्ना नाड़ीसे घिरा एक सहस्रदल कमल है। भगवती कुलकुण्डलिनी उसीमें विराजती हैं। उसी कमलके प्रत्येक दलमेंसे एक एक देवकामिनी निकल कर भगवतीकी सेवामें नियुक्त हुई है। वे ही भगवती कुलकुण्डलिनी की नायिकायें हैं। मनुष्योंकी मुक्तिके लिए कभी-कभी भगवती भौतिक देहधारी नारी–रूपमें प्रकट हो भौतिक जगत्में इनको प्रेरित करती हैं न ?"

मा–" तो तुम लोगों की मुक्तिके लिए आश्रममें कई एकों को प्रेरित किया है ?

सु–" आश्रममें नौ नायिकायें हैं; वे सभी जवान और अपूर्व रूपवती हैं;—उनका देव–अंशमें जन्म हुआ है ?"

मा–" आहा ! नहीं तो आनन्द कैसे जमता ? शायद स्वामीजीके शिष्य भी लोग हुआ करते हैं ? "

सु–" हाँ, इस बीचमें अनेक बड़े आदमी उनके शिष्य हुए हैं । रोज़ही रातको आनन्दोत्सव होता है । अनेक भक्त एकत्र होते हैं । "

मा–" आहा ! स्वामीजी मानों स्वयं भगवानके आनन्दअवतार हैं । दारिद्रय दुःखमें फँसे देशमें, वे बहुत अच्छे अवसर पर अवतीर्ण हुए हैं । "

सु–" तुम चाहो जो कहो भैया, किन्तु स्वामीजीकी कृपासे इस पृथिवीपर जल्दी ही स्वर्ग उतर आयेगा । "

मा–" इसलिये नन्दन और अप्सरायें भी आ जायँगी । "

सु–" ये सब देवताके ही भाग्य हैं । देवभोग्य आनन्दकी प्राप्तिसेही मनुष्यकी साधना सिद्ध होती है; देवत्व प्राप्त होता है । "

मा–" फिर दादा तुम लोग तो खूब देवत्व प्राप्त कर रहे हो । अपने इस पुराने अधम साथी को भी साथमें खींच नहीं ले जा सकते ? "

सु–" इसके लिए गुरुदेवका अनुग्रह चाहिए । मेरी मजाल क्या भैया ? अच्छा, तुम रहते कहाँ हो ? गुरुदेवकी अनुमति होने पर तुमको एक दिन वहां ले चलूंगा । "

माणिक–" मैं और कहाँ रहता हूँ ? घरमें ही रहता हूँ । एक कामसे यहाँ आया हूँ, ठहरनेका कोई ठिकाना नहीं है, जहाँ होता है, खा–पी लेता हूँ, जहाँ होता है, रातको सो रहता हूँ । "

सुन्दर–" फिर बाबाजी तुम्हारे ही घरमें हैं ?

मा–" बाबाजी ! ओहो, तुम हो चालाक ! पर चालाकी वृथा है । बाबाजी मेरे साथ नहीं आये हैं, यह तो तुमसे पहले ही कह चुकाहूँ । "

सु–" ओह ! भूल हो गई । ब्रजगिरिसे सुनते रहनेसे मुझे यह धारणा हो गई है कि बाबाजी तुम्हारे ही साथ आये हैं । इससे भूल हो जाती है । "

मा–" अच्छा, तुम्हारे वे ही ब्रजगिरि मरकर फिर सदानन्द स्वामीके रूपमें तो पैदा नहीं हुए हैं ? "

सु–" नहीं–ऐसा होता तो क्या मैं उनको पहचानता नहीं ? "

मा–" स्वामीजी आनन्द-धर्मका प्रचार करनेके लिए कब बाहर निकलते हैं ? "

सु–" वे बाहर निकलते नहीं हैं। बाह्य संसारके कोलाहलसे आनन्दमें विशेष व्याघात पड़ता है। आश्रममें, एकान्त कमरेमें, वे सर्वदा आनन्द-अवस्थामें ही निमग्न रहते हैं। विशेष परीक्षित भक्तोंके सिवा वहाँ सबको जानेका अधिकार नहीं।"

मा–" फिर शायद उन आनन्दमयके श्रीचरणोंका मुझे दर्शन मिलना दुर्घट है?"

सु–" हाँ, कुछ दुर्घट ही है। फिरभी गुरुजीकी अनुमति होनेपर मैं तुम्हें ले जा सकता हूँ। अच्छा, तुम कहाँ करते हो?"

मा–" मेरे ठहरनेका कोई ठिकाना नहीं। मैं आजही घरको रवाना हूँगा। फिर जब आऊँगा, तब आश्रममें ही तुमसे भेट करूँगा। आश्रम कहाँ है?"

सु–" नहीं भैया, भक्तोंके सिवा—"

मा–" अच्छा अच्छा, ढूँढ़ लिया जायगा। बड़े-बड़े आदमी चेले हैं न? फिर शहरमें ज़रूर ही आश्रम मशहूर होगा।"

सु—" फिर अब जाता हूँ भैया, रात हो रही है।"

" हाँ, आनन्द-उत्सवका समय आ गया, जाओ दादा।"

सुन्दरने प्रस्थान किया।

माणिकने मन ही मन हँसकर कहा—" हाँ, तुम चालाक हो सही। तुम्हें बाबाजी का पता जानने की फ़िक्र थी। तुम्हारे वे सदानन्द स्वामी और कोई नहीं—स्वयं व्रजगिरि हैं। ऐसे आनन्द–धर्मका प्रचार और कौन कर सकता है? एकान्तकी इस आनन्द–अवस्थाका कारण और कुछ भी नहीं है, केवल यही है कि कहीं वे पकड़े न जायें। तुम पकड़े गये स्वामी; पर गौरदास बाबाजी तो मर गये। तुम अमीरखाँको पकड़ नहीं पाते।"

माणिक भी डेरेको लौट आया। उसे उसीदिन रातको घर जाना पड़ा। इसलिए वह इस बार आनन्दाश्रमका पता न लगा सका।

माणिक इलाहाबादसे गौरदासको कलकत्ता पहुँचाकर मदनके साथ घर गया था। मदनने पहले से ही उसके लिए जमीन ठीक कर रक्खी थी।

माणिकने उस ज़मीनका पक्का बन्दोबस्त कर और आदमी रख खेती-बाड़ीका प्रबन्ध किया। इसके बार गौरदासके पास कलकत्ते पहुँचा।

माणिककी सलाहके अनुसार गौरदासने बहू बाज़ारमें काबुली फलों की एक दूकान खोली और यह निश्चित हुआ कि वे कभी दूकानमें बैठकर फल बेचेंगे और कभी फल और कपड़े ले फेरी लगायेंगे । दूकानके पीछे दीवारों से घिरे एक छोटेसे मकान में गौरदासने अपना डेरा जमाया ।

ऐसा बन्दोबस्त कर जिस दिन माणिक घरको वापस जानेवाला था, उसी दिन उससे सुन्दरसे भेंट हुई । माणिक गौरदासको सुन्दर की ख़बर दे और उन्हें साव-धान कर घर चला गया ।

दूसरा परिच्छेद ।

सदानंद स्वामी ।

रात प्रायः दोपहर बीत गई है । आनन्दाश्रममें आनन्दोत्सव हो गया है । आनन्दरसपानमें तत्पर हुए भक्तोंमें से कोई कोई उत्सवगृहमें आनन्दशय्यापर पड़े हैं । कोई कोई उद्गरित आनन्दरससे परिलिप्त हो मधुलपेटी मक्खीकी तरह विस्तर पर लोट रहे हैं । कोई नौकरों द्वारा घर लाये गये हैं, और आनन्दरसकी उलटी कर घरको आनन्दसौरभसे परिपूर्ण कर रहे हैं । कोई कोई आश्रमके आँगनकी आनन्द भूमिपर गलबाही डाले आनन्दरसगद्गदकंठसे आनन्द-संगीत गा रहे हैं ।

अजस्र आनन्द-सुधाका वितरण कर और भक्तोंको ऐसी अवस्थामें छोड़कर श्रीमन्महाप्रभु सदानन्द स्वामी सुन्दरके साथ एकान्तके अपने विश्रामगृहको गये । वे खूबसूरत मुलायम चादरसे सुशोभित शय्यापर जा बैठे और दोनों आनन्दमय चरणोंको उन्होंने खूबसूरत मुलायम कम्मलके उष्ण-आनन्दसे रक्षित किया । शय्याके नीचे समग्र कमरेमें गलीचा बिछा था । मुलायम गलीचे पर पैर रख दूसरे मुलायम विस्तर पर शिष्य बैठा ।

सदानन्दके सिरपर आधा पका जटाजूट है, चेहरेपर आधे पके घनेडाढ़ी-मूँछ है, शरीरपर शिष्यके अनुरूपही जरीका कामदार अँगरखा है और गलेमें किसी धनी शिष्यकी दी हुई गजमुक्ताकी माला है । आँखों पर हरी कमानीका हरा चश्मा है ।

जटाजूट सघन है, डाढ़ी मूँछ सघन है, सिरपर आधे ललाट तक एक लम्बा दुपट्टा बँधा है, हरे चश्मेसे स्वामीजीका मुखमण्डल प्रायः दिखाई नहीं देता।

सदानन्द स्वामीने एकान्तके विश्रामगृहमें पहुँचकर विश्राम-शय्यापर बैठनेके बाद दुपट्टा और चश्मा खोलकर रखदिया। सदानन्द और कोई नहीं हैं, हमारे पूर्व परिचित ब्रजगिरि ही हैं। गौरदाससे माणिकके मिल जाने और उनके भागनेका अनुमान कर ब्रजगिरिने सदानन्दमें नामान्तरित और रूपान्तरित हो, आन्दधर्ममें धर्मान्तरित हो और कलकत्तेमें स्थानान्तरित हो इस आनन्दाश्रमकी प्रतिष्ठा की है। भगवती कुलकुण्डलिनीकी कृपासे नायिकायें कलकत्तामें ही मिल गई हैं। ब्रजगिरिके पास जो बहुमूल्य रत्न थे, उनमेंसे कुछ किसी जौहरीकी तिजोरीमें जा पहुँचे हैं और वहाँसे सदानन्दके पास आवश्यक रुपया आया है। आनन्दधर्मकी महिमासे अनेक सम्पन्न आनन्दशिष्य आजकल सदानन्दके आनन्दमय चरणोंपर ढेरके ढेर आनन्द-उपहार भेंट करते हैं। इसलिए सुन्दरके साथ सदानन्द पूर्णानन्दकी बेदीपर प्रतिष्ठित हैं। निरानन्दका कोई कारण नहीं।

किन्तु कारण नहीं है क्या ? फिर सदानन्दकी लाल आँखोंमें आनन्दका उच्छ्वास क्यों नहीं ?

ललाटकी टेढ़ी रेखाओंमें आनन्दका चित्र फिर अङ्कित क्यों नहीं ? आनन्दोत्सवके अन्तमें शिष्यके चेहरेपर भी चिन्ताकी गहरी छाया क्यों झलकती है ?

पाठक ! चलिये, इस एकान्त कमरेके एकान्त कोनेमें, अन्धकारमें खड़े हो, इन दोनोंकी बात चीत सुनें। इससे शायद आनन्दधर्म और आन्नदधर्मके प्रतिष्ठाता इन आनन्दमय गुरुशिष्यके वर्तमान निरानन्दका कारण कुछ समझ सकेंगे।

सदानन्दने चिन्तानिमग्न गंभीर स्वरसे पूछा—"सुन्दर, कुछ पता चला क्या ?"

सुन्दरने उत्तरमें कहा—"गौरदासका तो कुछ पता नहीं चला, पर आज सर्वदमनसे भेंट हुई थी।"

"गौरदास उसके साथ आया नहीं।"

"वह तो कहता था कि गौरदास उसके साथ नहीं आया है।"

सदानन्दने कड़ककर कहा—"वह झूँठ बोलता था। गौरदास उसके साथ ही आया है।"

सुन्दरने विनीत भावसे कहा–" मेराभी यही ख़याल है । "

सदानन्दने कहा—" गौरदास निश्चयही उसके साथ यहाँ आया है । इसमें कोई सन्देहही नहीं हो सकता । सर्वदमन अति चतुर, अति साहसी और अति तेजस्वी है; निश्चय ही गौरदासने उससे सब बातें कही हैं और मुझसे बदला लेनेके लिए उसे अपना सहायक बनाया है । पहले एक शत्रु था, अब दो शत्रु हुए । सुन्दर, मैंने बड़ी भूल की थी । तुमको छोड़कर सर्वदमनको वह काम सौंप-कर मैंने बड़ी मूर्खता की थी । "

सुन्दर चुप रहा । सदानन्दने फिर कहा—" जानते हो सुन्दर, उत्तेजनाके समय वह सहसा आ खड़ा हुआ । उसे उस वक्त देखकर यही खयाल हुआ कि इसके द्वारा ही कार्य सिद्ध होगा । उस वक्त सोचने विचारनेका कुछ भी मौका न मिला । जाने दो, जो भूल हो गई, वह लौटने की नहीं । किन्तु अब उस भूलको सुधारना ही होगा । "

सदानन्दने कुछ देर तक चुपचाप चिन्ता की, अनन्तर सुन्दरके चेहरेकी ओर ताक कर कहा—" सुन्दर ! "

" जो आज्ञा । "

सदानन्दने धीर गंभीर कंठसे कहा—" सुनो सुन्दर, तुम मेरे प्रधान शिष्य हो, मैं सन्यासी हूँ, मेरे सन्तानादि नहीं । प्रधान शिष्यकी हैसियतसे तुम्हीं मेरे आश्रमकी सब सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हो ।

सुन्दरने भक्तिभरे विनीत वचनसे कहा—" यह गुरुदेवकी कृपा है । "

सदानन्दने कहा—" देखो, हम लोगोंने यहाँ सुखसम्पत्तिकी मज़बूत दीवार खड़ी कर दी है । मूर्खलोग जैसा चाहते हैं उनको वैसा ही मन्त्र देकर एकबारगी वशीभूत कर लिया है । यह लोग राजा की तरह सुख भोगकर यशके साथ जिन्दगी बिता सकते हैं । किन्तु सुन्दर, हमारे सब सुख-सम्मानको, तुम्हारे सुख-सम्मानकी आशाको, वह गौरदास एक पलमें नेस्तनाबूद कर सकता है । चतुर और साहसी सर्वदमन उसका सहायक है । "

" तो गुरुदेवकी इस वक्त क्या आज्ञा है ? "

सदानन्दने फिर कहा—" सुनो सुन्दर, गौरदास हमारा बड़ा भयङ्कर शत्रु है । उसी शत्रुताके कारण वह पापी शनिश्चरकी तरह कई सालोंसे मेरे पीछे लगा है ।

मैं अबतक अकेला ही एक प्रकारसे कभी अपरिचित निर्जन प्रदेशमें, कभी दूर दूरके तीर्थोंमें घूमा हूँ। किन्तु अब इस जनपूर्ण कलकत्ता शहरमें मेरे धनी और उच्च पदस्थ शिष्योंके आगे यदि गौरदास मुझे एकबार पकड़ पायेगा तो जानों सुन्दर हमारी यह सजी-सजाई सुखकी अट्टालिका एक पलमें मिट्टीमें मिल जायगी। बनैले पशुओं की तरह हम लोगोंको वनमें जाकर छिपना होगा।"

सुन्दरने जवाब दिया—"गुरुदेव, मैं दास हूँ, आप प्रभु हैं। आपके किसी काममें त्रुटि दिखाना मेरे लिए धृष्टता है। किन्तु क्षमा कीजियेगा, आपने ऐसी अवस्थामें यहाँ आकर और आश्रमकी प्रतिष्ठा कर क्या अच्छा काम किया है? ख़ासकर यह जानते हुए भी कि सर्वदमन और गौरदास यहीं हैं।"

दारुण रोष, द्वेष और प्रतिहिंसाकी उत्तेजनासे विकट रूपसे हँसकर व्रजगिरिने कहा—"जान बूझ करके, इच्छाकरके ही यह आफ़त मैंने सिरपर ली है! क्यों, जानते हो सुन्दर! गौरदासके लगातार पीछा करनेसे, बड़ी बेचैनीसे, उद्विग्न चित्तसे अबतक देश-विदेशोंमें घूमा हूँ। अबतक वह अकेला और निःसहाय था। अब-उसे सर्वदमन जैसा सहायक मिल गया है। इससे मेरी बेचैनी और उद्वेग सैकड़ों गुणा बढ़ गया है। अब मैंने सोचा है कि तुम जैसे पुत्रस्थानीय सहायक की सहा-यतासे इस अशान्ति-उद्वेगका एकबारगी अन्त करूँगा, सुखों के सब कण्टकों को जल्दी ही दूर कर दूँगा, इसीसे कलकत्ते आया हूँ।"

"जो आज्ञा।"

सदानन्द धीरे धीरे अधिक उत्तेजनापूर्वक कहने लगे—"मैं भविष्यमें सुख-सम्मान चाहता हूँ, इसीसे मैंने इस आश्रम की प्रतिष्ठा की है। इसलिए हालमें निरापद रहना होगा। मैं तुम्हारी सहायतासे, पकड़े जानेके पहले ही लाञ्छनाका कारण नष्ट कर दूँगा,—इसी आशासे मैं यहाँ आया हूँ। कर सकोगे सुन्दर?"

गुरुकी इस भीषण उत्तेजनाके संस्पर्शसे सुन्दरने उत्तेजित होकर कहा—"क्यों नहीं कर सकूँगा गुरुदेव? आपके चरणोंसे आपका तेज क्या कुछ भी प्राप्त नहीं किया है? आप निश्चिन्त रहें। सर्वदमन जब यहाँ है, तब गौरदासभी उसके साथ ही है, जैसे होगा उसे खोज निकालूँगा ही। इसके बाद इस छुरीको उसकी छातीमें भोंक कर उसका रक्त आपके चरणों के निकट ला हाज़िर करूँगा।"

सुन्दर छुरी निकालकर दर्पके साथ उठ खड़ा हुआ।

सदानन्द उठकर सुन्दरके सामने खड़े हुए । जलती हुई आँखोंसे प्रज्वलित क्रोध, द्वेष और प्रतिहिंसा की नारकीय अग्नि-शिखा बाहर कर बायाँ हाथ सुन्दरके कंधेपर रख, दाहना हाथ उठा और दाँत पीसकर सदानन्दने कहा "मैं यही चाहता हूँ सुन्दर ! इस छुरीको गौरदासके रक्तसे रँगी देखना चाहता हूँ । गौरदासके गर्म खूनको अँजुलियों में भरकर पीना चाहता हूँ । केवल वही नहीं, सर्वदमन भी मेरा शत्रु है । वह विश्वासहन्ता अकारण शत्रु है, मैं उसके रक्तसे भी अपने हृदय की इस भीम प्रतिहिंसाकी आगको बुझाना चाहता हूँ । रक्तपिपासा की दारुण अग्निसे मेरी देह, मन, प्राण और अन्तःकरण का अन्तर-भाग तक धाँय धाँय धँधक रहा है—यदि पाऊँ सुन्दर, तो अपनी इष्टदेवी इस राक्षसी प्रतिहिंसाकी विपासाको अँजुलियोंसे रक्तका तर्पण दे तृप्त करूँ । देवी भीम-रूपा चामुण्डाकी तरह सुन्दर जीभको लपलपाती हुई, घोर गर्जन करती हुई मेरे हृदयमें अपनी दारुण रक्त-पिपासा बार बार व्यक्त करती है । यदि तुम उसको तृप्तकर सको सुन्दर, तो सर्वस्व तुमको सौंप दूँगा और गर्म रक्त-द्वारा तुम्हें अभि-षिक्तकर, अपने गुरु-शिष्यके सम्बन्धको इहकाल और परकालतक अविच्छिन्न रूपसे जीवित रक्खुँगा, पुत्र कह कर तुम्हें छातीसे लगा लूँगा ।"

भीषण उत्तेजनासे सदानन्दके समग्र शरीरमें आग जलने लगी । उनके माथेमें, छातीमें, नस नसमें और समग्र शरीरमें आगकी ज्वाला दौड़ने लगी । घरभी जलसा उठा—सदानन्द जल्दी जल्दी बाहर आये ।

सुन्दर काँप रहा था । वहभी काँपता हुआ धीरे-धीरे गुरुके पीछे-पीछे चला ।

तीसरा परिच्छेद

चक्रमें फँसे ।

कलकत्ताके श्रीमन्तोंके उच्च समाजमें सदानन्दकी ख्याति फैलने लगी; भक्तोंकी संख्या भी बढ़ने लगी । धीरे-धीरे शूलपाणिके कानोंतक भी सदानन्दके आनन्द-धर्मकी अपूर्व चर्चा पहुँची । उन्होंने सोचा कि इन स्वामीजीके द्वाराही बन्धु घन-श्यामकी संसार-सुख-वंचिता एकमात्र दुहिता एमा का पुनर्विवाह हो सकेगा ।

उनके अत्यन्त अन्तरङ्ग बन्धुओंमें से भी किसी किसीने आनन्द मन्त्रकी दीक्षा ली है। इसलिए शूलपाणिको उस आयन्दमयके चरणोंका दर्शन करनेमें विलम्ब या असुविधा कुछभी न हुई।

ऐसे आनन्दधर्मकी साधनामें उनकी किसी प्रकारकी अरुचि या क्रान्ति न होती थी। जल्दी ही वे आनन्दमयकी चरणसेवाके अधिकारी हो गये। वे अनेक उप-चारोंसे पूजा कर गुरुके कृपापात्रभी हो गये। बहुत आने-जानेसे, रोज नई नई पूजा-दक्षिणाकी व्यवस्था करनेसे वे गुरुका विशेष अनुग्रह प्राप्तकर धन्य बने। और उत्सवमें हँसी खुशीसे शरीक होनेसे, और नित्य नये नये अनुष्ठानोंकी कल्प-नासे भक्तसमाजमें भी उनकी जल्दी ही असाधारण प्रतिपत्ति हो गई। सर्वस्वीकृत व्यक्तित्व और भक्तत्वकी प्रधानताके कारण वे ही क्रमसे एकत्र भक्त-समाजके आनन्दोत्सवके नियामक और परिचालक हो गये।

इसतरह दिन बीतने लगे। एक दिन सदानन्द और शूलपाणिसे बहुतसी बातें हुईं। दूसरे दिन शूलपाणिने घनश्यामका सदानन्दसे परिचय करा दिया। सदानन्दकी विशाल तेजस्वी मूर्तिसे और पाश्चात्य देशकी सामाजिक, राजनीतिक और बहु विषयक आलोचनासे आकृष्ट हो घनश्याम कई दिन वहाँ गये। सदा-नन्दने एक दिन अपने आनन्दधर्मकी ब्याख्याकर, और सुसभ्य पाश्चात्य सामा-जिक प्रथाओंसे इस धर्मकी तुलना कर घनश्यामको आनन्द-उत्सवमें निमं-त्रित किया।

उस दिन नये ढंगसे उत्सवका आयोजन और अनुष्ठान हुआ। एक लम्बे चौड़े कमेरमें, जिसमें कार्पेट बिछी थी, टेबल रक्खा गया। साफ सुन्दर टेबलक्लाथसे वह टेबल सुशोभित हुआ। टेबलके चारों ओर पंक्तिबद्ध चेयर रक्खी गई, टेबलपर गुलदस्ते रक्खे गये, टेबल के सामने और बगलके हिस्सेमें छुरियाँ, काँटे, चम्मच आदि और बीचमें अच्छा पका हुआ सुवासित मांस चांदीकी रकाबियों में रक्खा गया। आनन्दरसपूर्ण लाल काचरसाधार और चांदीके रसपात्र पंक्तिसे रक्खे गये। नायिकाओंने उन्नत, रुचिर, अनुमोदित एवं दर्शनीय वस्त्रोंसे सजधजकर मधुर तानसे आनन्दसंगीत गाया। आधे देशी और आधे विलायती नाज़ अन्दाजोंसे गानेकी ताल ताल पर भाव बता थिरक थिरक कर नाचा।

घनश्यामने देखा, स्वामीजी बड़े उदारचरित है, कुसंस्कारमुक्त और सुरुचि सम्पन्न हैं । उत्सव भी भद्र लोगोंको प्रमोदजनक है, पाश्चात्य सभ्य भाव-सङ्गत है, आपत्तिका कोई कारण नहीं ।

किन्तु धर्म जिसे कहते हैं, उसका गन्ध तक भी उन्होने उसके भीतर न पाया यह उनको धर्मकी एक विकट नकलसी मालूम हुई । धर्मका नाम इसको न दिया जाता तो अच्छा होता । धर्म का नाम देकर यह सुन्दर आमोद मानो वीभत्स बना दिया गया है; दिलमें खटकता सा है ।

जो हो, जल्दी ही घनश्यामकी सब दुबिधा आनन्दरसमें बह गई । वे आनन्दरससे खूब परिपूर्ण हो घर लौटे और मधुर स्वप्न देखते देखते उन्होंने रात बिताई । किन्तु दूसरे दिन सबेरे ही दुष्ट दुविधायें न मालूम कहाँ से झाँकने लगीं । सबेरे इन दुविधाओं के कारण उनका मन चाहे जैसा रहा हो, पर शामको फिर मन उत्सव की ओर खिंच गया । शूलपाणिने भी आकर पुकारा; घनश्यामने कोई आपत्ति न की, बल्कि वे आनन्दपूर्वक ही आनन्दाश्रमको गये । क्रमसे घनश्याम आनन्दाश्रममें अधिक आने-जाने लगे ।

जाड़ा बीत गया है, गरमी पड़ रही है । रास्तोंकी धूल उड़ाकर, संक्रामक व्याधियोंके कीटाणुओंको वहन कर वायु बह रहा है । हैज़ा, प्लेग आदिने दर्शन दिया है; घनश्याम इस वक्त वराहनगरके उपबनभवनमें हैं । एक दिन शामको बागमें घूमते-घूमते शूलपाणिने घनश्यामसे पूछा—

" फिर कहो भैया, वह तुम्हें कैसा जँचता है ? "

" वह क्या ? "

" वही स्वामीजीके आनन्दाश्रमका आनन्द-उत्सव । "

घनश्यामने हँसकर कहा-" यदि केवल आनन्दका ही ख़याल करो तो ठीक है, किन्तु धर्मके ख़यालसे वह धर्मका एक प्रकाण्ड विकट ढोंग है, और कुछ नहीं । तुम्हारा धर्म ही ढोंग है मेरी सदासे यह धारणा है, किन्तु वह तो ढोंगका भी ढोंग है । चाहे जो कहो शूलपाणि, उसका ख़याल आनेसे बहुत घृणा पैदा होती है । "

शूलपाणिने कहा-" तुम्हें तो होगी ही, मुझे ही घृणा हो गई है । उसने ढोंगसे मुझे भी हरा दिया है । किन्तु तुम उसे हाथसे जाने न दो, तुम मुझे अपने कामके लायक एक स्वामी ढूंढ़नेके लिए बहुत तंग करतेथे; देखता हूं, इसके द्वारा इच्छानुसार काम हो सकता है । "

घनश्यामने कहा—" वह रुपया पानेपर नरक का भी चक्कर लगा आ सकता है। "

शूलपाणि सिर हिलाकर बोले—" उसने स्वयंही नरक खड़ा कर रक्खा है, चक्कर लगाने और कहां जायगा ? खैर, मेरी तो इच्छा है कि इस बातकी चर्चा ही छोड़ दी जाय। एक एमा क्या, यूरोपमें तो बड़े लोगोंके घरों में कितनी ही कन्याओं को आजीवन कुमारी रहना पड़ता है। "

घनश्यामने दीर्घ निश्वास छोड़कर कहा-" मैं एमाके सुखके लिए क्या नहीं कर सकता शूलपाणि ? मैं एमाके कारण नरकमें भी रहनेको तैयार हूं, यह तो दो दिनकी बात है। "

शूलपाणि बोले—" फिर जो ठीक समझो भैया, करो । मैं तो हर तरहसे राजी हूँ। "

" धन्यवाद शूलपाणि ! तुह्मारे उपकारको कभी भूल न सकूँगा। हिरणके साथ एमाका व्याहकर तुह्मारे उपकार का कुछ प्रतिशोध कर सकूँगा। "

शूलपाणि बोले—" आः ! ऐसी बात क्यों कहते हो घनश्याम ? तुम हिरणको अपने लड़केकी नाँई प्यार करते हो, और मुझ पर विशेष कृपा करते आ रहे हो।

इसीसे देखो, तुम्हारे ही लिए, वही जेठा लड़का है,-उस दिन बहुत खर्चपात कर उसका समन्वय किया, फिरभी ऐसी आफत में कूदनेसे भी पिछड़ता नहीं। बल्कि तुह्मारे ही अनुग्रहका यह सामान्य प्रतिदान होगा। "

घनश्यामने मुस्कुराकर कहा-" यह सब पीछे समझाबूझा जायगा। अब क्या करूं बतलाओ तो ? मन कभी आगे बढ़ता है, और कभी पीछे मुड़ता है। "

शूलपाणिने गंभीर भावसे इतस्ततः कर कहा—" क्या कहूँ भैया, मेरा मन तो पीछे की ओरको ही अधिक मुड़ता है। फिर भी स्पष्ट कुछ कह नहीं सकता। पीछे कहीं तुम यह खयाल न करो कि मैं समाजसे डरता हूँ। "

शूलपाणिने व्यस्त भावसे कहा—" नहीं नहीं, शूलपाणि, ऐसा खयाल न करो। यह तो करना ही होगा ! मैं आजही स्वामीजीका शिष्य बनूँगा ! कोई अच्छा संन्यासी क्या ऐसा काम करनेको राजी होगा । मेरा काम उस ढोंगीके कारण ही होगा। "

" हाँ, यह तो ठीक है । रुपया देनेपर उससे इच्छानुसार काम कराया जा सकता है। "

घनश्यामके चेहरेपर फिर चिन्ता और दुविधाका भाव दिखाई पड़ा। उन्होंने कहा—"जानते हो शूलपाणि, मैं सीधी सादी बुद्धिसे जिस कामको अच्छा समझता हूँ, वही काम करता हूँ। ढोंग तो मैंने कभी किया नहीं।"

शूलपाणिने उत्तर दिया—"ढोंगमें उलझनेमें तुम्हारा मन दुविधामें क्यों न पड़ेगा ? फिर भी, एक बात जानते हो ? उद्देश जब अच्छा है, तब उपाय चाहे कोई भी हो उसे अच्छा ही कहना चाहिये। समाजकी एक अत्यन्त अनुचित प्रथासे एक निर्दोष बालिका आजीवन कष्ट पायेगी ! समाज इसका प्रतिकार नहीं करता; न्यायविरोधी कानूनमें भी इसका कोई प्रतिविधान नहीं। काँटेसे काँटा निकालना पड़ता है। न्याय यदि अन्यायके हाथ पड़ जाय तो किसी न किसी उपायसे न्यायको मुक्त करना चाहिए। उसे ढोंग कहो, चाहे जो कुछ कहो, ज़रा गहरे उतर कर सोचनेसे मालूम होगा कि हम लोग भला ही करना चाहते हैं; बुरा नहीं। समाजके खयालसे या कानूनके लिहाजसे चाहे जो हो, न्यायके लिहाजसे तुम लोगोंपर कोई दोष नहीं आता। मन जो दुविधा करता है, वह हमारे भ्रान्त संस्कारका दोष है।"

घनश्यामने आनन्द और उत्साहसे शूलपाणिका हाथ पकड़ लिया और कहा—"तुमने बहुत ठीक कहा है शूलपाणि ! पूरे पक्के पण्डितकी तरह तुमने बात कही है। मैं अब दुविधा न करूँगा। भ्रान्त संस्कार है ! हाँ, यह तो भ्रान्त संस्कार ही है ! इसके कारण ऐसे बड़े अन्यायका संशोधन न करूँ ? हाँ, तुमने ठीक कहा है कि उद्देश्य जब अच्छा है, तब उपाय चाहे कोई भी हो, उसे अच्छा ही कहना चाहिए। काँटेसे काटा निकालना पड़ता है।"

शूलपाणिनें फिर कहा—"एक बात और भी है। अपनी लड़कीके कारण तुम जैसे दुःसाहसिक काममें उलझ रहे हो उससे उन सैकड़ों दुःखी लड़कियोंका उपकार होगा, जो समाजकी इस अन्याय प्रथासे दुःखित हो रही हैं। तुम समाज-संस्कारके एक बड़े प्रवर्तक कहे जाकर पूज्य होगे। सहस्रों स्त्रियाँ तुम्हें आशिर्वाद देंगी। घनश्याम, तुम बड़े भाग्यवान हो ! ऐसा सुयोग कितने आदमियोंको मिलता है ?"

"शूलपाणि ! शूलपाणि ?" आनन्दके आवेगमें घनश्यामने शूलपाणिको गले लगा लिया। दोनों पास ही एक बेंचपर बैठ गये।

शूलपाणि—" आज ज़रा सवेरे ही स्वामीजीके आश्रमको जाना होगा। आज राधेश बाबू आदि दीक्षा लेनेवाले हैं। स्वामीजीने मुझसे उस समय उपस्थित रहनेका अनुरोध किया है। तुम भी आज चलोगे क्या ?"

" चलूँगा ही। मैं भी आज दीक्षा ले लूँ न ?"

" यदि इच्छा हो तो लेलो। हानि क्या है ?"

" और अपने मतलबका इशाराभी ज़रा कर आना होगा। व्याह शीघ्र हो जाय तो अच्छा। मन शान्त हो।"

शूलपाणिने पूछा—' उधर ऐमाकी क्या खबर है ? उसका मन तो तैयार हो रहा है न ?"

घनश्यामने कहा—" हिरणके कहनेके अनुसार तो खूब आशा मालूम होती है। वह सर्वदा विमर्ष और अन्यमनस्क दिखाई देती है। यह तो प्रेमका ही लक्षण है—नहीं ? प्रेम करके लड़की आफ़तमें फँस गई है। उसे अपने पुनर्विवाह की संभावना नहीं। हम लोगों ने यहाँ तक काम बना लिया है, यह उसे मालूम नहीं। अकस्मात् जब सब बातें सुनेगी तो आनन्दके मारे एक बारगी नाच उठेगी। क्यों शूलपाणि,—हाः हाः!"

घनश्यामने उसी दिन सदानन्द स्वामीसे आनन्दमन्त्रकी दीक्षा ली।

चौथा परिच्छेद।

हिरणका विस्मय।

इसके बाद कई दिन बीत गये। एक दिन उसी उद्यानके बकुलकुञ्जमें एमा और रंगिणी बैठी हैं।

वसन्तऋतु है। समग्र उद्यानमें, कुंज कुंजमें, कुंजोंके भीतरकी ओर नवपल्लवों से सुशोभित तरुलताओंमें वसन्तके फूल फूल रहे हैं। पत्तोंको डुलाकर, फूलोंको नचाकर मन्द गतिसे वसन्तका वायु वह रहा है। उसी वायुके झोंकेमें, कभी आकाशमें उड़, कभी पेड़की हिलती हुई डालियोंका चक्कर लगा, पंख छिटका, अंगोंमें फूलोंका पराग लगा वसन्तके आकुल विहंग कल कूजनसे उद्यानको मुखरित कर रहे

हैं । वसन्तके भ्रमर मधुर गुंजार करते हुए मुग्ध फूलोंका मधुपान कर रहे हैं । सर्वत्र हँसी-खुशी है, सर्वत्र आनन्द है, सर्वत्र माधुरी है, किन्तु एमाके मुखपर हँसी नहीं, एमाकी आँखोंमें आनन्द नहीं, एमाके हृदयमें मधुरिमाका स्पर्श नहीं । पाठक, एक दिन आपने यमुनाके किनारे, पुष्पोद्यानमें, एमाको देखा है । आज वसन्तके शोभामय इस उधानमें एमाका शरीर वैसाही मुरझाया हुआ है, मुँहमें विषाद-चिन्ताकी वैसी ही छाया है, हास्यहीन नेत्रोंमें वैसी ही शून्य उदास दृष्टि है ।

एमा बकुलके नीचे एक सुन्दर बेंचपर बैठी है । सामने एक ओर एक बकुलके पेड़के सहारे रंगिणी खड़ी है । वह मुस्कुराती हुई एमाके चेहरेकी ओर करुण दृष्टिसे देख रही है ।

बकुलके पेड़पर चिड़िया चहकी । रंगिणीने सुना "पिउ कहाँ, पिउ कहाँ ।"

चिडिया आकाशकी ओर उड़ी ! खुले आकाशमें फुदककर मधुर कंठसे, मधुर तानसे गाती-गाती हवाकी लहरोंके साथ ऊपर उड़ गई ।

रंगिणीने गाया—

सोनेके सखि इस पिंजरेकी
खोले कौन दुअरिया राम !
पाँवनमें पडी बहुत दिननकी,
खोले कौन जँजरिया राम !

एमाने कहा—" चुप, चुप रंगिणी ! तू मुझे पागल बना देगी क्या ?"

" तुम पागल भी हो जाती तो गनीमत समझती । इससेभी तुम्हारा मान जाता । "

एमाने निश्वास छोड़कर कहा—" मुझे मान नहीं है रंगिणी । और यदि हो तो मान रखनेके लिए ही है, अपने अभिमानसे नहीं । मैं कौन चीज हूँ रंगिणी, जो उनसे मान करूँगी । वे देवता हैं और मैं सजाई गई पुतली हूँ । "

रंगिणीने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—" पर प्राण-प्रतिष्ठा होनेसे पुतली भी देवी हो जाती है । कहो तो पुरोहितको बुलवाऊँ । "

" क्रस्तानके घरमें आनेसे उनकी जाति न चली जायगी "

" जानी होगी तो जायगी । ऐसी प्राणवाली देवी पानेसे जाति और मान-कुलका खयाल किसे रहता है ? "

एमाने एक और निश्वास छोड़कर कहा—पुतलीको पुतली ही रहने दो। वह देवताकी, जाति और मान खोकर, देवी नहीं होना चाहती।"

"ऐसा चाहोगी क्यों? लो, वह एक पुतला आता है उसके साथ पुतली खेले।"

हिरण बहुत आनन्दपूर्वक मुस्कुराता हुआ जल्दी जल्दी कदम उठाता आ रहा था एमानें देखकर कहा-" हिरण साहब हैं। चेहरा बहुत खुश है।"

रंगिणीने उत्तर दिया-" वे तो खुश ही हैं। तुम निहायत नाखुश ही हो, फिर किया क्या जाय?"

हिरण जल्दीसे पास आ पहुँचा।

हिरणने मुस्कुराते हुए चुरुट सुरभित दाँतोंकी छटा छिटका कर कहा-" बड़े आनंदकी खबर है एमा, बड़े आनंदकी खबर। मैं आज बड़े आनंदकी खबर लेकर आया हूँ। कहो, मुझे क्या बख्शीस दोगी?"

एमाने विस्मित हो पूछा-" आनंदकी ऐसी क्या खबर सुनाने आये हैं मिष्टर चौधरी?"

हिरण-" तुम अब स्वाधीन हो-अन्ततः शीघ्र स्वाधीन होगी।"

एमा-" स्वाधीन! आपका मतलब मेरी समझमें नहीं आया।"

हिरण-" बचपनमें बच्चोंके खेल सरीखा तुम्हारा व्याह हुआ था-याद नहीं? वह तो बच्चोंके खेलके सिवा और कुछ था नहीं। फिर मालूम नहीं, उसके कारण ये लोग इतना बखेड़ा क्यों करते हैं? उस व्याहके लिए तुम या तुह्मारे बाप कभी न्यायतः उत्तरदायी नहीं हो सकते। अलबत्ता, कानूनका कुछ खटका जरूर है। कानूनके लिहाजसे यदि तुह्मारा व्याह हो भी चुका हो तो भी ऐसी एक चेष्टा की जा रही हैं, जिससे तुम शीघ्र स्वाधीन हो दूसरे व्यक्तिसे व्याह कर सकोगी; एमा! वही दूसरा व्यक्ति—"

विस्मयसे चकराई हुई एमा बीचमें ही बोल उठी—" यह आप क्या कहते हैं मिष्टर चौधरी? ऐसा क्या हो सकता है?"

हिरणने साग्रह उत्तर दिया-" हो सकता है-हो सकता है, होता है-होगा! किन्तु चिन्ता न करो एमा! एक संन्यासी यहाँ आये हैं, जिन्होंने एक खासा आनन्दधर्म निकाला है। खाओ, पिओ और मज़ा उड़ाओ, यही है उनका मूलमंत्र।

मेरे पिता और मिष्टर मयटार दोनों ही उनके शिष्य हो गये हैं । उनसे एक धार्मिक विधि ली जा रही है । उन्होंने शास्त्रमेंसे कोई ऐसा एक नियम ढूंढ निकाला है, जिससें इस प्रकारका व्याह हो सकता है। उधर सामाजिक अनुमोदनके लिए भी चेष्टा की जा रही है । संन्यासीके शिष्यों द्वारा समाज भी संगठित हो रहा है ।"

" यह क्या सच है हिरण बाबू ? बाबा ऐसा करनेको राजी हो गये हैं ? "

" सच है, सब सच है ! क्यों व्यर्थ चिन्ता करती हो, निश्चिन्त रहो । चाहे मैं अपने बाबा को ओल्डफूल ही कहूँ, या जो कहूँ, पर हैं वे बहुत होशियार । उन्होंने इस दरमियानमें सब बातोंका कैसा बन्दोबस्त कर लिया है ! आज वे संन्यासी तुह्मारे घर डिनर खायेंगे । आज ही धर्मकी विधि बताई जायगी । फिर संन्यासी सब बड़े बड़े शिष्यों को एकत्र करेगा और दो चार दिनोंमें ही सामाजिक अनुमोदन ले लिया जायगा । और क्या चाहिए ? धर्मकी विधि और समाजकी विधि प्राप्त हो जानेपर तुह्मारे बाबा यदि अपनी सम्पत्तिका वसीयतनामा लिख दें तो इस विषयमें कोई चिन्ता करने की जरूरत नहीं है कि दूसरा व्याह कानून-जायज है या नहीं ।"

" सच ही ? "

" हाँ हाँ । मैं क्या तुमसे तनाज़नी या मज़ाक करता हूँ, एमा ? कोई डरकी बात नहीं । दो चार दिनोंके भीतर ही तुम स्वाधीन हो जाओगी । "

एमा और न रह सकी । वह पास पड़ी हुई एक बेंचपर काँपती हुइ बैठ गई ।

हिरण एमाके बहुत पास आ गया । उसने बेंचकी पीठपर हाथ रक्खा और एमाकी ओर झुककर सवेग प्रेमपूर्ण दृष्टिसे उसके चेहरेकी ओर ताका; अनन्तर प्रेमगद्गद मृदु स्वरसे कहा—"मैंने क्या बहुत अधिक आग्रह प्रकट किया है, ऐसे बड़े सुखका आघात क्या तुम्हें अधिक पहुँचा है ? किन्तु मुझे माफ करो एमा, आनन्दसे अधीर होकर मैंने—"

एमाने कहा—" मिस्टर चौधरी, कृपाकर मुझे कुछ देरतक अकेली रहने दें । "

हिरण उठ खड़ा हुआ और ज़रा पीछे सरककर बोला—" हाँ, यह तो ठीक ही है, यह तो ठीक ही है ! सहसा ऐसे बड़े आनन्दका आघात पहुँचा है, सह कैसे सकोगी ? अपनेको संभालनेके लिए तुमको थोडी देरतक अकेली रहनाही चाहिए ।"

किन्तु प्रेमकी अधीर आकुलतासे फिर उसी तरह पास आकर, उसी तरह बेंचपर बाहु रखकर, एमाकी ओर झुककर, वैसी ही प्रेमाकुल दृष्टिसे देखकर, वैसेही मृदु गद्गद स्वरसे हिरणने कहा—" किन्तु फिर भी यह सुखकी खबर नहीं है एमा? मैं सुखकी खबर लाया हूँ। मुझे इनाम क्या न दोगी?"

ऐसा कहते कहते हिरण घुटनोंके बल बैठ गया और एमाके दोनों हाथोंको अपने हाथोंसे पकड़कर बोला-एमा, मेरी प्राण एमा, मेरी—"

चोटीली सर्पिणीकी तरह एमा क्रोधपूर्वक उठ खड़ी हुई और बोली—मिष्टर चौधरी! आप क्या पागल हो गये हैं?"

हिरणने वैसे ही बैठे हुए आवेगपूर्वक कहा "पागल नहीं तो क्या हूँ एमा? तुमने मुझे पागल बना दिया है! यह तुम क्या नहीं समझ सकती?" यह कहते-कहते हिरणने फिर एमाका हाथ पकड़ा।

क्रोधपूर्वक हाथको एक झटकेसे छुड़ा और पीछे सरककर एमाने कहा—" मिष्टर चौधरी, किस साहससे आपने मुझसे ऐसी बुरी बातें कही हैं? किस साहससे आप मेरे अंग छूते हैं? क्या आपको मालूम नहीं कि मैं विवाहिता हूँ, मेरा पति वर्त्तमान है। यदि आप मनुष्य हों, यदि शिक्षित होनेसे आपको शिष्टाचारका कुछ भी ख़याल हो, यदि भले आदमियोंकी तरह स्त्रीकी मर्य्यादाकी ओर आपकी ज़रा भी निगाह हो तो कभी इस तरहसे मेरा अपमान न कीजियेगा!"

अत्यन्त विस्मयपूर्वक हिरण उठ खड़ा हुआ। मानों वह कुछ समझ ही नहीं सका। उसने आँखें फाड़कर एमाके चेहरेकी ओर देखा और कहा—" यह क्या! तुम क्या कहती हो? अब तुम एक तरहसे स्वाधीन हो! जिससे इच्छा हो तुम ब्याह कर सकती हो!"

एमाने उत्तरमें कहा —" बाबाकी मति मारी गई है, इसीसे वे अपनी लड़कीको ऐसे कलङ्कमें डुबोना चाहते हैं।"

हिरण—" तुमने गलत समझा है एमा! इसमें कलङ्क क्या? बचपनका वह ब्याह तो बच्चोंका एक खेल था।"

एमा—" आप लोगों की दृष्टिमें वह बच्चोंका खेल हो सकता है, किन्तु मेरे जीवनके लिए वह खेल न था, वह नारी-जीवनका सबसे बड़ा संस्कार था, जिसका अनुसरण मुझे वर्तमान और भविष्यमें करना होगा।"

हिरण—" क्या कहती हो एमा ? क्या तुम सचमुच ही अन्तःकरणसे उस ब्याहका कुछ दायित्व समझती हो ? उस असभ्य देहाती मदनको, जो तुझारे बेहराका भी मुकाबला नहीं कर सकता, तुम अपना पति मान सकती हो ? यह तो एक असम्भव अद्भुत बात है, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती एमा !"

एमाने गर्वके साथ उत्तर दिया—" वे मेरे पति हैं, उनको पति मान कर मनही मन उनकी पूजा करती हूँ । आप उनको बेहरासे भी बदतर समझ सकते हैं,— किन्तु जा मनुष्य हैं वे समझेंगे कि वे मुझसे और आपसे सैकड़ों गुणा बड़े हैं । "

" तुम ऐसी बात कहती हो एमा ? "

" क्यों न कहूँ ? दो सौ बार कहूँगी । मैं सजाई गई पुतली हूँ और वे मनुष्य हैं ।"

हिरण हा-हा कर हँस उठा । कहा—"क्या कहती हो एमा ? पागल हुई हो क्या ? अपने मनमें तुम जितना चाहो, उसे जरूर बड़ा समझ सकती हो । किन्तु फिरभी वह तुम्हारे आगे क्या चीज है ? "

एमाने उत्तर दिया "—मेरे आगे वे केवल मनुष्य नहीं, देवता हैं । मैंने उनको देवता जानकर अपने हृदय-मन्दिरमें प्रतिष्ठित किया है और उनकी पूजा करती आ रही हूँ । यदि कभी उनके चरणोंके निकट ठौर पाऊँगी तो जीवण मरणमें, सुख दुःखमें, मान अपमानमें, उनकी दासी हो उनके निकट रहूँगी । यदि वे ठौर न देंगे तो इसी तरह जिन्दगी भर चुपचाप उनको हृदयमें रख उनकी पूजा करूँगी । किसीकी मजाल नहीं जो उनको त्यागकरा उनको भुला अन्य पुरुषकी ओर मेरी दृष्टि एक बार भी घुमा सके । संन्यासी चाहे जो कहे और शास्त्रमें चाहे कुछ भी लिखाही, मेरे हृदयका दृढ़ बन्धन मरनेपर भी शिथिल न होगा । "

हिरणने कहा—" मालूम नहीं, तुम्हारे पिता तुम्हारी ऐसी बातें सुनकर क्या कहेंगे ? "

" आप उनसे ये सब बातें कह सकते हैं । जरूरत होनेपर मैं भी कहनेमें न शर्माऊँगी । "

एमा जल्दी जल्दी वहाँ से चली गई । रंगिणीने भी अपनी सखी और स्वामिनीका अनुसरण किया ।

विस्मय-स्तम्भित हिरण उनकी ओर ताकता खड़ा रहा ।

कुछ समयके बाद स्वप्नसे जगे मनुष्यकी तरह हिरणने अपने मन ही मन कहा—

" यह क्या हुआ ? मैं समझता था कि एमा आनन्दसे नाच उठेगी । किन्तु हुआ बिलकुल उल्टा। मदनको इतना प्यार करती है! एमा की ऐसी हीन रुचि कैसे हुई ? उच्च शिक्षाका यही फल है, उच्च आदर्शपर जीवन संगठित करनेका यही परिणाम है ? किस बुरी सायतमें, इलाहाबादके रेलवे स्टेशनपर वह घटना घटी थी ! उस घटनाने ही सर्वनाश किया है; एमाका सिर एक बारगी घुमा दिया है।

हिरणका माथा घूम रहा था। क्या करे, कहाँ जाये, कुछ स्थिर न कर सका। वह बागसे बाहर हो गंगाके किनारेपर घूमने लगा। इधर रात होनेको आई। संन्यासीके आगमन और डिनरके निमन्त्रणकी बात वह बिलकुल ही भूल गया।

पाचवाँ परिच्छेद।

शिष्य-गृहमें।

घनश्यामके डिनरके कमरेमें खाद्य-पेय-सामग्रियोंसे सुशोभित टेबलके बगलमें सदानन्द, सुन्दर, घनश्याम और शूलपाणि बैठे हैं। हिरणका आसन खाली है।

सदानन्दने गुरुपदयोग्य गुरुत्व और गाम्भीर्य्यके साथ समयोचित धर्म-व्याख्याका आरम्भ किया।

" वत्सगण! मांसके साथ सुधाकी आहुति पानेसे भगवती कुलकुण्डलिनी बहुत सन्तुष्ट होती है। इससे आत्माको आह्लादित करनेवाली शक्तिभी विशेष रूपसे जाग्रत होती है। मांसोंमेंसे कुक्कुट-मांस ही श्रेष्ठ है। भगवती कुलकुण्डलिनीका देवासन देव कुक्कुटही वहन करते हैं। ये सब नर-कुक्कुट उन्ही देवकुक्कुटोंके ही वंशज हैं। इसलिए कुक्कुटवाहिनी भगवती कुलकुण्डलिनीका तेज इनकी देहमें विशेष रहता है। प्रातःकाल ये कुक्कूट शब्दसे भगवती कुलकुण्डलिनीको ही पुकारते हैं।"

शूलपाणिने भक्तिपूर्वक गुरुसे पूछा—"गुरुदेव, म्लेच्छ-स्पृष्ट होनेसे यह सुधामांस दूषित तो नहीं हुआ ?"

गुरुमुखसे उत्तर मिला-" नहीं वत्स, आनन्दही धर्म और निरानन्द ही अधर्म है। इसलिए म्लेच्छस्पृष्ट इस सुधामांसमें जिनकी अभिरुचि है, उनके लिए इसका सेवन ही आनन्द है, सुतरां धर्म है। कोई भ्रांत संस्कार यदि इनके सेवनमें बाधा

पहुंचा कर निरानन्द पैदा करे तो उसेही अधर्म जानो । आत्मा आनन्दस्वरूप है, वह आनन्दमेंही रहना चाहता है। जिस वक्त इस आनन्दके उपभोग करनेकी इच्छा हो, उस वक्त जानना कि आत्मा अपनी इच्छा प्रकट करती है,—आत्माकी इस इच्छा-को परिपूर्ण करना ही आत्माके मूलाधार परमात्मा हिरण्यगर्भकी इच्छा पूर्ण करना है। इस लिए यथेच्छ आनन्द-उपभोगभी श्रेष्ठ धर्म-साधन है । किन्तु वत्सगण, निर्लिप्त भावसे इस आनन्दका उपभोग करना आवश्यक है । इसमें भौतिकी आसक्ति होनेसेही जानना कि तुम्हारे आनन्दको कलुष स्पर्श करता है । कलुषविहीन शुद्ध आत्मा कलुषित आनन्दसे क्षुब्ध होता है । क्षुब्ध आत्माके तिरस्कारसे हृदयमें अशान्ति मालूम होती है, फिर आनन्दसे भी आत्मा आनान्दित नहीं होता ।"

शूलपाणिने तब टेबलपर सजे हुए आहारादिकी ओर गुरुके धर्मोद्भ्रान्त चित्तको आकर्षित करते हुए कहा—" गुरुदेव, भगवती कुलकुण्डलिनीके आहुतिके पदार्थ बहुत देरसे इस आसनपर रक्खे हैं । धीरे धीरे उनके उष्णतारूप उग्रवीर्यकी समाप्ति होती जाती है । फिर इन पदार्थोंसे भगवती तृप्त न होंगी । और देहमें भी भगवती यज्ञानल प्रज्वलितकर आहुतिकी अपेक्षा करती हैं । "

गुरुका चित्त ज्ञानयोगसे कर्मयोगकी ओर आकृष्ट हुआ । उन्होंने कहा—" ठीक कहते हो वत्स ! आओ, यथाविधि निवेदन कर भगवतीको आहुति दें । "

सदानन्दने आँखें बन्दकर और आनन्दमन्त्र पढकर सब सुसज्जित आनन्दाहुतिको भगवती कुलकुण्डलिनीको समर्पित किया । अनन्तर शिष्योंके साथ देहमें प्रज्वलित हुए यज्ञानलमें मांसके साथ सुधाकी आहुति दे देवीको तृप्त किया । देवीके प्रसादसे यज्ञकुण्डसे आनन्दप्रवाहने निसृत हो सारी देहको लदफद कर दिया ।

इसी समय लड़खड़ाता हुआ हिरण आ खाली कुर्सीपर बैठ गया । उसके विवर्ण मुखसे निकली हुई ' ओः ओः ' की ध्वनिने उसके हृदयकी गंभीर वेदनाको प्रकट किया ।

घनश्यामने पूछा—" क्या हुआ है हिरण ? क्या ?

हिरणने पीछे झुककर और आँखें मूँदकर करुणस्वरसे कहा—" हाय मिस्टर चौधरी ! अब आशा नहीं, सुख नहीं, अब जिन्दगी भर केवल दुःख भोगना है । ईश्वरसे प्रार्थना कीजिये, जिससे मेरी मृत्यु और इस दुःखसे मुक्ति हो ।

ओः ! असह्य है ! मैं पागल हो जाऊँगा । ईश्वरसे प्रार्थना कीजिये, जिससे शीघ्र मेरी मृत्यु हो ।"

"क्या ? क्या हुआ, कहो न ? एमा—"

"एमा—एमा !—ओः !-आः ! एमाने बड़ी निठुरताके साथ इंकार कर दिया है ।"

"इंकार ! यह क्या ? क्या तुमने एमासे विवाहका प्रस्ताव किया था ?"

दुःखके नखरे ख़तमकर हिरण सीधा बैठ गया। वह ज़रा आगे की ओर झुककर और निम्न बाहु टेबलपर रखकर बोला—"हाँ, मैंने विवाह का ही प्रस्ताव किया था । किन्तु उसने बड़ी निठुराईके साथ इंकार कर दिया । वह मदनको बहुत चाहती है । वह ठीक डेसडिमोनाकी तरह अपने उस ओथेलोके लिए पागल है ।"

समांस सुधाहुति-प्राप्ता भगवती कुलकुण्डलिनीके प्रसादसे शूलपाणिकी देहमें उछलता हुआ आनन्दस्रोत मानों सुमेरु शीतल तुषारपातसे जम गया। विवर्ण और सूखे चेहेरपर शीतल स्वेदबिन्दु प्रकट होने लगे । इधर घनश्यामकी देहमें आनन्दकी उष्णतासे क्रोधकी उष्णताका संयोग हुआ और इससे उनकी देहमें आगकी लपटें लहराने लगीं । उनकी आँखें और चेहरा लाल अंगारे जैसा लालहो गया । उन्होंने टेबलपर ज़ोरसे हाथ पटककर कहा—"डैम इट ! मदनको चाहती है ! ऐसा हो नहीं सकता !"

हिरणने कहा—"हो सकता हो या न हो सकता हो, किन्तु बात यही है । वह उसके लिए पागल है । वह उससे बड़ा किसीको नहीं समझती । ओः गाड गाड ! मेरी सारी जिन्दगी वैसे ही खाक हुई !"

सदानन्दने पूछा—"वत्स घनश्याम, तुह्मारी लड़की क्या हिरणसे व्याह करने के लिए राज़ी नहीं है ?"

घनश्यामने फिर टेबलपर जोरसे मुष्टिप्रहार कर कहा—"राजी उसे होना ही पड़ेगा। महाराज, आप धर्मकी विधि मुझे दें, मैं आज ही उसे व्याह दूँगा ।"

सदानन्दने कहा—"अधीर न हो वत्स, मैंने विधि तो एक प्रकारसे दे ही दी है। किन्तु आज विवाह कैसे हो सकता है ? हमारे शिष्योंका अनुमोदन भी तो आवश्यक है। नहीं तो कोई ईर्ष्यावश विरोधी भी हो सकते हैं। फिर शास्त्रके अनुसार मदनका पातित्यविधान भी अब तक हुआ नहीं है । उसको पतित किये बिना

सामाजिक अनुमोदन प्राप्त करनाभी कठिन होगा। तुम चिन्ता न करो। तुह्मारी लड़की सम्पूर्ण रूपसे तुह्मारे ही अधिकारमें है। जो स्त्री अपने अभिभावककी बातें नहीं मानती, उसे बलपूर्वक वशीभूत करना पड़ता है। ”

गुरुके वचनोंसे शूलपाणि बहुत कुछ शान्त हो कर बोले—‘ मैं मदनको सहजमें ही जातिच्युत और पतित कर सकूँगा । गाँवकी पण्डितमण्डली मुझपर विशेष स्नेह रखती है। मदनने ब्राह्मणवृत्ति छोड़कर वैश्यवृत्ति ग्रहण की है, इससे ब्राह्मणलोग भी उससे असन्तुष्ट हैं । गुरुदेवकी अनुमति से मैं आज ही गाँवको जा सकता हूँ। दो तीन दिनों के भीतर ही मदनको पतित कर श्रीचरणोंके निकट उपस्थित हूँगा।”

घनश्यामने कहा—“ जाओ शूलपाणि, जाओ, तुम आजही देशको जाओ। और उसका श्राद्धकर जल्दीसे आ जाओ। मदनको चाहती है! व्याह न करेगी! गरदन पकड़ कर मैं अभागिनीको व्याह दूँगा। कड़े पहरेमें रक्खूँगा, जिससे भाग न सके और कोई खराब चाल न चलने पाये। ”

सदानन्दने कहा-“और मैं भी इधर एक यज्ञका अनुष्ठान करता हूँ, जिससे घन-श्यामकी लड़कीकी यह मदनाभिमुखी मनकी गति क्षीण और दुर्बल हो हिरणा-भिमुखी हो। ”

घनश्यामने कहा- “आप ऐसा कर सकते हैं। मुझे क्या देना होगा ? ”

सदानन्दने उत्तर दिया-“ एक बित्ता भर लम्बी हिरण और एमाकी स्वर्ण मूर्त्तियाँ और एक हाथ लम्बी मदनकी चाँदीकी मूर्त्ति आवश्यक होगी । इनके अतिरिक्त तीन बार के षोडशोपचार यज्ञोपकरण और दक्षिणामें जो कुछ लगे।”

“ अच्छा आप एक फर्द बना लीजिये, जो कुछ लगेगा, दिया जायगा। आप ही सब चीजोंका बन्दोबस्त कर लीजियेगा, मैं केवल रुपये दे दूँगा। ”

सदानन्दने कहा-“अच्छा वत्स! फिर अब बिदा होता हूँ। सुन्दर चल। पर देखना वत्स, लड़कीको सावधान पहरेदारोंके पहरेमें रखना। स्त्री-बुद्धि प्रलयङ्करी होती है।”

सुन्दर और सदानन्द उठे। शूलपाणि और घनश्याम भी उठकर उनके साथ साथ चले।

हिरणने आनन्दरसके २।३ पात्र खालीकर चित्तका अप्रसाद दूर किया। वह मुँहमें चुरुट दबा, आंखें बन्दकर कुछ देरतक चिन्तामें डूबा रहा। अनन्तर ज़रा मुस्कुरा कर आनन्द-रसकी क्रियाके प्रभावसे कुछ रुँधे गलेसे अपने मन ही मन बोला—

"बूढ़े बैल! यज्ञ करेंगे! यज्ञ करके एमाका प्रेम मुझे देंगे। मेरे—जो चाहें करें। मैं एमाको चाहता हूँ, उसकी सम्पत्तिको चाहता हूँ! मुझे उसकी सम्पत्तिसे गरज़ है,—ये लोग जो चाहें करें,—मुझे क्या पडी है! आ!—"

हिरण आँखें बन्द किये हुए फिर कुर्सीपर गिर पड़ा।

दरवाजेकी आड़में खडी रंगिणी कान दिये सब सुन रही थी। वह जल्दी जल्दी एमाके कमरेकी ओर गई।

छठा परिच्छेद।

अब मानकी ज़रूरत नहीं।

"अब मानकी ज़रूरत नहीं है दीदी साहब! यदि उनका मान रखनेके लिए तुमने अबतक मान किया था, तो आज मान छोड़कर उनका मान रक्खो।"

एमाके सोनेके कमरेमें रंगिणी अति व्याकुल स्वरसे यह बात कह रही थी।

एमाने कहा—"रंगिणी, बाबा सचही ऐसे बदल गये! वे साहब होकर अन्तमें संन्यासीके ढोंगमें जा फँसे।"

रंगिणीने कहा—"वह संन्यासी पक्का ढोंगी है। उसकी बातें सुननेसे घृणा होती है। और मैंने आज जो कुछ देखा है, दीदी साहब, उससे समझ गई हूँ कि संन्यासी साधारण मनुष्य नहीं है। उसके लिए कुछ भी असाध्य नहीं है। ऐसे बड़े दुःखके समय तुमको सब बातें सुनाकर कष्ट न देती, किन्तु बिना कहे रहा नहीं जाता।"

"क्या बात है रंगिणी? और क्या देखा?"

रंगिणीने कहा—"दीदी साहब, तुमने मेरे साथ जैसी नेकी की है, वह अवर्णनीय है। मैं असहाय हो, रास्ते-रास्ते भीख माँगती फिरती थी, कितनी ही विपदमें फँस सकती थी, तुमने आश्रय दे मेरी रक्षाकी है।"

"वह पुराना पचड़ा क्यों छेडती हो रंगिणी?"

"तुह्मारे लिए पुराना है, किन्तु मेरे लिए नया ही है दीदी साहब! वह आज और भी नया हो गया है। तुह्में मालूम है दीदी साहब, मेरा जो वैष्णव था, वह

मुझे रास्तेपर छोड़कर भाग गया था । उस समयसे मुझे उस पर एक प्रकारकी घृणा और क्रोध हो गया था । किन्तु दीदी साहब तुह्मारे पास रहनेसे, स्वामीपर तुह्मारा ऐसा आकुल प्राणाकृष्टभाव देखकर मेरा मन मानों बदल गया है । वह आदमी यद्यपि अच्छा नहीं है, किन्तु अब उस पर मुझे क्रोध नहीं है, घृणा नहीं है; पहले ही की तरह मानों ममता लौट आई है । दीदी साहब ! सच ही तुम वैकुण्ठकी लक्ष्मी हो, तुमने मुझे नरकसे वैकुण्ठमें खींच लिया है ! "

एमाने कहा—" रंगिणी ! तेरी बातें सुननेसे आज मुझे बहुत खुशी हुई है । मैं बड़ी स्वार्थपर हूँ रंगिणी । मैंने अपनी ही बातें तुझे सुनाई हैं, अपने ही दुःखसे तुझे रुलाया है, किन्तु तेरे मनकी बातें कभी पूछी नहीं । "

रंगिणीने आँचलसे आँखें पोंछी । एमाने बहनकी तरह प्रेमसे रंगिणीका बाहु पकड़ उसकी आँखोंके आँसू पोंछ दिये और पूछा—" क्या बात है ? क्या हुआ है क्यों इतनी व्यथा पहुँची है ? "

" आज उसे देखा है दीदी साहब, उसे देखकर सुखी नहीं हुई, दुःखी ही हुई हूँ । और मैंने समझा है कि मैं उसके पाँवों की दासी हूँ । किन्तु दीदी साहब, उन पाँवोंमें फूल नहीं, काँटे हैं, वे ही हृदयमें बिध गये हैं । वे पाँव देवताके नहीं, दानवके हैं, छातीमें उन्होंने बड़ी व्यथा पहुँचाई है । "

एमाकी छातीपर मुँह रख रंगिणी बहुत रोई ।

एमाने रंगिणीको छातीसे लगाकर कहा—" रंगिणी ! रंगिणी ! वह कौन है ? तूने उसे कहाँ देखा ? वही संन्यासी—"

" उसी संन्यासीका वह चेला है । "

" उसी संन्यासीका चेला है । "

रंगिणी उठ बैठी । वह अपनेको सँभालकर और आँखें पोंछकर बोली " हाँ दीदी साहब, उसी संन्यासीका वह चेला है । मालूम होता है, विश्वासी प्रधान चेल ही है । कारण केवल वही संन्यासीके साथ आया था, और कोई उसके साथमें न था । वह बड़ा दुष्ट मनुष्य है दीदी साहब । संन्यासी भी साधारण नहीं हैं, नहीं तो यह जोड़ा न बँधता । "

" तुमने उससे एक बार भेट क्यों नहीं की ? "

" भेंट करनेसे क्या होगा दीदी साहब ? वह क्या मुझे पहचान कर स्वीकार

"बूढ़े बैल ! यज्ञ करेंगे ! यज्ञ करके एमाका प्रेम मुझे देंगे । मेरे—जो चाहें करें । मैं एमाको चाहता हूँ, उसकी सम्पत्तिको चाहता हूँ ! मुझे उसकी सम्पत्तिसे गरज़ है,–ये लोग जो चाहें करें,—मुझे क्या पडी है ! आ !—"

हिरण आँखें बन्द किये हुए फिर कुर्सीपर गिर पड़ा।

दरवाजेकी आड़में खडी रंगिणी कान दिये सब सुन रही थी । वह जल्दी जल्दी एमाके कमरेकी ओर गई ।

छठा परिच्छेद ।

अब मानकी ज़रूरत नहीं ।

" अब मानकी ज़रूरत नहीं है दीदी साहब ! यदि उनका मान रखनेके लिए तुमने अबतक मान किया था, तो आज मान छोड़कर उनका मान रक्खो ।"

एमाके सोनेके कमरेमें रंगिणी अति व्याकुल स्वरसे यह बात कह रही थी ।

एमाने कहा—" रंगिणी, बाबा सचही ऐसे बदल गये ! वे साहब होकर अन्तमें संन्यासीके ढोंगमें जा फँसे ।"

रंगिणीने कहा—" वह संन्यासी पक्का ढोंगी है । उसकी बातें सुननेसे घृणा होती है । और मैंने आज जो कुछ देखा है, दीदी साहब, उससे समझ गई हूँ कि संन्यासी साधारण मनुष्य नहीं है । उसके लिए कुछ भी असाध्य नहीं है । ऐसे बड़े दुःखके समय तुमको सब बातें सुनाकर कष्ट न देती, किन्तु बिना कहे रहा नहीं जाता ।"

" क्या बात है रंगिणी ? और क्या देखा ?"

रंगिणीने कहा—" दीदी साहब, तुमने मेरे साथ जैसी नेकी की है, वह अवर्णनीय है । मैं असहाय हो, रास्ते-रास्ते भीख माँगती फिरती थी, कितनी ही विपदमें फँस सकती थी, तुमने आश्रय दे मेरी रक्षाकी है।"

" वह पुराना पचड़ा क्यों छेडती हो रंगिणी ?"

" तुह्मारे लिए पुराना है, किन्तु मेरे लिए नया ही है दीदी साहब ! वह आज और भी नया हो गया है । तुह्में मालूम है दीदी साहब, मेरा जो वैष्णव था, वह

मुझे रास्तेपर छोड़कर भाग गया था। उस समयसे मुझे उस पर एक प्रकारकी घृणा और क्रोध हो गया था। किन्तु दीदी साहब तुम्हारे पास रहनेसे, स्वामीपर तुम्हारा ऐसा आकुल प्राणाकृष्टभाव देखकर मेरा मन मानों बदल गया है। वह आदमी यद्यपि अच्छा नहीं है, किन्तु अब उस पर मुझे क्रोध नहीं है, घृणा नहीं है; पहले ही की तरह मानों ममता लौट आई है। दीदी साहब! सच ही तुम वैकुण्ठकी लक्ष्मी हो, तुमने मुझे नरकसे वैकुण्ठमें खींच लिया है!"

एमाने कहा—"रंगिणी! तेरी बातें सुननेसे आज मुझे बहुत खुशी हुई है। मैं बड़ी स्वार्थपर हूँ रंगिणी। मैंने अपनी ही बातें तुझे सुनाई हैं, अपने ही दुःखसे तुझे रुलाया है, किन्तु तेरे मनकी बातें कभी पूछी नहीं।"

रंगिणीने आँचलसे आँखें पोंछी। एमाने बहनकी तरह प्रेमसे रंगिणीका बाहु पकड़ उसकी आँखोंके आँसू पोंछ दिये और पूछा—"क्या बात है? क्या हुआ है क्यों इतनी व्यथा पहुँची है?"

"आज उसे देखा है दीदी साहब, उसे देखकर सुखी नहीं हुई, दुःखी ही हुई हूँ। और मैंने समझा है कि मैं उसके पाँवों की दासी हूँ। किन्तु दीदी साहब, उन पाँवोंमें फूल नहीं, काँटे हैं, वे ही हृदयमें बिंध गये हैं। वे पाँव देवताके नहीं, दानवके हैं, छातीमें उन्होंने बड़ी व्यथा पहुँचाई है।"

एमाकी छातीपर मुँह रख रंगिणी बहुत रोई।

एमाने रंगिणीको छातीसे लगाकर कहा—"रंगिणी! रंगिणी! वह कौन है? तूने उसे कहाँ देखा? वही संन्यासी—"

"उसी संन्यासीका वह चेला है।"

"उसी संन्यासीका चेला है।"

रंगिणी उठ बैठी। वह अपनेको सँभालकर और आँखें पोंछकर बोली "हाँ दीदी साहब, उसी संन्यासीका वह चेला है। मालूम होता है, विश्वासी प्रधान चेल ही है। कारण केवल वही संन्यासीके साथ आया था, और कोई उसके साथमें न था। वह बड़ा दुष्ट मनुष्य है दीदी साहब। संन्यासी भी साधारण नहीं हैं, नहीं तो यह जोड़ा न बँधता।"

"तुमने उससे एक बार भेट क्यों नहीं की?"

"भेंट करनेसे क्या होगा दीदी साहब? वह क्या मुझे पहचान कर स्वीकार

"बूढ़े बैल ! यज्ञ करेंगे ! यज्ञ करके एमाका प्रेम मुझे देंगे । मेरे—जो चाहें करें। मैं एमाको चाहता हूँ, उसकी सम्पत्तिको चाहता हूँ ! मुझे उसकी सम्पत्तिसे गरज़ है,-ये लोग जो चाहें करें,—मुझे क्या पडी है ! आ !—"

हिरण आँखें बन्द किये हुए फिर कुर्सीपर गिर पड़ा।

दरवाजेकी आड़में खडी रंगिणी कान दिये सब सुन रही थी । वह जल्दी जल्दी एमाके कमरेकी ओर गई ।

छठा परिच्छेद ।

अब मानकी ज़रूरत नहीं ।

" अब मानकी ज़रूरत नहीं है दीदी साहब ! यदि उनका मान रखनेके लिए तुमने अबतक मान किया था, तो आज मान छोड़कर उनका मान रक्खो ।"

एमाके सोनेके कमरेमें रंगिणी अति व्याकुल स्वरसे यह बात कह रही थी ।

एमाने कहा—" रंगिणी, बाबा सचही ऐसे बदल गये ! वे साहब होकर अन्तमें संन्यासीके ढोंगमें जा फँसे ।"

रंगिणीने कहा—" वह संन्यासी पक्का ढोंगी है । उसकी बातें सुननेसे घृणा होती है । और मैंने आज जो कुछ देखा है, दीदी साहब, उससे समझ गई हूँ कि संन्यासी साधारण मनुष्य नहीं है । उसके लिए कुछ भी असाध्य नहीं है । ऐसे बड़े दुःखके समय तुमको सब बातें सुनाकर कष्ट न देती, किन्तु बिना कहे रहा नहीं जाता ।"

" क्या बात है रंगिणी ? और क्या देखा ?"

रंगिणीने कहा—" दीदी साहब, तुमने मेरे साथ जैसी नेकी की है, वह अवर्णनीय है । मैं असहाय हो, रास्ते-रास्ते भीख माँगती फिरती थी, कितनी ही विपदमें फँस सकती थी, तुमने आश्रय दे मेरी रक्षाकी है ।"

" वह पुराना पचड़ा क्यों छेडती हो रंगिणी ?"

" तुम्हारे लिए पुराना है, किन्तु मेरे लिए नया ही है दीदी साहब ! वह आज और भी नया हो गया है । तुम्हें मालूम है दीदी साहब, मेरा जो वैष्णव था, वह

मुझे रास्तेपर छोड़कर भाग गया था। उस समयसे मुझे उस पर एक प्रकारकी घृणा और क्रोध हो गया था। किन्तु दीदी साहब तुझारे पास रहनेसे, स्वामीपर तुझारा ऐसा आकुल प्राणाकृष्टभाव देखकर मेरा मन मानों बदल गया है। वह आदमी यद्यपि अच्छा नहीं है, किन्तु अब उस पर मुझे क्रोध नहीं है, घृणा नहीं है; पहले ही की तरह मानों ममता लौट आई है। दीदी साहब! सच ही तुम वैकुण्ठकी लक्ष्मी हो, तुमने मुझे नरकसे वैकुण्ठमें खींच लिया है!"

एमाने कहा—"रंगिणी! तेरी बातें सुननेसे आज मुझे बहुत खुशी हुई है। मैं बड़ी स्वार्थपर हूँ रंगिणी। मैंने अपनी ही बातें तुझे सुनाई हैं, अपने ही दुःखसे तुझे रुलाया है, किन्तु तेरे मनकी बातें कभी पूछी नहीं।"

रंगिणीने आँचलसे आँखें पोंछी। एमाने बहनकी तरह प्रेमसे रंगिणीका बाहु पकड़ उसकी आँखोंके आँसू पोंछ दिये और पूछा—"क्या बात है? क्या हुआ है क्यों इतनी व्यथा पहुँची है?"

"आज उसे देखा है दीदी साहब, उसे देखकर सुखी नहीं हुई, दुःखी ही हुई हूँ। और मैंने समझा है कि मैं उसके पाँवों की दासी हूँ। किन्तु दीदी साहब, उन पाँवोंमें फूल नहीं, काँटे हैं, वे ही हृदयमें बिध गये हैं। वे पाँव देवताके नहीं, दानवके हैं, छातीमें उन्होंने बड़ी व्यथा पहुँचाई है।"

एमाकी छातीपर मुँह रख रंगिणी बहुत रोई।

एमाने रंगिणीको छातीसे लगाकर कहा—"रंगिणी! रंगिणी! वह कौन है? तूने उसे कहाँ देखा? वही संन्यासी—"

"उसी संन्यासीका वह चेला है।"

"उसी संन्यासीका चेला है।"

रंगिणी उठ बैठी। वह अपनेको सँभालकर और आँखें पोंछकर बोली "हाँ दीदी साहब, उसी संन्यासीका वह चेला है। मालूम होता है, विश्वासी प्रधान चेला ही है। कारण केवल वही संन्यासीके साथ आया था, और कोई उसके साथमें न था। वह बड़ा दुष्ट मनुष्य है दीदी साहब। संन्यासी भी साधारण नहीं हैं, नहीं तो यह जोड़ा न बँधता।"

"तुमने उससे एक बार भेंट क्यों नहीं की?"

"भेंट करनेसे क्या होगा दीदी साहब? वह क्या मुझे पहचान कर स्वीकार

करेगा? व्यर्थ ही मुझे और लोगोंके सामने भी लज्जित होना पड़ेगा। जाने दो, इस चर्चाको छोडो, इसकी जरूरत नहीं। अब तुमपर आनेवाली आफत का कुछ उपाय करना होगा। सब मिलकर यदि जबर्दस्ती करेंगे तो तुम अकेली औरत क्या कर सकोगी?"

एमाने उत्तर दिया—"मैं अकेली औरत क्या करूँगी? अकेली औरतके धर्म-बलके, पतिप्रेमके बलके, आगे ये सब ठहर सकते हैं रंगिणी? तू भी तो अकेली रास्ते-रास्ते भीख माँगती फिरती थी, कितने लोगोंने कितने अत्याचार करनेकी चेष्टा की, पर क्या तू अपनी रक्षा न कर सकी थी?"

"पर ऐसी बन्दिश बाँधकर कोई जबर्दस्ती करता तो क्या बच सकती थी? मरनेके सिवा तब और रास्ता न रहता। ऐसे समयके लिए झोलीमें छुरी और विष रखती थी।"

"यह रास्ता क्या मेरे लिए नहीं है रंगिणी?"

रंगिणीने कहा—"पर दीदी साहब, ऐसे पतिको छोड़कर मरनेका रास्ता क्यों खोजती हो? क्या उनकी अपेक्षा मृत्यु तुम्हें अधिक पसन्द है?"

"उनको पाने पर क्या मरना चाहती हूँ रंगिणी? स्वर्गमें जानेपर भी नहीं।"

"तब उनको ही चाहो, चाहनेसे पाओगी। अब भी समय है दीदी साहब। उनको खबर दो। फिर खूनखराबी होनेपर भी कुछ न होगा।"

"रंगिणी!"

"क्या दीदी साहब?"

"एक बात है!"

"उन्होंने यदि दूसरा व्याह कर लिया हो?"

"तो सौतके ही घर रहना।"

"छिः!"

रंगिणी—"अपना कर्मफल सबको भोगना पड़ता है, सो तुम भी भोगना। तुम उनको दोष नहीं दे सकतीं, पर यदि तुम्हारे देवताकी कोई पूजा करता है, तो क्या तुम अपने देवताकी पूजा न करोगी?"

एमाने जरा सोचा, अनन्तर कहा—"अपने लिए न सही, मैंने कुछ भी ध्यान न दिया, किन्तु उनके सुखकी तो काँटा होऊँगी। उनकी सजी-सजाई गृहस्थीमें

तो आग लगा दूँगी । नहीं रंगिणी, ऐसा न कर सकूँगी । मरना होगा तो मरूँगी । निष्फल जीवन ले इस पृथिवीसे चली जाऊंगी । उनको मालूमभी न होगा कि मैंने उनकी मूर्तिकी, उनकी स्मृतिकी, हृदयमें प्रतिष्ठा कर कितनी उनकी पूजा की है । "

एमाकी आँखोंमें आँसू आ गया । रंगिणीने कुछ सोचकर कहा—" अच्छा, एक काम न किया जाय, दीदी साहब ? "

" क्या ? "

" मैं एकबार खुद जाऊँ । उन्होंने यदि ब्याह न किया होगा तो तुह्मारी हालत उनको सुना आऊँगी । "

" तू जा सकेगी ? "

" क्यों न जा सकूँगी दीदी साहब ? तुम भूल गई क्या, मैं रास्ते-रास्ते भीख माँगती फिरी हूँ । निराश्रय होकर जब इधर-उधर फिर सकीहूँ, तब आज तुह्मारे आश्रयमें रहकर वहाँ न जा सकूँगी ? "

" निराश्रय होने पर लोग बहुत कुछ कर सकते हैं, पर आश्रय पानेपर वह सब नहीं कर सकते ।"

" कुछ डरकी बात नहीं दीदी साहब । तुह्मारे लिए यमराजके घर भी घूम आ सकती हूँ । "

एमाने कहा—" तू जा सकेगी ? तू सब कुछ कर सकती है सही, किन्तु उनको यह मालूम न हो सके कि मैंने तुझे भेजा है । किसी प्रकारसे उनको यहाँकी खबर सुना आना । "

" अब तक मान बना है ? "

" मान नहीं रंगिणी । वे मेरी प्रार्थनासे मजबूर होकर नहीं, अपना मान रखनेके लिए अपनी इच्छासे वे आयें, यही मै चाहती हूं । "

" यदि फिर भी न आये । "

" तो मै उनका आश्रय नहीं चाहती "

रंगिणीने कहा—" अच्छा, फिर कल सबेरे उठते ही कुछ लड़ाई-झगडा खड़ा करूंगी, इससे मुझे निकाल देना । नहीं तो शायद किसी को किसी तरहका सन्देह हो । तुमको जैसे कड़े पहरेमें रखनेकी बात सुनी है, उससे ख़याल होता है कि कहीं जासूस मेरा पीछा न करें ।"

करेगा ? व्यर्थ ही मुझे और लोगोंके सामने भी लज्जित होना पड़ेगा। जाने दो, इस चर्चाको छोडो, इसकी जरूरत नहीं। अब तुमपर आनेवाली आफत का कुछ उपाय करना होगा। सब मिलकर यदि जबर्दस्ती करेंगे तो तुम अकेली औरत क्या कर सकोगी ?"

एमाने उत्तर दिया—" मैं अकेली औरत क्या करूँगी ? अकेली औरतके धर्म-बलके, पतिप्रेमके बलके, आगे ये सब ठहर सकते हैं रंगिणी ? तू भी तो अकेली रास्ते-रास्ते भीख माँगती फिरती थी, कितने लोगोंने कितने अत्याचार करनेकी चेष्टा की, पर क्या तू अपनी रक्षा न कर सकी थी ?"

" पर ऐसी बन्दिश बाँधकर कोई जबर्दस्ती करता तो क्या बच सकती थी ? मरनेके सिवा तब और रास्ता न रहता। ऐसे समयके लिए झोलीमें छुरी और विष रखती थी।"

" यह रास्ता क्या मेरे लिए नहीं है रंगिणी ?"

रंगिणीने कहा—" पर दीदी साहब, ऐसे पतिको छोड़कर मरनेका रास्ता क्यों खोजती हो ? क्या उनकी अपेक्षा मृत्यु तुम्हें अधिक पसन्द है ?"

" उनको पाने पर क्या मरना चाहती हूँ रंगिणी ? स्वर्गमें जानेपर भी नहीं।"

" तब उनको ही चाहो, चाहनेसे पाओगी। अब भी समय है दीदी साहब। उनको खबर दो। फिर खूनखराबी होनेपर भी कुछ न होगा।"

" रंगिणी !"

" क्या दीदी साहब ?"

" एक बात है !"

" उन्होंने यदि दूसरा व्याह कर लिया हो ?"

" तो सौतके ही घर रहना।"

" छिः !"

रंगिणी—" अपना कर्मफल सबको भोगना पड़ता है, सो तुम भी भोगना। तुम उनको दोष नहीं दे सकतीं, पर यदि तुह्मारे देवताकी कोई पूजा करता है, तो क्या तुम अपने देवताकी पूजा न करोगी ?"

एमाने जरा सोचा, अनन्तर कहा—"अपने लिए न सही, मैंने कुछ भी ध्यान न दिया, किन्तु उनके सुखकी तो काँटा होऊँगी। उनकी सजी-सजाई गृहस्थीमें

तो आग लगा दूँगी । नहीं रंगिणी, ऐसा न कर सकूँगी । मरना होगा तो मरूँगी । निष्फल जीवन ले इस पृथिवीसे चली जाऊंगी । उनको मालूमभी न होगा कि मैंने उनकी मूर्तिकी, उनकी स्मृतिकी, हृदयमें प्रतिष्ठा कर कितनी उनकी पूजा की है । ”

एमाकी आँखोंमें आँसू आ गया । रंगिणीने कुछ सोचकर कहा—“ अच्छा, एक काम न किया जाय, दीदी साहब ? ”

“ क्या ? ”

“ मैं एकबार खुद जाऊँ । उन्होंने यदि व्याह न किया होगा तो तुम्हारी हालत उनको सुना आऊँगी । ”

“ तू जा सकेगी ? ”

“ क्यों न जा सकूँगी दीदी साहब ? तुम भूल गई क्या, मैं रास्ते-रास्ते भीख माँगती फिरी हूँ । निराश्रय होकर जब इधर-उधर फिर सकीहूँ, तब आज तुम्हारे आश्रयमें रहकर वहाँ न जा सकूँगी ? ”

“ निराश्रय होने पर लोग बहुत कुछ कर सकते हैं, पर आश्रय पानेपर वह सब नहीं कर सकते ।”

“ कुछ डरकी बात नहीं दीदी साहब । तुम्हारे लिए यमराजके घर भी घूम आ सकती हूँ । ”

एमाने कहा—“ तू जा सकेगी ? तू सब कुछ कर सकती है सही, किन्तु उनको यह मालूम न हो सके कि मैंने तुझे भेजा है । किसी प्रकारसे उनको यहाँकी खबर सुना आना । ”

“ अब तक मान बना है ? ”

“ मान नहीं रंगिणी । वे मेरी प्रार्थनासे मजबूर होकर नहीं, अपना मान रखनेके लिए अपनी इच्छासे वे आयें, यही मै चाहती हूं । ”

“ यदि फिर भी न आये । ”

“ तो मै उनका आश्रय नहीं चाहती ”

रंगिणीने कहा-“ अच्छा, फिर कल सबेरे उठते ही कुछ लड़ाई-झगडा खड़ा करूंगी, इससे मुझे निकाल देना । नहीं तो शायद किसी को किसी तरहका सन्देह हो । तुमको जैसे कड़े पहरेमें रखनेकी बात सुनी है, उससे ख़याल होता है कि कहीं जासूस मेरा पीछा न करें ।”

करेगा ? व्यर्थ ही मुझे और लोगोंके सामने भी लज्जित होना पड़ेगा। जाने दो, इस चर्चाको छोडो, इसकी जरूरत नहीं। अब तुमपर आनेवाली आफत का कुछ उपाय करना होगा। सब मिलकर यदि जबर्दस्ती करेंगे तो तुम अकेली औरत क्या कर सकोगी ?"

एमाने उत्तर दिया—"मैं अकेली औरत क्या करूँगी ? अकेली औरतके धर्म-बलके, पतिप्रेमके बलके, आगे ये सब ठहर सकते हैं रंगिणी ? तू भी तो अकेली रास्ते-रास्ते भीख माँगती फिरती थी, कितने लोगोंने कितने अत्याचार करनेकी चेष्टा की, पर क्या तू अपनी रक्षा न कर सकी थी ?"

"पर ऐसी बन्दिश बाँधकर कोई जबर्दस्ती करता तो क्या बच सकती थी ? मरनेके सिवा तब और रास्ता न रहता। ऐसे समयके लिए झोलीमें छुरी और विष रखती थी।"

"यह रास्ता क्या मेरे लिए नहीं है रंगिणी ?"

रंगिणीने कहा—"पर दीदी साहब, ऐसे पतिको छोड़कर मरनेका रास्ता क्यों खोजती हो ? क्या उनकी अपेक्षा मृत्यु तुम्हें अधिक पसन्द है ?"

"उनको पाने पर क्या मरना चाहती हूँ रंगिणी ? स्वर्गमें जानेपर भी नहीं।"

"तब उनको ही चाहो, चाहनेसे पाओगी। अब भी समय है दीदी साहब। उनको खबर दो। फिर खूनखराबी होनेपर भी कुछ न होगा।"

"रंगिणी !"

"क्या दीदी साहब ?"

"एक बात है !"

"उन्होंने यदि दूसरा व्याह कर लिया हो ?"

"तो सौतके ही घर रहना।"

"छिः !"

रंगिणी—"अपना कर्मफल सबको भोगना पड़ता है, सो तुम भी भोगना। तुम उनको दोष नहीं दे सकतीं, पर यदि तुह्मारे देवताकी कोई पूजा करता है, तो क्या तुम अपने देवताकी पूजा न करोगी ?"

एमाने जरा सोचा, अनन्तर कहा—"अपने लिए न सही, मैंने कुछ भी ध्यान न दिया, किन्तु उनके सुखकी तो काँटा होऊँगी। उनकी सजी-सजाई गृहस्थीमें

तो आग लगा दूँगी । नहीं रंगिणी, ऐसा न कर सकूँगी । मरना होगा तो मरूँगी । निष्फल जीवन ले इस पृथिवीसे चली जाऊंगी । उनको मालूमभी न होगा कि मैंने उनकी मूर्तिकी, उनकी स्मृतिकी, हृदयमें प्रतिष्ठा कर कितनी उनकी पूजा की है । "

एमाकी आँखोंमें आँसू आ गया । रंगिणीने कुछ सोचकर कहा—" अच्छा, एक काम न किया जाय, दीदी साहब ? "

" क्या ? "

" मैं एकबार खुद जाऊँ । उन्होंने यदि व्याह न किया होगा तो तुह्मारी हालत उनको सुना आऊँगी । "

" तू जा सकेगी ? "

" क्यों न जा सकूँगी दीदी साहब ? तुम भूल गई क्या, मैं रास्ते-रास्ते भीख माँगती फिरी हूँ । निराश्रय होकर जब इधर-उधर फिर सकीहूँ, तब आज तुह्मारे आश्रयमें रहकर वहाँ न जा सकूँगी ? "

" निराश्रय होने पर लोग बहुत कुछ कर सकते हैं, पर आश्रय पानेपर वह सब नहीं कर सकते ।"

" कुछ डरकी बात नहीं दीदी साहब । तुह्मारे लिए यमराजके घर भी घूम आ सकती हूँ । "

एमाने कहा—" तू जा सकेगी ? तू सब कुछ कर सकती है सही, किन्तु उनको यह मालूम न हो सके कि मैंने तुझे भेजा है । किसी प्रकारसे उनको यहाँकी खबर सुना आना । "

" अब तक मान बना है ? "

" मान नहीं रंगिणी । वे मेरी प्रार्थनासे मजबूर होकर नहीं, अपना मान रखनेके लिए अपनी इच्छासे वे आयें, यही मै चाहती हूं । "

" यदि फिर भी न आये । "

" तो मै उनका आश्रय नहीं चाहती "

रंगिणीने कहा—" अच्छा, फिर कल सबेरे उठते ही कुछ लड़ाई-झगडा खड़ा करूंगी, इससे मुझे निकाल देना । नहीं तो शायद किसी को किसी तरहका सन्देह हो । तुमको जैसे कड़े पहरेमें रखनेकी बात सुनी है, उससे ख़याल होता है कि कहीं जासूस मेरा पीछा न करें ।"

सातवाँ परिच्छेद।

सार्वभौमके घर।

शूलपाणिने उसीरातको मुखोपाध्यायके साथ घरकी यात्रा की। दूसरे दिन प्रातःकाल वे घर पहुंचे। मुखोपाध्याय हाथ मुँह धोकर प्रातःकालके वायु-सेवनसे रातके जागरणका आलस्य दूर करनेके लिए नदीके किनारे घूमने गये। इसलिए प्रातःस्नान और प्रातःसन्ध्या करनेवाले उन पूर्वपरिचित शूलपाणिके अनुगत बन्धु-ओंसे भेट हुई। बाबूका आगमन सुनकर ब्राह्मण-पण्डित अपार आनन्दित हुए। मुखोपाध्यायका आलस्य भी दूर हो गया। वे घरको लौटे। पण्डित लोग मन ही मन बाबूके चित्तविनोदके लिए श्लोकों की रचना एवं स्मरण करनेकी चेष्टा करते हुए किसी तरहसे जल्दी-जल्दी सन्ध्याह्निकके मन्त्र पढ़ने और हाथ चलानेकी क्रिया समाप्तकर घबराये हुए घर पहुँचे और धोती-गमछा रख शूलपाणिके बैठ-कखानेमें जा विराजे।

अनेक स्तुतिवाक्यों और उपमाओंसे ब्राह्मणोंने बाबूकी धर्मनिष्ठा, उदारता और वदान्यताका वर्णन और व्याख्या की। हिरणके समन्वयके समय बाबूने राजाकी तरह राजसूययज्ञका अशन-वसन-धन-वितरण किया था, इस बिषयकी चर्चा चली। सार्वभौम ठाकुरके ईर्ष्यामूलक व्यवहारकी चर्चा भी उठी। मदनने ब्राह्मण-त्वका पारित्यागकर वैश्यवृत्ति ग्रहण की है, इस सबन्धकी आलोचना हुई। शूलपाणिके सुनिपुण इङ्गितों पर चलनेवाले ब्राह्मणोंने मदनकी बहुत निन्दाकर उसे पतित और जातिच्युत करनाही विधेय बताया। इससे सार्वभौम ठाकुरके धृष्ट व्यवहारका बदला भी लिया जा सकता है।

सार्वभौम ठाकुरको समाजच्युत करना कैसे गजबकी बात है ! ब्राह्मणलोग, शूलपाणिपर असाधारण स्नेह और अनुग्रह होनेसे, ऐसा असम्भव प्रस्तावकर रहे हैं। शूलपाणि बहुत विस्मित और स्तम्भित हुए। सार्वभौम ठाकुरने उनके साथ चाहे जैसा व्यवहार किया हो, किन्तु वे सदासे उनकी विशेष श्रद्धा और भक्तिके पात्र हैं और मदन अभी छोकडा है, –" सार्वभौम ठाकुरने उसके कार्यका अवश्यही अनु-

मोदन किया होगा, किन्तु वे इस सबम्बन्धमें यहाँ तक अग्रसर होनेकी इच्छा नहीं करते । ”

बाबूके असाधारण सदाशयता और उदारतासे मुग्ध हो, ब्राह्मण लोग धन्य धन्य कह उठे ।

मुखोपाध्यायने फिर अपनी खामोशी दूर की और यह मत प्रकट किया—“ बाबूमें अत्यधिक कोमलता और चक्षुलज्जा है, इससे वे समाजका हित भूल जाते हैं । क्या पतित ब्राह्मणको करुणावश समाजमें आश्रय देना उचित है ? इसीसे तो समाज धीरे-धीरे टुकड़े-टुकड़े हो जाता है । और कुछ दिनोंमें ब्राह्मणोंका ब्राह्मणत्व लुप्त हो जायगा, हिन्दूसमाजका अस्तित्व फिर न रहेगा । ”

ब्राह्मण–पण्डितोंने भी मुखोपाध्यायके कथनका समर्थन कर कहा–“ बाबू जब समाजके अवलम्ब हैं, तब कर्तव्य पालन में कुछ कड़ाई करना आवश्यक है । ” ‘ वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ’ आदि श्लोकोंसे इस मतका समर्थन हुआ । शूलपाणि अब क्या करें ? लाचार हो उन्होंने यह अनुरोध किया कि यदि मदन पूर्वपापका प्रायश्चित्त करें और गंगास्नानकर इस हीनवृत्तिको छोड दे तो ब्राह्मण लोग इसे इस बार क्षमा करें । ब्राह्मण लोग फिर धन्य-धन्य कह उठे । शूलपाणि बाबू स्वयं ही असीम सदाशयवशतः शत्रुता भूलकर सार्वभौमेक घर जा इस विषयकी चेष्टा करेंगे ।

सार्वभौम यदि मूढ़तावश बाबूके इस उदार प्रस्तावको स्वीकार न करेंगे तो कल ही सबलोग मदन को यथाविधि पतित करनेको वाध्य होंगे । धर्मप्राण समाज-हितैषी बाबू भी इस कार्यमें योग देंगे ।

ब्राह्मण लोग अपने-अपने घर गये । शूलपाणि मुखोपाध्यायके साथ सार्वभौम ठाकुरके घर पहुँचे ।

सार्वभौम ठाकुर बरामदेमें पूजाकर रहे थे । उनके बगलमें उनकी पूजा–अर्चना और धर्म-साधनकी नित्यसंगिनी यमुना बैठी थी । पाठक आप एक दिन इस देववालारूपी यमुनाका चित्र देख चुके हैं, उसका फिरसे वर्णन करना निष्प्रयोजन है । यमुना गा रही थी—

मातुकी मूरति है विकराल,
लगा है सुन्दर सेंदुरभाल ।

कालकी माँ मेरी है काल,
हाथमें है कराल करवाल।
गलेमें पड़ी मुण्डकी माल,
विहँसती मधुर-मधुर मुद ढाल।
दीन-दुखियोंकी तू रखवाल,
दयाकर देखो मातु दयाल।

सार्वभौम ठाकुरने भक्तिगद्गद चित्तसे प्रणामकर कहा—"भगवती, विश्वमयी महाकाली, मोहनकालरूपी, विश्वलीलामयी, कृष्णकाली! समय तो हो गया माँ। कब अपनी गोदमें उठा लोगी? कब जरा निद्रा लेने दोगी?"

"नमस्कार सार्वभौम महाराज, अच्छी तरहसे हैं?"

मुखोपाध्यायके साथ शूलपाणिने, आँगनमें खड़े हो, सार्वभौम ठाकुरसे नमस्कार किया।

"आओ भैया शूलपाणि, अच्छी तरहसे हो? नमस्कार मुखोध्याय महाशय? कुशलपूर्वक हो।?"

मुखोध्यायने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और कृतज्ञतापूर्वक सिर हिलाकर कुशल प्रकट किया।

शूलपाणिने कहा—"आपकी कृपासे भगवती जगदम्बाने एक प्रकारसे कुशलही रक्खा है।"

शूलपाणिने एक बार भक्ति और विनयपूर्ण दृष्टिसे सार्वभौम ठाकुरके चेहरेकी ओर और दूसरी बार लालसालोलुप दृष्टिसे यमुनाकी ओर देखा। वाह! यह युवती कौन है! प्रकृतिकी गोदपर, अपूर्व वनकुसुमकी तरह, कौन यह बाला नवयौवनका सारा सौन्दर्य्य ले इस ब्राह्मणके घर प्रस्फुटित हुई है। वाह! कैसा मीठा गला है, कैसा मीठा गाती है! शूलपाणिने अनेक शिक्षिता गानेवालियोंका गाना सुना है, किन्तु ऐसा गाना क्या कभी सुना है? अशेष भोग-विलासोंमें जवानी बिता देनेपर भी शूलपाणिकी वासना अभी निवृत्त नहीं हुई है, वरन्, नित्य-नूतन भोगसे नित्य-नूतन लालसा होती जाती है। नन्दनका ऐसा पारिजात अक्लान्त भोगी कुसुम शूलपाणिके भोग—लोलुप नयन—पथपर कभी पतित नहीं हुआ। शूलपाणिके समग्र हृदयमें दारुण लालसाकी आग जल उठी।

बस पाठक ! देवगृहमें, देवपूजाके पुण्यआसनपर उपविष्ट, देवजीवन सार्वभौम और सार्वभौमपालिता देवबाला यमुनाकी पुण्यमूर्त्तिकी ओर ताकनेवाले शूलपाणिकी पाप-लालसाकी बातें भूल जाइये । शूलपाणि भूलेंगे नहीं; किन्तु आप लोग भूल जाइये ।

सार्वभौमने कहा—" आओ भैया, ऊपर आकर बैठो । बाहर क्यों खड़े हो ? "

शूलपाणिने विनीत भावसे उत्तर दिया—आप पूजा कर रहे हैं; वहाँ कैसे आ सकूँगा ? हिरणके कारण आपने मुझे त्याग दिया है, वहाँ क्या बैठने पाऊँगा । "

सार्वभौमने कहा—" आओ भैया, क्यों न बैठने पाओगे, मैं भगवतीकी पूजा करता हूँ जो सबकी माँ है, सब उनकी गोदमें हैं । सामाजिक धर्मके कारण सामाजिक संभवके लिए चाहे आपत्तिका कारण हो, किन्तु माताकी पूजामें कोई आपत्ति नहीं । तुम और मैं यदि एक ही आसन पर बैठकर भगवतीकी पूजा करूँ, तो माता भगवती इससे प्रसन्न ही होगी, अप्रसन्न नहीं । "

शूलपाणिने ऊपर जाते-जाते कहा—" सार्वभौम महाशय, आप महापुरुष हैं । हम लोग आपके पाँवोंकी धूलि लेनेके भी योग्य नहीं । "

सार्वभौमने कहा—कि "भैया, ऐसी बात न कहनी चाहिए । हम सब लोग एक ही माँकी सन्तान हैं । जा यमुना, इन लोगोंके बैठनेके लिए कुछ आसन लादे । "

यमुनाने घरके भीतरसे दो आसन ला रख दिया । शूलपाणि और मुखोपाध्याय बैठ गये । शूलपाणिने तेज नजरसे यमुनाके सब अंगोंकी ओर देखा और अनन्तर सार्वभौम ठाकुरसे पूछा—" यह लड़की कौन है ? "

सार्वभौम बोले—" मेरी ही आश्रिता एक अनाथा विधवाकी लड़की है । "

" ब्राह्मणकी लड़की है ? "

" हाँ । "

" शायद अबतक इसका विवाह नहीं हुआ है ? "

" नहीं भैया, इसके विवाहके लिए बहुत चिन्तित हूँ । सयानी हो गई है । अज्ञात कुलशीला होनेसे इसका ब्याह किसी सत्पात्रसे अबतक न कर सका । तारा ब्रह्ममयी, तुम जो चाहो करो । "

शूलपाणिने कहा—" आपकी अनुमति हो तो मैं भी इसके ब्याहके लिए चेष्टा

कर सकता हूँ। अनेक सद्ब्राह्मण मेरे अनुगत हैं। लड़की अत्यन्त सुन्दरी है। गाना भी ये ही गा रही थीं।"

"हाँ भैया, बेटी मेरी बहुत मीठा गाती है। जबतक इसके मुँहसे माँका नाम नहीं सुनता, तबतक मेरा पूजा-आन्हिक कुछ नहीं होता।"

यमुना शूलपाणिको तेज नज़रसे अपनी ओर ताकते देख कर बहुत सङ्कुचित हुई। उसने कोमल स्वरसे सार्वभौम ठाकुरसे कहा-"दादा, मैं जाती हूँ, पूजा बासन माँज लाऊँ।"

"जाओ बेटी।"

यमुना निर्माल्य पुष्पपात्रादि उठाले वहाँसे चली गई।

सार्वभौमने पूछा-"कहो, कैसे आये शूलपाणि भैया?"

शूलपाणिने अत्यन्त नम्रता और सङ्कोचसे कहा-"कुछ कामसे घर आया था, पर यहाँ पहुँचते ही एक विपदमें फँस गया।"

"क्या? कैसी विपद भैया?"

शूलपाणिने कहा—"देखिये, सार्वभौम महाशय, मदनने शिष्य-यजमानोंको छोड़कर हल पकड़ा है। ब्राह्मण-सन्तान होकर ऐसा नीच कर्म करना क्या अच्छा है?"

सार्वभौमने उत्तर दिया—"बुराही क्या है? मदन आजकलके ब्राह्मणोंका व्यवसाय छोडकर, स्वाधीन भावसे, अपनी प्रवृत्तिके अनुसार अपनी मिहनतसे अपना जीवन-निर्वाह करता है, यह तो महत्वकी ही बात है, हीनत्व तो मैं इसमें कुछ देखता नहीं।"

शूल—"मैं भी ऐसी बातोंपर कुछ अधिक ध्यान नहीं देता। किन्तु आपको मालूम है गांवके ब्राह्मण पण्डित सब आज मेरे घर आये थे और कहते थे कि मदनके इस हीन-कार्यसे उन लोगोंका सिर नीचा होता है?-तो-"

सार्व—"उन लोगोंका सिर नीचा हो सकता है, किन्तु इससे मेरा सिर ऊंचा ही हुआ है, कभी नीचा नहीं हुआ।"

शूल—"वे क्या जानें, सार्वभौम महाशय, मैं भी आपकी बात मानता हूं। किन्तु वे लोग बहुत नाराज हैं। इधर हिरणको ग्रहण कर उन लोगोंने मुझे वाध्य

कर लिया है । यदि वे कोई अनुचित हठ भी करें तो भी मैं उनको असन्तुष्ट नहीं कर सकता । ”

सार्व—“ तुम उनको असन्तुष्ट क्यों करोगे । इसकी जरूरत क्या ? ”

शूल—“ फिर मदन क्या इस कामको छोड़ नहीं सकता । बल्कि मैं उसे कोई नौकरी दिला दूँगा । ”

सार्व—“ मदन इस कामको न छोड़ेगा, नौकरी भी न करेगा और मैं भी उससे इस विषयमें कुछ कह न सकूँगा । ”

शूल—“ यह तो जानता हूँ । पर वे लोग मदनसे बहुत नाराज हैं ! वे लोग कहते हैं कि मदन शिष्य-यजमानोंको छोड़कर और इस हीन वृत्तिको ग्रहण कर पतित हो गया है । इससे वे मदनको जातिच्युत करना चाहते हैं । फिर भी मदन यदि प्रायश्चित्त कर इस कामको छोड़ दे तो मैं एक बार चेष्टा कर सकता हूं ।”

सार्व—“ मदनने ऐसा कोई पाप नहीं किया है, जिसके लिए उसे प्रायश्चित्त करनेकी जरुरत हो । ”

शूल—“ प्रायश्चित्त करे या न करे, मुँहसे कह देना है, ‘ किया है ’; इससेभी शायद काम हो सकता है । ”

सार्व—“ क्या ? वह झूँठ बोलेगा ? ”

शूल—“ झूँठ क्यों बोलेगा ? उसने गंगास्नान तो किया ही होगा, इससे यह तो कह ही सकेगा कि गंगास्नान किया है । ”

सर्व—“ यह तो झूँठसेभी बढ़-चढ़कर है । सीधी-सादी झूँठ बल्कि अच्छी; किन्तु सचकी आड़में झूँठ बोलना बहुत बुरा है । ”

शूल—“ फिर देखता हूँ, मदनको मैं जातिच्युत होनेसे बचा न सकूँगा । यह कुछभी न करनेसे वे लोग मदनको पतित ठहरायेंगे और सर्वत्र पत्र लिखेंगे, ऐसा कहते थे । ”

सार्व—“ लिखने दो । मदन बनैले पशुओंकी तरह वनमें छिपा रह सकेगा, किन्तु बनावटी आचरणसे कोई धर्म-वृद्धि-विरोधी कार्य कर समाजमें न रहना चाहेगा । ”

शूल—“ इस विषयपर विचार करनेके लिए कल सब लोग एकत्र होंगे । आप

भी यदि वहां उपस्थित रहेंगे और समझाकर सब बातें कहेंगे तो शायद अच्छा फल हो सकता है। ”

सार्व—“ मेरे वहाँ उपस्थित रहनेकी कोई जरूरत नहीं। वे लोग समझ करके भी न समझेंगे। ”

शूल—“ पर जानेमें हर्ज क्या ? ”

सार्व—“ नहीं; मैं जा न सकूँगा। काशीमें मेरा एक शिष्य मृत्यु-शय्यापर पड़ा है, वह मुझसे एक बार मिलना चाहता है। मैं आज रातको ही काशी जाऊँगा। ”

शूल—“ एक दिन ठहर नहीं सकते क्या ? ”

सार्व—“ मैं ठहर सकताहूँ, किन्तु मृत्यु शायद न ठहरेगी। ”

शूल—“ मैं फिर क्या करूँ, मुझे दोष न दीजियेगा। ”

सर्व—“ तुम क्या करोगे भैया ? तुम्हारा दोष क्या ? ”

शूलपाणि नमस्कार कर विदा हुए।

सार्वभौमने कहा—“ इच्छामयी, तुह्मारी इच्छा पूरी हो माँ ! सम्पद-विपदमें, सुख-दुःखमें इस अधम सन्तानको चरणोंके निकट स्थान देना माँ ! ”

रास्तेपर शूलपाणिने मुखोपाध्यायसे कहा—“ मुखोपाध्याय, छोकड़ी कैसी है ?”

मु—“ नन्दनकी अप्सरा, जैसा रूप वैसाही संगीत। ”

शूल—“ दादा, एक उपाय करो। नहीं तो प्राण न बचेगा दादा ? आहा-कैसा फूल बुढ्ढेके अँधेरे बागमें फूला है ? ”

मु—“ बुड्ढा तो आजही काशी जाता है ”

शूल—“ श्रीनाथ भी नशाखोर है, बिलकुल बैल है। ”

शूल—“ न मालूम कितने दिन लगे। कल वह काम हो जानेपर घनश्यामको एक चिठ्ठी लिख दूँ कि मेरे आनेमें कुछ दिनोंका विलम्ब होगा, बड़ा जरूरी काम है।”

मु—“ किन्तु उधरका मामला कहीं बिगड़ न जाय। ”

शू—“ क्या करूँ दादा, बड़े विषम आकर्षणमें पड़ गया हूँ। प्राण तो वंशीमें विध कर खिंचा जाता है, क्या उसे फाड़ सकता हूँ दादा ? देखूँ, जितना जल्द कामयाब हो सकूँ। कल दिनमें नहीं, रात होतें ही श्रीनाथको बुलवाऊँगा। और खबर लेना कि मदना और माणिक कहीं आते-जाते हैं या नहीं। उनकी मौजूदगीमें काम होना कठिन है। ”

मु–" हाँ हाँ, आपने खूब सोचा। वे शायद दो-तीन दिनके भीतर ही कलकत्ते जायँगे। आज सबेरे जब नदीसे लौट रहा था, तब रास्तेके पास मदनके बागमें खड़ी तारा की माँ यह कह रही थी।"

शु—" बस ! फिर डर नहीं। दादा क्या कहूँ ! प्राण तो अभी नाच उठा है। अब तुह्मारी कृपा और ईश्वरकी इच्छा पर सब निर्भर है।"

आठवाँ परिच्छेद।

पतित।

" उन लोगोंको क्या हो गया है ? ओ मदना, ओ माणिक ! तुम दोनों कहाँ गये ? "

मेनका ठकुरानी बड़बड़ाती और कूदती हुई घर पहुँची। मदन और माणिक आँगनमें ही खड़ेथे।

माणिकने कहा—" हाँ क्या है। यह सामनेही तो हम दोनों खड़े हैं, देखती नहीं। "

" हो, तो अबतक इस तरह खड़े हो ? क्या तुम लोगोंमें मनुष्यकी आत्मा नहीं ? सार्वभौम ठाकुरके भतीजेकी मैं बहू हूँ, मेरे गर्भसे मदन जन्मा, मदनसे दो सौ हाथ दूरभी जिन्हें खड़े होनेको जगह नहीं मिलती, वे ही मदनको पतित कहते हैं। वे मेरे मदनकी जाति नष्ट करते हैं। उनका सर्वनाश हो, जो जहाँ हैं उनको वहीं मौत आये ! सब अपघातसे मरें, उनकी अगति हो, गंगाके किनारे भी गंगा न पायें, कोई आग देनेवाला भी न रहे, जहाँ मरे पशु फेंके जाते हैं वहीं उनको मेहतर टाँगकर फेंक आयें। "

एक सांसमें शापोंकी वर्षाकर और ज़रा थककर मेनका ठकुरानी रुकीं।

मदनने कहा—" हुआ क्या है ? इतना नाराज़ क्यों हो माँ ? जाति ऐसे ही चली गई ? समझ लो न कि हम लोगोंनेही उनको जातिसे बाहर कर दिया है।"

" कर सके तो कर न ! यह देख कर दोनों आँखे ठंडी हों, देहका क्रोध कुछ मिटे ! महापातकी मुर्दो, तुम्हारा वंश न रहे, जिन सार्वभौम ठाकुरके पाँवोंकी

धूलभी तुम सब सिरपर चढ़ाने योग्य नहीं हो, उन्हीं सार्वभौम ठाकुरके घरका लड़का मदन पतित है। तुम लोगोंकी जीभ क्यों न गिर गई ?"

इसी वक्त जयाको आती देखकर मेनका उसकी ओर दौड़ गई और सप्तम स्वरको दशममें चढ़ाकर बोलीं—"कह न जया ननद, तेरा भाई चाहे बड़ा आदमी हो, चाहे उसकी सन्दूकमें रुपये ही रुपये भरे हों, पर क्या वह सब धन देकर सार्वभौम ठाकुरके पाँवोंकी धूलिका एक किनका भी खरीद सकता है ? वह आकर उनके घरके लड़के मदनकी जाति नष्ट करता है ? मुँहजला, साँपके बिलमें हाथ डालने चला है, कूकर हो यज्ञके घीमें मुँह डालने चला है, पतिंगा हो आगसे युद्ध करने चला है !

जयाने मुस्कुराकर कहा—"बड़ी बहू, हम लोगोंसे कह क्या करोगी ? भाई मेरा बहुत कहना मानता है न ? उसने कितने आदरसे मुझे अपने घरमें रक्खा है !"

"वह रक्खे या न रक्खे, मुझे क्या पड़ी है। तुम लोगोंने तो घरमें ही नहीं समझ लिया ? कहूँगी ! दो सौ बार कहूँगी ! मदनको वह जातिसे बाहर करता है ? सार्वभौम ठाकुरका ऐसा अपमान करता है ? देवता क्या सोते हैं ? पुण्य-धर्म सब क्या खाक हो गया ? चन्द्र-सूर्य क्या नहीं उगते ? रात-दिन क्या नहीं होता ? अब भी आकाश न गिर पड़ा। पृथिवी रसातलको नहीं चली गई ?"

जयाने कहा—"तुम पागल हुई हो बड़ी बहू ? दादाके रुपये खा दो चार खुशामदी ब्राह्मणोंने दो-चार श्लोक कह सुनाये, इससे ही मदनकी जाति चली गई ! ऐसा कभी हो सकता है ?"

हो या न हो, उन लोगोंको ऐसा कहनेका अधिकार क्या ? ऋषि-मुनियोंके तुल्य सार्वभौम ठाकुर हैं। बड़े पुण्यके प्रभावसे इस गाँवमें उनका जन्म हुआ है। पुण्यका ऐसा जोर कितने गाँवोंको प्राप्त हुआ है ? पर ये अभागी, मुर्दे ब्राह्मण, मरघटक गीदड़, नरकके कीड़े नहीं समझे कि आज उन लोगोंने उनका कैसा अपमान किया है। यह क्या सहा जा सकता है ? कह न जया ननद, यह क्या सहा जा सकता है ! आज वे घरमें नहीं है, नहीं तो उन सबके घरों आग न लग जाती, सर्वस्व स्वाहा न हो जाता ?"

जयाने फिर समझा कर कहा—"क्यों बड़ी बहू, नाहक चिल्लाती हो ? हो क्या गया ? वे क्या सार्वभौम ठाकुरका अपमान कर सकते हैं ? देश भरमें सार्वभौम ठाकुरका नाम और प्रतिपत्ति हैं, इन दो-चार खुशामदी ब्राह्मणोंके कहनेसे क्या

सर्वनष्ट हो गया ? और तुह्मारा मदनभी पतित कैसे हुआ ? सार्वभौम ठाकुर हैं, माणिक है, और लोग न भी सही। इनके रहते हुए किसकी मजाल जो मदनको पतित कहे, जातिभ्रष्ट कहे !'

मेनकाने कुछ थककर, और अनर्थक चिल्लाना कुछ व्यर्थ समझकर अपना स्वर कुछ नीचा किया। उन्होंने कहा—" उस वक्त मैंने बार-बार कहा था कि मदन शिष्य-यजमानोंको न छोड़े। पर देखो, मदन उन्होने भी कहा कि मदन ठीक करता है। फिर कहो मैं क्या करूँ। नहीं तो शिष्य-यजमानोंको छोड़ने पाता ?"

जयाने कहा—" ठीक किया है, मदनने। उसने मनुष्यके योग्य काम किया है। इस पर भी फिर दुःखी होती हो। बड़ी बहू, माणिक मेरा शहरमें नौकरी करने गया था, तो उसे कितना अपमान सहना पड़ा था। अब वह नौकरी छोड़-कर मदनकी तरह खेती करता है, इससे मेरा सिर कितना ऊँचा है।"

मदनने कहा—" जया फूफी, अगर सबकी ही माँ तुह्मारे जैसी होतीं तो फिर देशमें दुःख न रहता।"

जयाने उत्तर दिया—" सब माताओंके लड़के भी यदि तुह्मारे समान होते, तो भी देशमें दुःख न रहता।"

माणिकने हँसकर कहा—" माँ, मुझे तुमने कुछ नहीं कहा ? एक मदन दादाके ही तुमने एकबारगी सप्तम स्वर्गमें चढ़ा दिया !"

" तुम अपने मदन दादाके छोटे भाई हो।"

" छोटा भाई क्या छोटा ही रहना चाहता है।"

मेनका का शरीर अबतक जल रहा था। आपसकी यह आनन्दकी तारीफें उनको न रुचीं। उन्होंने भौएँ टेढ़ी किये, विरागवक्रमुखसे जयाको सम्बोधन कर कहा—" अपना पचड़ा इस वक्त अलग रक्खो, कुछ मुझे अच्छा नहीं लगता। जो होना था, वह तो हो गया, अब चलो देख आयें, गंगा ननद क्या करती हैं। उसने न मालूम कितना रोया हो, खाया-पीया हो या न हो, इसका ही ठिकाना क्या ?"

जयाने कहा—" वह तुह्मारे जैसी नहीं है कि यह खबर सुन कर उसने खाया पीया न होगा और बिस्तरे पर पड़ी मुँह छिपाये रोती होगी पर चलो एक बार घूम आयें।"

जया और मेनका सार्वभौमके घरकी ओर चलीं। मदन और माणिक कुछ क्षणों तक ठठाकर हँसते रहे।

नवाँ परिच्छेद।

वैष्णवी।

इसके बाद दो-तीन दिन बीत गये। मदन और माणिक आज कलकत्ते जायँगे।

सुन्दरसे आनन्दाश्रमका समाचार पानेके बादही माणिक घर चला आया था; आन्ददाश्रमका पता न लगा सका था। वह नाना कारणोंसे अबतक कलकत्ते न जा सकाथा। अब मदनके साथ जाने और सब बखेड़ा तय कर आनेकी सलाह ठहरी थी। प्रातःकाल मदन माणिकके घर आया। दोनों आँगनमें बैठे कलकत्ता जानेके सम्बन्धकी बातें कर रहेथे। जयाने गायों को दुह दूधकी हंडी कमरेके दरवाजेके पास रखदी और वह उनके पास आ खड़ी हुई।

जयाने पूछा—

" आज फिर कलकत्ता क्यों जायगा माणिक? अभी तुझे आये तो डेढ़ महीना भी नहीं हुआ। "

माणिकने उत्तर दिया—" काम-काजके लिए जाना है, माँ, नहीं तो क्यों जाता! मदन दादा भी जायँगे। "

" तू भी जायगा मदन? "

" हाँ जया फूफी! बड़ा ज़रूरी काम है! कुछही दिनों में लौट आयेंगे। "

जयाने कहा—" फिर जाओ, तुम लोगोंका काज तुम लोग ही जानों। पर देखना, किसी साहबको मारपीटकर भागना नहीं। नहीं तो बड़ी बहू वैसे ही नाराज रहती हैं, एक बारगी वे अनर्थ कर बैठेंगी। "

तीनों हँस पड़े। सहसा बाहर की ओर गानेकी मीठी आवाज सुनाई पड़ी। कोई अपरिचित सुन्दरी युवती गाना गा रही है। एक वैष्णवीने गाते-गाते घरमें प्रवेश किया। वैष्णवी गा रही थी--

नाचत सलोनो श्याम,
मोरपरको मुकुट माथे, कृष्ण जाको नाम।
बाँसुरी धुनि सरस मधुमय, हरत हियको काम।
संग लीन्हे गोप गोपी, परम सुखमा-धाम।
नाचत सलोंनो श्याम।

जयाने पूछा—" तुम कौन हो ? तुमको यहाँ कभी नहीं देखा । तुह्मारे और कोई नहीं है ? अकेलेही जगह-जगह घूमती फिरती हो ? "

" वैष्णवीने उत्तर दिया-" पहचानोगी कैसे माँ ? मैं अभी हालमें ही यहाँ आई हूँ । राधागोविंदके अखाड़ेमें मैं ठहरी हूँ । साथी और कहाँ पाऊँ मा ! मेरे बाप, भाई, आत्मीय, स्वजन कोई भी नहीं । "

मदन टकटकी लगा वैष्णवी की ओर ताक रहा था । उसे वैष्णवीका चेहरा पहचाना हुआ सा मालूम होता था । जयाने इधर लक्ष्य किया ओर कहा—" मर अभागिनी ! तेरी कैसी अकल है ? ऐसा रूप और जवानी लिए तू जगह-जगह फिरती है ! आहा ! सयाना लड़का है, घरमें बहू नहीं । जा, अपना रास्ता ले । "

" ओ ताराकी माँ ताराकी माँ ! जरा भीख लाकर दे देना ताराकी माँ ! कहाँ गई ? "

जया खुद ही भीख लानेके लिए भीतरकी ओर चली । मदनने कहा—" शायद तुमको कहीं देखा है वैष्णवी ? "

जया घूम करखड़ी हो गई । वैष्णवीनें कहा—" नाना देशोंमें हम लोग फिरती रहती हैं, आपनें कहीं शायद देखा होगा । मैंने भी शायद आपको कहीं देखा है । ओहो, आपने ही न प्रयागके स्टेशन पर एक साहबको मारा था, जो बंगाली बीबीको पकड़कर खींचता तानता था, क्यों याद आता है बाबू ? "

" हाँ हाँ, याद है । तुम तो उसी बीबीके साथ थी ? तुम उस बीबीकी—"

" नौकर थी "

" हाँ, यही बात थी । नहीं तो मदन मेरा बड़ा अच्छा लड़का है । वह बीबी तो मदन की बहू थी, तू वैष्णवी क्यों हो गई ? " जया फिर पास आकर खड़ी हुई ।

माणिकने पूछा—" ऐसी नौकरी छोड़कर भीख क्यों माँगती फिरती हो ? भीख माँगना तुह्में क्या अधिक पसन्द हैं ? "

" बाबू, मजबूरी हालतमें सभी काम करने पड़ते हैं । "

" ऐसी क्या बात हुई कि तुम उस नौकरीको छोड़ देनेको मजबूर हुई ? "

रंगिणीने उत्तर दिया—वह नोकरी करनेके पहले भी मैं वैष्णवी थी । बीबी मुझे बहुत चाहती थीं, पर भाग्यके दोषसे वह नौकरी छोड़ देनी पड़ी । "

मदनने जरा घबराकर पूछा—" क्यों, क्या हुआ? तुम्हें उन लोगोंनेही निकाल दिया या तुमने स्वयं नोकरी छोड़ दी?"

रंगिणी—" उन लोगोंने नहीं छुड़ाया है, मैंने स्वयंही नौकरी छोड़ दी है।"

मा—" क्यों?"

र—" उनका कारबार देखकर उनके यहाँ रहनेको जी न चाहा; भाग कर चली आई हूँ।"

मा—" क्या? क्या कारोबार?"

र—" नहीं बाबू, सब बातें कह न सकूँगी। वे मालिक हैं, बहुत दिनों तक नौकरी की है, अब नमकहरामी क्यों करूँ?"

मा—" नहीं नहीं, कहो न तुम्हें डर क्या? तुम्हें अच्छी बखशीश मिलेगी।"

र—" आप लोग जब इतना पीछे पड़ते हैं, तो कहती हूँ। जब नौकरी ही छोड़ दी है, तब कहनेमें क्या हर्ज?"

म—" यह तो है ही। जब तक नोन खाया तब तक गुण गाया। नोन छोड़नेपर गुण गानेकी जरूरत क्या? तुम कह डालो, कुछ दुविधा न करो।"

" उस बीबीका शायद लड़कपनमें, किसी गाँवके एक देहाती ब्राह्मणके लड़केसे व्याह हुआ था। उस बीबीका बाप साहब है न? वह उस देहाती ब्राह्मणके घर लड़कीको भेजनेको राजी नहीं। देखो माँ, उसके वही एक लड़की है, उसके बहुत बड़ी जमींदारी है, जो उस लड़कीकी ही है। अन्य प्रकारके सब सुख होनेपरभी पतिके बिना लड़की सुख पा न सकेगी, इसीसे उसका साहब बाप उसका दूसरा व्याह करनेवाला है।"

मदन वज्राहतकी तरह निश्चल, निस्पन्द और नीरव हो रहा। माणिकने चौंककर पूछा—"फिरसे व्याह करनेवाला है? यह कैसी बात कहती हो?"

रंगिणीने उत्तर दिया—" मैं बाबू सच्ची बात कर रही हूँ। लड़की का व्याह हो गया है, उसका पति मौजूद है, फिर भी वह लड़कीका दूसरा व्याह करना चाहता है। तो देखो बाबू, मैं हिन्दूकी लड़की ठहरी, वैष्णावी हूँ, यह सुननेसे मुझे बहुत घृणा हुई। इसीसे मैं ने वह नौकरी छोड़ दी, नहीं तो मैं बड़े सुखमें थी। ऐसा अधर्म आँखोंसे देखनेपरभी पाप होता है।"

माणिकने कहा—" एक बार उसका व्याह हो गया है, फिर उसका दूसरा व्याह कैसे हो सकता है ? यह क्या कहती हो तुम ? "

रंगिणीने उत्तर दिया—" कोई संन्यासी आया है, उसने कोई शास्त्र निकाला है, जिससे पतिके पतित होने पर दूसरा व्याह हो सकता है । "

जयाने कहा—" तू झूँठी बातें गढ़ गढ़कर कहती है । तूने कुछ किया होगा, इसीसे उन लोगोंने तुझे निकाल दिया है, अब तू उन्हींकी निन्दा करती फिरती है । "

" नहीं माँ, झूँठ क्यों बोलूँगी । वे मालिक हैं, उनका नोन खाया है, अब उनकी झूँठी बदनामी कर अधर्म करूँगी ? और झूँठ बोलनेमें मुझे फायदा ही क्या ? मैं कोई कलंक तो लगाती नहीं हूँ । व्याह हो जानेपर सभीको मालूम हो जायगा । "

" वे लोग साहब हैं, वैसे ही व्याह दे सकते हैं । संन्यासी से शास्त्रकी विधि क्यों पूछने जायँगे ? "

" साहब लोगोंमें भी शायद इस तरहका व्याह नहीं होता । इसीसे ऐसी कार्रवाई कर रहे हैं । सब ठीक हो गया है । हिरण साहबके साथ व्याह होगा । "

माणिक और मदन दोनों एक स्वरसे बोल उठे—" हिरण ! हिरण कौन ? "

" मैं क्या जानूँ बाबू ? वे हैं साहब । कोई शूलपाणि बाबू हैं, उन्हींके वे लड़के हैं । "

" शूलपाणि ! "

" हाँ बाबू, उनको जानते हैं क्या ? जानते भी होंगे, वे बहुत बड़े आदमी हैं । बाबा साहबसे भी खूब मेल-जोल है । वह शूलपाणि बड़ा दगाबाज है । उसीने उस संन्यासीको खोजकर यह फन्दा तैयार किया है । वह बड़ा लोभी है । इतनी बड़ी जमींदारी सब उसके लड़केकी हो जायगी । पर जिससे बीबी का पहला व्याह हुआ था, वह जबतक पतित न होगा, तबतक दूसरा व्याह न हो सकेगा । इसीसे शूलपाणि बेईमान देश गया है, उसे पतित करने । शायद उन दोनोंके घर एक ही गाँवमें हैं । "

माणिकने क्रोधकम्पित स्वरसे कहा—" मदन दादा, अब तुम समझ गये जातिच्युत करनेका कारण । ओः कैसा पाषण्डी है ! "

रंगिणीने चौंककर कहा—" ओ माँ, मैंने यह क्या किया ? हाँ, तुम लोग क्या उस बीबीके कोई हो ? यदि ऐसा है तो मैंने बहुत अनुचित किया है । "

मदनने कहा—नहीं नहीं, तुमने ठीक किया है। अब यह बताओ, वह बीबी भी दूसरा व्याह करनेको राज़ी है ? ”

रंगिणी—“ यह मैं क्या जानूं बाबू ? बीबीने तो मुझसे कुछ कहा नहीं। वे ठहरी बीबी और मै ठहरी उनकी नौकरानी। वे मुझसे अपने मनकी बातें कैसे कहें ?'

“उसने नहीं कहा, पर तुमको मालूम नहीं क्या ? तुम उसकी ही तो नौकरानी था। फिर भी यह जान नहीं सकी कि वह दूसरा ब्याह करनेको राजी है या नहीं ? ”

“ नहीं बाबू, यह मुझे कुछ भी मालूम नहीं। उनसे कोई पूछता भी नहीं। वे भी कुछ कहती नहीं। मुझे खूब चाहती थीं; कभी नाराज न होती थीं। वे अच्छी ही सही, तो भी हैं तो बीबी। उन लोगोंका मिजाज कुछ और ही तरहका है। ” “ हूँ—”

“ रंगिणी मानो भय और संकोचसे ठिठककर बोली-“ हां बाबू, तुम लोग उस बीबीके क्या कोई हो ? बाबू मेरा कुसूर माफ करना। ”

“ तुम्हारा कुसूर क्या वैष्णवी ? अच्छा,—अब तुम जा सकती हो। ”

रंगिणीने लज्जासे सिर नीचे झुकाकर कहा—“ बाबू, मेरा बखशीस। ”

“ हाँ, जया फूफी, पाँच रुपया दे सकती हो ? ”

“ देती हूँ बेटा। ” जया घरके भीतर रुपया लेने गई।

मदन चुपचाप बैठा क्रुद्ध सिंहकी तरह फूल रहा था। रंगिणीने यह देखा। वह मुँह घुमाकर जरा मुस्कुराई; अनन्तर माणिकके पास जाकर बोली—“ हाँ बाबू, तुम दोनोंमेंसे कोई क्या उस बीबीके पति हो ? ”

माणिकने रूखेपनसे उत्तर दिया—तुम्हें इस छानबीनसे गरज क्या ? बखशीस दी जाती है, उसे लेकर बिदा हो।–माँ ! ”

“ आई बेटा। जया कमरेसे बाहर निकलीं। उन्होंने रंगिणीको पाँच रुपया देकर कहा—“ यह लो, यहाँ-वहाँ कुछ कहती न फिरना। तुम क्या इसी गाँवमें रहोगी ? ”

“ नहीं माँ, मैं आज ही भाग जाऊँगी। मैंने ऐसा काम किया है, जिससे बहुत डरती हूँ। तुम लोग तो भले आदमी हो। पर यदि शूलपाणि बाबूको पता लगेगा तो फिर रक्षा नहीं। फिर भी, तुम लोगोंकी बुराई तो कुछ की नहीं है। तुम लोगोंको खबर मिल गई है, अब जैसा चाहना करना–तुम्हारी जाति–मान–”

रंगिणी चली गई । उसने उस रुपयेसे लाल पाड़की एक साड़ी, शंखकी एक जोडी चूडी, एक डब्बी सिन्दूर और कुछ महावर खरीदा और एमाको ये सब चीजें देकर उसने कहा–" ये तुह्मारे ससुरालके निशान हैं । "

एमाने उन निशानोंको सिरसे लगाकर कहा—

" ससुरालके लोग जब आयेंगे, तब ससुराल जाऊँगी । "

दसवाँ परिच्छेद ।

गदा कहाँसे यह खबर सुन आया ?

रंगिणी चली गई । सब ख़ामोश हैं । मदनकी बड़ी–बड़ी आँखोंसे आगकी लपटें निकलने लगीं । उसका चेहरा लाल हो गया । वह दाँतोंसे होंठ दबाने लगा । क्रोधके कारण निकलत हुए निश्वाससे छाती फूल उठने लगी । वह भभकते हुए रोषके आवेगसे उद्विग्न हो उठा । उसने दोनों हाथों की दृढ़ मुठ्ठियाँ बाँध, दोनों मांसल बाहुओं को एक दूसरे से जकडकर छाती पर रक्खा और वह अस्थिर किन्तु दृढ़, गतिसे आगे बढ़ा और फिर पीछे लौटा ।

" बेटा मदन ! "

" मदन दादा ! "

" क्या माणिक ? "

" अब क्या करेंगे मदन दादा ? '

मदन खड़ा हुआ । वह माणिकके चेहरेकी ओर ताककर दृढ़ गंभीर स्वरसे बोला—" और क्या करूंगा, कलकत्ता तो जाता ही हूं । "

" फिर ! "

" फिर और क्या ? उसे लाऊँगा । मैं चाहे कैसा ही होऊं, पर हूँ उसका स्वामी । मेरी देहमें प्राणके रहते चाहे मेरे पतित्वकी मर्य्यादापर, मनुष्यकी मर्यादापर, स्याही पोतकर वह दूसरेकी स्त्री होगी ! वह मेरी मान है । दूसरेके घर मैंने अपना मान डाल रक्खा है । मेरे उसी मानके साथ वे लोग दगा करते हैं । नहीं, माणिक

ऐसा कभी होने न दूँगा। मुझे किसका डर है। मैं उसका पति हूँ, वह मेरी स्त्री है। पतिके अधिकारके बलसे उसे जबरन ले आऊँगा। देखूँगा, कौन बाधा डालता है?"

जयाने कहा—"बाधा डालनेसे क्या लौट आयेगा? मानसे बढ़ा प्राणभी नहीं है। प्राण देकरभी मानकी रक्षा करना। माणिक साथ जायगा, इसे तुमको देती हूँ। जबतक तुम्हारे इस मानकी रक्षा न हो तबतक यह तुम्हारा है, मेरा नहीं।"

"दादा ठाकुर! दादा ठाकुर! तुम लोग यहाँ हो? बड़े गजबकी खबर मैंने सुनी है!"

गदा घबराया हुआ आकर यह बोला। बड़ी घबराहट और उत्कंठाके कारण गदाकी अस्थिर दृष्टि और विवर्ण चेहरा पागल जैसा हो रहा था।

माणिकने विस्मयपूर्वक पूछा—'क्या है गदा? तूने इतने बीचमें ही यह खबर कहांसे सुनी?"

"आँ, तुम लोगोंनेभी सुन लिया है, मालूम होता है! वाह अभाग्य। मैंनें सोचा था कि मैं ही पहले दादा ठाकुरको खबर दूँगा। पर तुम लोगोंनेभी सुन लिया है, चलो अच्छाही हुआ। फिर इसका कुछ उपाय न करोगे?"

"उपाय करनेही तो कलकत्ता जाता हूँ।"

"कलकत्ता जाकर इसका क्या उपाय करोगे?"

गदाकी बेवकूफीसे विरक्त हो माणिकने कहा—"नालायक, गधा, कलकत्ता न जायँगे तो यहां बैठे हुए इसका क्या उपाय करेंगे?"

गदाने उत्तर दिया—"तुम्हारी बुद्धिको क्या हो गया है, कह नहीं सकता। कलकत्ता जानेसे इसका क्या उपाय होगा? तुम लोग तो आज कलकत्ता जाते हो, इसी बीचमें यदि व्याह हो जाय, तो फिर क्या होगा? जब व्याह ही हो जायगा, तब मुकदमा लड़कर जीतनेसे भी क्या लाभ, यह मुझे समझ नहीं पड़ता।"

गदाकी इस समालोचनासे विरक्त हो मदनने धमका कर कहा—"चल, हट पाजी, क्या बकवाद शुरू की है, अहमक कहीं का!"

गदाने सोचा बड़ी मुश्किल है। ये लोग किसी तरह नहीं समझते। और समझाने परभी नाराज होते हैं। उसने जया के पास जा धीरे-धीरे कहा—"देखो फूफी! इन लोगोंकी बुद्धि तो मारी गई है। किस खयालसे ऐसी बुद्धि हो गई है, ये लोगही जानें। ये लोग तो आज कलकत्ता जायँगे, मुकदमा लड़नेमें कितने

दिन लगेंगे, इसका ठिकाना नहीं । मुकदमा जीतेंगेभी तो भी ६ महीनेसे कम न लगेंगे। इधर आज नहीं, तो कल यदि व्याह हो ही गया, तो छः महीनेके बाद मुकद्दमा जीतकरभी ये लोग क्या करेंगे, यह तो मुझे बता दें। जमुना बहनका, देखता हूँ, भाग ही फूटा है, इसीसे सार्वभौम ठाकुर काशी चले गये हैं।"

"यमुना! यमुना कौन रे?"

गदाने कहा—"हरे राम! देखताहूं, तुमतो आकाश से गिरी! मैं तो जमुना बहनके व्याहकी बात कहता हूं"

मदन और माणिक अपार विस्मयके साथ बोल उठे—"यमुनाका व्याह! क्या कहता है?"

"देखो! ये सब मानों आकाशसे गिरे! मैं तो जमुना बहनके व्याहकी बात कहताहूं। फिर तुमलोग किसके व्याहका उपाय करनेको कलकत्ता मुकद्दमा लड़ने जाते हो?"

"सब बहुत घबराये। गदा कहाँसे यह खबर सुन आया? बात क्या है?"

मदनने बहुत घबराकर पूछा—"तू यमुनाके व्याहके बारेमें क्या सुन आया है, कह न?"

गदा—"मैं वही तो कहने आयाथा, पर तुम लोगों ने सुना कहाँ। देखो, दिन गिरहोंका फेर है! नहीं तो इतनी देर तक नाहक बकवाद क्यों करते?"

गदाने विरक्ति प्रकटकर कहा—"हाँ। मैं हुआ अब गधा। बड़ी बुद्धिकर सब-लोग चले थे कलकत्ते! यह गदा था, यही खैर हुई। नहीं तो फिर क्या होता कहो तो। हाँ, मैं हुआ अब गधा!"

मदनने भौंएं टेढी कीं। माणिकने देखा कि नाराज होने और धमकानेसे गदा सीधे तौरसे सब बातें न कहे। माणिक गदाके पास गाठ आया। उसने गदाकी पीठ ठोंकी और उसे सन्तुष्टकर कहा—"नहीं गदा, तू बडा होशियार है। हम लोग ही गधा है, इसीसे तुझे गधा कहा है। अब बतला तो क्या सुन आया है?,"

गदाने गंभीर भावसे मुँह-आँखें मटका कर कहा—"सुनो, वही कहता हूँ। वह बड़े गजबकी बात है। अच्छी तरहसे कान देकर सुनो। वे जो शूलपाणि बाबू हैं,-तुम नाराज़ होगे, वे तुम्हारे मामा हैं,—वे भले आदमी नहीं हैं। ओः!"

" नहीं, मैं नाराज़ न हूँगा, तू कह। "

गदाने कहा—" उनके साथ जो मुखोपाध्याय आते हैं, उनका घर मेरे देशकी ओर है। उनकी बहुत बड़ी बदनामी है। सच है, या झूँठ, कुछ कह नहीं सकता, आँखोंसे मैंने कुछ देखा नहीं है, पर लोग कहते हैं।"

मा—" क्या कहते हैं, लोग ? "

ग—" वे बहुत अच्छे कुलीन हैं, सब जगह व्याह कर आते हैं। इन कुलीनोंके घरमें लड़कियाँ भी बहुत हैं ! और मालूम होता है, लड़कियाँ सब सुन्दर होती हैं। "

मा—" तो उनकी बदनामीकी बात कह न। "

ग—" वही तो कहता हूँ। छोटे दादा ठाकुर, बड़ी खराब बात है। लोग कहते हैं कि वे अच्छी-अच्छी लड़कियाँ देखकर उनसे अपना व्याह करते हैं और फिर उनको लाकर शूलपाणि बाबूको देते हैं। यह बड़े पापकी बात है। ऐसा करनेसे लोग कहते हैं, वंश लुप्त हो जाता है।"

मा—" फिर क्या ? "

ग—" वे जो सिरीनाथ ठाकुर हैं,—कहूँ क्या छोटे दादा ठाकुर,—कैसे देवताकी तरह सार्वभौम ठाकुर हैं, उनके पुत्र हो वे क्या कुकर्मकरने चले हैं ? विश्वकर्मका पुत्र चमगीदड़ हुआ और क्या ? "

माणिक असल बात कुछ-कुछ समझ गया। उसने गदासे पूछा—" हाँ, शायद श्रीनाथ ठाकुर मेरे मामासे मिल चोरीसे मुखोपाध्यायके साथ यमुनाका व्याह कर देना चाहते हैं ? यही न ? "

गदाने कहा—" ओः ! कहता तो हूँ, ऐसे गज़बकी बात कभी सुनी है ? उन लोगोंने क्या कम फन्दा रचा है ? सारबभौम ठाकुर घरमें नहीं हैं। उन लोगोंको यहभी मालूम हो चुका है कि तुम दोनों कलकत्ता जा रहे हो। उन लोगोंने ठीक किया है कि ठाकुरबाड़ीमें जो पुरोहित है और जो सिरीनाथ ठाकुरके साथ गाँजा पीकर फिरता रहता है, उसीके जरिये ठाकुरबाड़ी में सब बनोबस्त किया जायगा। कल रातको ही वे जमुनाके साथ मुखोपाध्यायका व्याह कर देंगे ? तुम लोग कोई यदि घरमें न रहे तो फिर गंगा फूफी क्या कर सकेंगी ? वे चोरीसे जमुनाका

ब्याह कर देंगे । पीछे तुम लोग जानकर क्या करोगे । जबसे दादा ठाकुर मैंने यह सुना है तबसे मुझको करोध चढ़ा है । अब इसका कुछ उपाय करो । ”

“ हुँ ! तूने सुना कैसे और किससे ? ”

“ शूलपाणि बाबूका नौकर रतन मेरा साथी है । दिनमें तो फुरसत नहीं मिलती, रातमें घरका सब काम-काज हो जानेपर रतनके यहाँ जा सुख-दुःखकी बातें कहता सुनता हूँ, तमाखू भी पीता हूँ । किसी दिन अगर रात अधिक हो जाती है, या पानी बरसता रहता है, तो वहीं सो रहता हूँ । डरके मारे नहीं आता ; लोग कहते हैं कि वह इमलीका पेड़ अच्छा नहीं है । निताई ठाकुर, जिनका खून हुआ है, लोग कहते हैं उसी इमलीके पेड़पर बरम (ब्रह्म) हो रहते हैं । रतनने उनको एक दिन देखा है । ”

“ फिर शायद तूने वहीं सब सुना है । श्रीनाथ ठाकुर रातमें शायद आते-जाते हैं ? ”

गदाने कहा-“ हाँ, मैं सोचता था, यह क्या बात है ? उन लोगोंने सारवभौम ठाकुरको जातिसे अलग कर दिया, फिर सिरीनाथ ठाकुर रातमें उन लोगों के यहाँ क्यों आते-जाते हैं ? मनमें बड़ा खटका होने लगा । मैंने सौचा, चलूँ सुनूँ बात क्या है ? ”

मा—“ तो शायद तूने छिपकर सब बातें सुनी हैं ? ”

ग—“ हाँ, देखता हूँ, तुम आपने आपही सब बातें समझते जाते हो । देखता हूँ, तुमको कुछ बतलाना न पडेगा ? ”

मा—‘ मेरे मामा श्रीनाथ ठाकुरको रुपया पैसा कुछ देते हैं ?

ग—“ दिया है न ? कल पचास रुपया पेशगी दिया है ! ब्याह हो जानेपर और भी रुपये देगा । और उनकी नौकरी भी लगा देगा । सिरीनाथ ठाकुरको अब दुःख न रहा । बाप खानेकी भी न देगा तो दूसरा बाप देगा ! ”

मा—“ कितने दिनों से ये लोग सलह कर रहे हैं ? तूने कब सुना ? ”

ग—“ वही जिस दिन बड़े दादा ठाकुरकी जाति गई, उसी दिन उनके यहाँ पहले-पहल सिरीनाथ ठाकुरको देखाथा । फिर तबसे रोज ही जाते देखता हूँ । मैंने सब बातें सुनी हैं कल रातको । कल रातको ही आनेवाला

था, पर देखो उस इमली के पेड़की डालें हिल उठीं, चमगीदड भी हो सकते हैं,—जिससे देहके सब रोयें खड़े हो गये और देह कँपने लगी, फिर बहुत डर मालूम होने लगा। इससे लौट जाकर रतनके बिस्तर पर पड़ रहा। सारी रात आँखें बन्द न कर सका। पर सबेरे गिरलके दोष से सो गया। जब आँखें खुलीं तब देखा इतनी बेला हो गई है। उठते ही दौड़ता आयाहूं, चिलम तक भी नहीं पी है।"

गदाकी विस्तृत बातें बहुल मुश्किल से पूरी हुईं। वह तमाखूकी खोजमें गया।

जयाने कहा—"छि छि छि छि! ये लोग क्या मनुष्य है! मनुष्य यहाँतक कर सकता है। मदन! जोहो कोई उपाय तो कर।"

रोषके साथ दृढ़ स्वरसे मदनने पूछा—"साहस है माणिक? साहस हैं जया फूफी?"

"क्या करना होगा दादा? तुमने कभी माणिक को डरते देखा है?"

जयाने भी कहा—"क्या करना होगा बेटा, कह। यमुनाकी रक्षा करनेके लिए तू जो ही कहेगा, मैं वही करने को तैयार हूँ।"

गदाने तमाखू भर कर मदनके आगे रक्खी। मदनने उधर न देखा; कहा—"इस पशुकी पाप-दृष्टि जब यमुना पर पड़ी है, तब वह सहज ही पीछा न छोड़ेगा। आज हम लोग यमुनाकी रक्षा कर सकते हैं, किन्तु इस धूर्त पिशाचके बहुतेरे सहायक हैं, उसके पास रुपया-पैसा भी खूब है, वह चालाक भी है। उसको कुछ भी असाध्य नहीं। कब क्या करेगा, इसका ठिकाना क्या? इसलिए यदि इस दानव के हाथसे यमुनाको बचाना है, तो आजही किसी उपयुक्त पात्रसे यमुनाका ब्याह कर देना होगा।"

जयाने कहा—"बेटा मदन, इस गाँवमें तुह्मारे सिवा यदि और कोई दूसरा यमुनाका व्याह करके उसकी रक्षा कर सकता है, तो वह मेरा माणिक है। यह लो बेटा, मेरे माणिकको ही लो। इसके हाथ यमुनाको सौंपो। सार्वभौम ठाकुर नहीं है, इस वक्त तुह्मी यमुनाके अभिभावक हो।"

"क्यों, कर सकेगा माणिक? साहस है?"

"कर सकेगा माणिक,—साहस है माणिक। यदि न कर सकेगा तो माणिक मेरा लड़का नहीं, मैं भी माणिककी माँ नहीं। 'माणिककी माँ' यह मेरा नाम गौरवका नहीं; कलंकका नाम है।"

जयाने लड़केकी ओर देखा । पुत्रनेभी उत्तर दिया—" माणिक तुह्मारा लड़का है माँ । ' माणिककी माँ ' यह तुह्मारा नाम गौरवका नाम है, कलंकका नहीं । "

मदनने कहा—" तू माताकी योग्य सन्तान है, माणिक । यदि कोई इस पापीकी पापेच्छासे यमुनाकी रक्षा कर सकता है, तो वह तू ही है । "

" दादा ठाकुर आग तो बुझी जाती है ? " गदाने यह कह हुकाकी ओर मदनकी दृष्टि आकर्षित की । मदन हुका ले चौकीपर बैठ गया ।

जयाने पूछा—" हाँ मदन, क्या आजही ब्याह करना होगा ? "

" हाँ जया फूफी आज ही । अब देर करना ठीक नहीं है । विवाह हो जाने पर ही यमुना निरापद होगी । "

" किन्तु तुम लोग तो आज कलकत्ता जाते हो ? "

मदनने तमाखू पीते हुए कुछ सोचा, अनन्तर माणिकको हुका दे कहा—" तो हर्ज क्या ? विवाह भी आज ही होगा, कलकत्ताको भी आज ही रवाना होंगे । व्यर्थ वासनासे पिशाच उन्मत्त हो जायगा । केवल तुम लोगोंके पास यमुनाको छोड़जाना उचित न होगा । चोरीसे यमुना का व्याह कर दूँगा और उसे और तुम सबको साथ ले कलकत्ता जाऊँगा । "

गदाने मन ही मन कहा—" देखो, बुद्धिकी दौड़ । जमुना जब भानजेकी बहू हो जायगी, तब क्या वह कुछ कर सकेगा । भानजेकी बहूको छूना नहीं होता, देखना नहीं होता । पर यदि कालनेमि मामा हो तो सब कुछ कर सकता है ।"

गदा माणिकके हाथसे हुकाले ओटमें चलागया और दूसरे हुकेपर चिलम रख तमाखू-पीते पीते बातें सुनने लगा ।

जयाने कहा—" तो अभीही चलकर कलकत्तामें व्याह क्यों न करें । "

मदनने कहा—" नहीं फूफी, पता पातेही वह पृथ्वीको उलट-पलट डालेगा । रास्तेपर या कलकत्तामें, कहाँ क्या विपद आये, इसका कुछ ठिकाना नहीं । जब यमुनासे माणिकका व्याह हो जायगा और यमुना माणिककी स्त्री हो गई तो फिर चाहे जो हो वह माणिककीही स्त्री कही जायगी । अपनी स्त्रीकी रक्षा करनेका अधिकार माणिकको जैसा होगा, वैसा अधिकार अज्ञातकुलशीला यमुनाकी रक्षा करनेको नहीं और यदि पापी मुखोपाध्याय यमुनापर अपनी स्त्री होनेका दावा कर सकेगा तब फिर माणिक क्या कर सकेगा । सुनो, तुह्मारा घर एकान्तमें है । अत्यन्त गुप्त-

रीतिसे तुम और गंगा फूफी अपने घरमें व्याहका इन्तज़ाम करो। रात होते ही व्याह करके सब लोग रवाना हो जायँगे। माँसे भी बातें समझा कर कह देना, उसको भी साथ ले जाना होगा।"

गंगाने कहा—" अच्छा बेटा, मैं जाती हूँ, गंगासे सब बातें कह इन्तजाम करूँ। बड़ी बहूसे उस वक्त कहना होगा। तुम लोग चीज़ोंका फर्द बनाकर बाज़ार जाओ।"

गदाने हुक्काको रख आकर कहा—" तुम लोग फरद बनाओ और मैं एक टोकनी ले किसी रास्तेसे जा बाज़ारमें बैठता हूँ। टोकनी लेकर तुह्मारे साथ चलनेसे लोग सोचेंगे कि इनके घर आज क्या है, जो नौकरके सिरपर टोकनी रख बाज़ार चले हैं।"

" अच्छा जा, किसीसे कुछ कहना नहीं।"

" वाह! मै कहूँगा; । कहना होता तो टोकनी ले आगे क्यों जाने कहता?"

गदा फिर एक चिलम तमाखू भरकर दादा ठाकुर के आगे रख गया।

फर्द तैयार हो जानेपर मदन और माणिक बाज़ार चले। रास्ते पर माणिकने कहा—" मदन दादा, डरके मारे देह न मालूम कैसी हो रही है।"

" क्यों, डरता है?"

हाँ डरता ही हूँ, पर मामाके क्रोधका डर नहीं है। यमुनाके साथ व्याह होना है! ऐसी-वैसी कोई लड़की होती तो ठीक था।"

" कहता क्या है? यमुना जैसी लक्ष्मी लड़कीसे व्याह करनेमें डरता है?

" वह बहुत बड़ी लक्ष्मी है दादा। और मैं बिल्कुल अभागा हूँ। सार्वभौम ठाकुरके पास पूजाके वक्त बैठी हुई गद्गद चित्तसे कीर्त्तन करती है, मानों कोई देवकन्या स्वर्गसे उतर आई हो। मेरी टेढ़ी चालें क्या उसे अच्छी लगेंगी। यह व्याह तो बहुत बेमेल होगा दादा? यमुनाको बहू समझकर उसके पास कैसे फटक सकूँगा? सोचता हूँ मैं भेंड बन जाऊँगा।"

" मै अपनी उस बीबी बहूके पास क्यों जा रहा हूँ?"

" बीबी होते हुए भी वह मनुष्य है, पर यह तो देवकन्या है।"

" पर तू भी तो देवीपुत्र है। दोनोंका अच्छा जोड़ा है।"

ग्यारहवाँ परिच्छेद ।

ऋण ।

सार्वभौम ठाकुरके घरके बगलमें एक सुन्दर फुलबाड़ी है । फूलबाडीमें बारह महीने तरह तरहके फूल फूलते हैं । इस फुलबाड़ी में फूलोंसे लदे जवाफूलके एक पेड़से टिककर यमुना खडी है । फूलोंके सहित छोटी-छोटी हरी-हरी डालियोंके पत्ते यमुनाके सिर, चेहरा, छाती और बाहुपर झूल रहे हैं । यमुनाका चेहरा उदास है, जबसे सार्वभौम ठाकुर गये हैं, तबसे यमुनाको कुछ नहीं रुचता । देवीके होठों पर वह मुस्कुराहट नहीं देखती । वह इस फुलबाडीमें रोज देवीको खिले फूलों के गहने पहनाती थीं, और देवीके होठों पर मुसक्यान देखकर मुस्कुराती थी । किन्तु इन कई दिनों से वह मुस्कुराहट देख नहीं पाती । आज भी वह फुलबाडीमें आई है; किन्तु देवीके होठों पर मुस्कुराहट नहीं; फूलोंके गहनोंमें मुस्कुराहट नहीं, उसके हृदयके भीतर भी मुस्कुराहट नहीं । यमुना जवाके फूलके नीचे खडी हास्यहीन उदास हृदयसे और करुण दृष्टिसे देवीके चेहरेकी ओर ताक रही है ।

गंगा और यमुना दोनों ने जल्दी-जल्दी फुलबाडीके भीतर प्रवेश किया । जवाके पेडके तले यमुनाकी यह अपूर्व शोभामयी मूर्ति देखकर दोनों मुग्ध हो खडी हो गईं ।

गंगाने कहा—" आहा, देखो जयादीदी बेटी भगवती दुर्गाकी तरह जवाके पेड़के तले कैसी शोभा छिटका रही है । देखो, कैसी निश्चिन्त खड़ी है । आज उस पर कैसी आफत आयगी, इसकी उसे मानों कुछ भी खबर नहीं । "

जयाने कहा—" आफत क्या है गंगा ? आज हम लोगोंके लिए यह बड़े सुख, बड़े आनन्दका दिन है । आज हमारे हरगौरीका विवाह है, रामसीताका मिलन है । "

जया और गंगा बढ़कर यमुनाकी ओर गईं । यमुना उन दोनोंको देखकर उनके पास दौड़ गई और बोली-" माँ माँ, भगवतीके होठोंपर आज हँसी नहीं ! क्यों ? मेरा हृदय रो रो सा उठता है । दादा कब आवेंगे ? उनके आनेपर भगवती क्या फिर मुस्कुरायेंगी ? "

" भगवती क्या तुझे कम चाहती हैं यमुना ? तूने यही चिन्ता करके भग-

वतीको नाराज कर दिया है। चिन्ता न कर बेटी। मुस्कराते हुए प्रसन्नतापूर्वक भगवतीको देखें, भगवतीके होठोंपर मुस्कुराहट देख पायेगी।"

"सचही देख पाऊँगी माँ ? भगवतीके निकट जैसे दादा हैं, वैसेही मैं भी हूँ। अच्छा माँ, तो ये जवाके फूल तोड़ लाऊँ ? दादाकी तरह मैं भी भगवतीके चरणों-पर रक्तचन्दन लगा अंजलि हूँ। देखूँ, माँ मुस्कुराती है या नहीं? वे दादाकी तरह मुझे भी प्यार करती हैं या नहीं?"

"अच्छा जा, पर इस वक्त कुछ खाना नहीं। शामको तुझसे मङ्गलचण्डी कराऊँगी।"

"मङ्गलचण्डी क्या शामको करना होता है माँ ? फिर आज सोमवार है।"

"अच्छा तो सोमवार का उपवास करना। जा, उस वक्तकी शिवपूजाके लिए कुछ फूल तोड़ ला।"

"उपास करना ही होगा। क्यों ? माँ तुमको क्या हो गया है ? मुँह सूख गया है, पगली जैसी दिखाई देती हो !"

कुछ हुआ नहीं है बेटी, तू घर जा। मैं जया दीदीसे दो बातें करके आती हूँ। जा जवाके फूल तोड़ ले आ। जा, माँके चरणोंपर अँजलि दे।"

यमुना जवाके फूलोंसे अपना आँचल भरकर घर गई।

गंगाने कहा—" जया दीदी, तुमसे एकान्तमें दो बातें करनी हैं, इसलिए तुमको यहाँ लाई हूँ। तुम तो यमुनाका कुलशील कुछ भी नहीं जानतीं, वह किसकी लड़की है, यह भी तुम्हें मालूम नहीं है, तो भी अपने लड़केसे उसका व्याह करनेको राजी हो ?"

जयाने उत्तर दिया—" यमुना तेरी लड़की है, सार्वभौम ठाकुरने उसका पा-लन-पोषण किया है, वह स्वयं भी रत्न है। कुलशील जानकर क्या करूँगी बहन ? मैं कुछ भी जानना नहीं चाहती।"

"तुम्हारा मन बड़ा ऊँचा है जयादीदी। तुम माणिकके योग्य माता हो। इसीसे तुम कुछ भी जानना नहीं चाहतीं। किन्तु मैं तो जानती हूँ। आज तुम नरकके मुँहसे मेरी यमुनाको खींचे लेती हो। म तुम्हें क्या धोखा दूँ।"

जयाने गंगाका हाथ पकड़कर कहा—" गंगा बहन, यमुनाके कुलशीलमें चाहे

कोई दोष हो, चाहे कोई कलंक हो, पर मैं आज कुछ जानना नहीं चाहती । आज यमुनापर बड़ी आफ़त है, आफतसे उसका उद्धार हो, इसके बाद जो होगा, होगा। बहन, मनुष्यके मनको कौन जान सकता है ? मैं तेरी लड़कीको शायद छोड़ सकूँगी, पर माणिककी बहूको कभी छोड नहीं सकूंगी । ”

गंगाने कहा—“ धर्म साक्षी है, यमुनाके कुलशीलमें कोई दोष नहीं है, कोई कलङ्क नहीं है । फिर भी लोगोंने बिना जाने-सुने ही मुझपर एक दिन कलङ्क लगाया था । इसीसे तुमसे कहने आई हूँ । तुम मेरी बातों पर विश्वास करोगी दीदी ! ”

“ तेरा विश्वास न करूँगी बहन ? तेरे मुँहकी बात मुझे पृथ्वी भरके लोगोंकी हजारों बातोंसे अधिक मान्य है। ”

गंगाने कहा—“ तब सुनो दीदी, आज तुमको सब बताऊँगी । दीदी मेरा भाग्य बहुत फूटा है । राजाके घर पड़ीथी, भाग्यके दोषसे आज इस तरह मारी मारी फिरती हूँ । यमुना मेरी राजाकी लड़की है, वही आज अनाथकी तरह पिशाचकी कुदृष्टिमें पड़ नरकमें डूबनेवाली थी । ”

गंगाका गला रुँध आया । उसकी आँखोंसे आँसू झरने लगे । आँचलसे मुँह छिपा गंगा रोई ।

जयाने स्नेहपूर्वक ढाढ़स देकर कहा—“ रो नहीं बहन ! स्थिर होकर सब बातें कह । तेरी बात सुनकर मुझे अब सब बातें सुननेकी इच्छा होती है ।”

गंगाने आँखें पोंछकर कहा—“ कहती हूँ दीदी, सुनो । अब न रोऊँगी । रोनेसे कह न सकूँगी । मेरी कहानी बहुत दुःखभरी है दीदी ! सब बातें कहनेपर तुम मुझे पहचान सकोगी । मैं भी दीदी तुमको पहचानती हूँ । किन्तु मैंने अपना परिचय कभी नहीं दिया । ”

जयाने विस्मयपूर्वक गंगाके चेहरेकी ओर देखा; कहा—“मैं तुझे पहचान सकूँगी ? तू मुझे पहचानती है ? फिर तू कौन है बहन, जो हम लोगोंके बीच अबतक छिपी थी ?”

सिर झुकाकर लड़खडाती हुई कोमल आवाजसे गंगाने कहा—“ जो मदनके ससुर हैं, वे ही मेरे जेठ हैं । ”

मानो जयाके सिरपर सहसा बज्रागिरा । वह शून्य दृष्टिसे गंगाके चेहरेकी ओर ताकती अचेतसी खड़ी रही । उसके चेहरेका रक्त उड़ गया, आँखोंमें ज्योति नहीं

रही, छाती नहीं धड़कती, नाडियोंमें रक्त निश्चल हो गया। सहसा जयाने दीर्घ निश्वास छोड़ी। उसकी आँखोंमें तीव्र वेदनाकी ज्वाला जल उठी, चेहरा लाल हो गया। ललाटपर पसीना दिखाई पड़ा। छाती बहुत धड़कने लगी, सारा शरीर काँपने लगा।

असहनीय दुःख, क्षोभ और लज्जासे अभिभूत हो जयाने जल्दीसे कहा—"तू ही वह है! तू ही अभागे हरगोपालकी स्त्री अमला है? यमुना तेरी ही लड़की है? सब बातें मुझे मालूम हैं बहन! कह, बहन कह, तुझपर क्या बीती थी? तू कहाँ थी? कैसे यहाँ पहुँची?"

गंगाका सिर लज्जासे नीचे झुक गया। उसने करुण कंठसे कहा—"तुम दीदी सब बातें सुनकर बहुत दुःखित होगी।"

जयाने कहा—"वह दुःख मैंने छातीमें भर लिया है बहन? मैं क्या नहीं जानती? इस कुलक्षिणीके पतिने ही तेरा सर्वनाश किया है। गंगा, क्या वे सब बातें सच हैं? सच ही क्या वह हरगोपालका खून करके तुझे भगा ले गया था? और जो कुछ किया हो, सब कह गंगा, वह बड़ा सर्वनाशी आदमी था;-तेरे सतीत्वका तो उसने सर्वनाश नहीं किया?"

गंगाने कहा—"सतीका मान, सतीका सतीत्व, दीदी, भगवती रखती हैं। अनेक कष्टोंसे उनके फन्देसे निकल भागी थी।"

जयाकी बेचैनी बहुत कुछ दूर हुई। ज़रा चिन्ताकर जयाने फिर पूछा—"और वह खूनकी बात—वह तो ठीक है?"

गंगाने कहा—ठीक दीदी मैं भी नहीं कह सकती। मैंने अपनी आँखोंसे कुछ देखा नहीं है। घर छोड़नेके बाद हम लोग कई दिन एक बजरेमें थें। एक दिन एक बड़ी नदीके किनारे हम लोगोंका बजरा बँधा था। बस्ती पास न थी। शामको वे दोनों घूमने गये। रातमें रामताररण बाबूने आकर कहा कि उनको मगर पकड़ले गया।"

"फिर?"

"आफ़तमें फँसनेपर दीदी भय, शोक, दुःख सब दब जाता है। मैं रोई नहीं। मेरी उम्र कम थी, गोदमें यमुना थी,-कहूँ क्या दीदी, उनसे मैं पहलेसे ही डरती थी। पतिके न रहने पर और उनके हाथ पड़ने पर मुझे ऐसे दारुण शोककी

अपेक्षा सतीत्व-रक्षाकी ही फ़िक्र अधिक हुई । उनके पाँव पकड़कर—नहीं दीदी, जाने दो, इन बातोंकी अब कोई ज़रूरत नहीं । ”

जयाने कहा-“ नहीं कह, गंगा । मैं सारी बातें सुनना चाहती हूँ । सब बातें सुनकर मैं और माणिक दोनों तेरे और तेरी यमुनाके निकट उनके पूर्व पापोंका प्रायश्चित करेंगे । ”

गंगाने कहा-“ छि दीदी ! ऐसी बात कहती हो ? उन्होंने चाहे कुछ किया हो, पर आज तुमने विपद्के समय यमुनाकी रक्षाकर सब ऋण चुका दिया । ”

जया-“ वह ऋण सहजमें चुकनेवाला नहीं गंगा । आज तू यमुनाके साथ उनके ही कारण विपदमें पडनेवाली थी । ”

गंगा—“ माणिक क्या उनका देनदार है दीदी ? माणिक जो कर रहा है, वह बल्कि ऋण देना है, ऋण चुकाना नहीं है । ”

जया-“ पुत्र पिताके ऋणका सदा ऋणी और देनदार होता है । जाने दे यह बात, तू कह बहन, सब बातें सुनना चाहती हूँ ।”

गंगा-“ उनके पाँव पड़कर दीदी, रोते हुए उनको बाबा कह, यमुनाको उनके पावों तले डालकर मैंने उनका आश्रय माँगा । अपने ससुरके यहां भेजवा देनेके लिए उनसे बिनती की । किन्तु उन्होंने मेरी बिनती पर बिलकुल ध्यान न दिया । उन्होंने मेरा रुपया-पैसा और गहना-जेवर सब ले लिया । उन्होंने माझियोंको जिस ओर बजरा ले जानेको कहा, वे उसी ओर बजरा ले चले । उन्होंने शायद माझियोंको रुपये दे अपने वशमें कर लिया था । मेरे पतिका एक बुड्ढा विश्वासी नौकर, जो कुछ भोला-भाला था, कुछ दस्तन्दाजी करता था, इससे उसे मार भगाया । उसीने शायद मेरे ससुरसे आकर कहा था कि रामतारण बाबू मेरे पतिका खून करके मुझे साथ ले भाग गये हैं । ”

जया-“ हम सबने भी यही सुना था । फिर तू कैसे भाग आई ! अपना धर्म तूने कैसे बचाया ? ”

“ गंगा-शोक और भयसे मुझे बहुत कातर देख कर हो, या चाहे जो सोचकर हो, पहले कई दिन उन्होंने मुझसे कोई बुरी बात नहीं कही, मेरे पास आयेभी नहीं । मैं इसी बीचमें भाग चली । ”

जया-“ कैसे भागी ? ”

बजराको बिदा करनेके बाद एक दिन वे मुझे ले किसी रेल स्टेशन पर गये! उन्होंने मुझे खूब डरा धमकाकर कहा कि यदि किसी तरहका गोलमाल करेगी तो पुलिसको यह कह कर पकड़ा देंगे कि यह घरसे भाग आई है। डरके मारे दीदी मैं चुप हो रही। मुझे साथ ले वे गाडीपर चढे। उन्होंने स्टेशनके लोगोंको रुपये दे गाडीमें चाबी लगवा दी। और कोई गाडीपर न चढ़ा।"

जया-" राम! राम! फिर?"

गंगा—" वे शराब बहुत पिये हुए थे, इससे गाड़ी छूटनेके बाद जल्दी ही सो गये। मैंने सोचा कि भागनेका ऐसा अच्छा मौका फिर न मिलेगा। मैंने एक कपड़ा निकालकर गाड़ीकी खिड़कीसे बाँधा और एक कपड़ेसे यमुनाको पेटसे बाँध लिया। अनन्तर एक छोटेसे सूनसान स्टेशनपर जब गाड़ी ठहरी, तब मैं यमु-नाको लिये उसी कपड़ेके सहारे खिड़कीके रास्तेसे झूलकर गाड़ीके पीछेकी ओर उतर गई। पर जल्दीके मारे उतरते ही एक गढ्ढेमें गिर गई। गाडी चली गई; स्टेशनके सब लोग घर चले गये। तब मैं उठी और अँधेरी रातमें यमुनाको लिये हुए जिधर ही रास्ता पाया उधर ही चल पड़ी।"

जया—" फिर?"

गंगा—" दूसरे दिन सवेरे एक गृहस्थके घर पहुँची। बहुत हैरान-परेशान हो रही थी। उन लोगोंने मुझे आश्रय दिया। मैं दो दिन वहाँ रही। यमुनाके हाथमें सोनेके दो कड़े पड़े थे, मैंने उनको बेंचकर रुपया लिया और फिर रास्ता नापा। मैं ठहरी औरत दीदी, रास्ता मालूम न था, बहुत दुःख उठाकर भटकती हुई अन्तमें ससुराल पहुंची। किन्तु दीदी ससुरने मुझे कुलटा कहकर निकाल दिया। और लोग भी मुझे कुलटा ही जानते हैं।"

गंगाने रोकर फिर आँचलसे मुँह छिपा लिया। जयाने कहा—" रो नहीं बहन, लोग चाहे जो कहें; लोग तो यही जानते हैं कि तू मर गई है, इसलिए तू मरी ही बनी रहे। यदि कभी भगवती दुर्गा मुँह उठाकर देखेंगी तो यह कलंक दूर हो जायगा, और फिर तू लोगोंके आगे सिर ऊंचा कर खड़ी हो सकेगी। फिर सार्वभौम ठाकुरका आश्रय तुझे कैसे मिला?"

गंगाने कहा-" मैं निराश्रय हो दीदी, काशी गई। सुना था कि भगवती अन्न-पूर्णाकी कृपासे लोग वहाँ दुःख नहीं पाते। मेरे पास रुपया-पैसा जो कुछ था, वह

सब खर्च हो गया । तब अन्नपूर्णाके द्वारपर आँचल बिछा भीख माँगने लगी । किन्तु दीदी भीखसे गुजर न होता था । अनन्तर एक दिन एक काशीवासिनी विधवा मुझे अपने घर ले गई । वे बहुत बूढ़ी थीं । मैं उनको खाना बना देने और उनकी सेवा-सुश्रूषा करने लगी । अपनी लड़कीकी तरह वे मुझपर स्नेह रखती थीं। वे सार्वभौम ठाकुरकी माँ थीं । सार्वभौम ठाकुर माँसे मिलनेके लिए प्रायः काशी जाते थे । वे भी मुझपर और यमुनापर बहुत स्नेह रखते थे । अनन्तर जब उनकी माँ को काशी-प्राप्ति हुई, तब वे मुझे और यमुनाको अपने घर ले आये । तबसे मैं यहीं हूँ । घर आते वक्त मैंने उनको अपना परिचय दिया था । उन्होंने मुझसे तुम्हारी चर्चा की थी । ”

जयाने कहा-“ मुझे जाननेपर मुझपर और माणिक पर तुझे घृणा नहीं हुई ? ”

“ नहीं दीदी, मैं तुम लोगोंसे घृणा करती हूँ, यह तुमको कभी मालूम हुआ है ? तुम भी तो दीदी, मेरी ही तरह दुःखिनी हो, माणिक तो मेरी यमुनाकी ही तरह पितृहीन है । मुझे घृणा नहीं हुई दीदी, दुःख ही हुआ । इसीसे दीदी तुमको इतना अधिक चाहती हूँ, माणिकको अपने सगे लड़केकी तरह देखती हूँ ।”

जयाने गंभीर दीर्घ विश्वास छोड़कर कहा—“ बहन, तुम्हारा यह दुःख भूलने का नहीं, भूल जानेके लिए मैं कभी कह भी नहीं सकती । मुझमें ऐसी शक्तिभी नहीं है कि उसके कर्मोंका कुछ प्रतिविधान भी कर सकूँ । मेरा सर्वस्व धन माणिक है,-उस माणिकको आज तुम्हें देती हूँ । यदि हो सके तो उसे क्षमा करो । उसे गये हुए कितने ही वर्ष हो चुके, कोई खबर तबसे नहीं मिली । शायद मरही गया होगा । ”

गंगाने स्नेह-करुणा कंठसे उत्तर दिया—“ अब इन बातोंको मनमें जगह न दो दीदी । माणिकको पाकर भी यदि ये बातें भूल न सकूँगी, उनको क्षमा न कर सकूँगी तो फिर कैसे कर सकूँगी । फिर किस मुँहसे अपने पापके लिए देवताके निकट क्षमा माँगूगी ? तुम्हारे स्वामीपर यदि मेरा कुछ ऋण भी हो तो तुमने मुझे माणिकको देकर उस ऋणको चुका ही नहीं दिया है, बल्कि अधिक देकर मुझे ऋणी बना लिया है ।”

जयाने कहा—“ जाती हूँ फिर बहन। बहुत देर हुई । घरमें छिपकर सब

बन्दोबस्त करना होगा। दो पहरमें एकबार मेरे घर आना। और देखना, माणिक मेरा बड़ा अभिमानी है, उसे कुछ भी मालूम नहीं, उससे ये बातें न कहनी होंगी। दूसरोंके मुँहसे चाहे वह जो सुना करे। तेरा परिचय पानेसे, तेरी सब कहानी सुननेसे उसे मर्मान्तिक दुःख होगा। यमुना अज्ञातकुलशीला प्रसिद्ध है, अज्ञातकुलशीला ही अभी रहे–इसी अवस्थामें आज उसका व्याह हो। इसके बाद समय देखकर परिचय दिया जायगा।"

"अच्छा दीदी, तो जाओ, मैं भी जाती हूँ।"

दोनों अपने–अपने घर गईं।".

बारहवाँ परिच्छेद।

हाय! हाय!

दूसरे दिन शूलपाणि बाबू बड़े फ़जर उठकर बराण्डेपर ठंडी हवामें टहल रहे थे। नये सुखकी कल्पनाकी उत्तेजनाके कारण रातमें अच्छी तरह नींद न आई थी, सिर भी कुछ गरम हो गया था।

मुखोपाध्याय भी उठकर तमाखू पीते–पीते वराण्डेपर आये। शूलपाणिने पूछा–"ओहो, मुखोपाध्याय, आदमी लौटा? गाड़ी रिज़र्व हो गई?"

"हाँ, सब ठीक हो गया है।"

शूलपाणिका सयत्न मुख मुस्कुरा उठा।

"हाः! हाः! व्याह हो जाते ही दादा गाड़ीमें दबा बैठूंगा। वासर तो दादा इस बार गाड़ीमें ही होगा। तुमको न दूँगा–समझे? हाः! हाः! हाः!"

"हिः! हिः! हिः!"

"इस बार दादा, तुमको सोनेकी एक पूँछ गढ़ा दूँगा, क्या करने आया था क्या हुआ! इसीको भाग्य कहते हैं। मानों रास्तेमें सोनेका चाँद पड़ा मिला, मानों, रास्तेमें सोनेका चाँद पड़ा मिला।

"हिः! हिः! आपके भाग्यमें स्त्रियाँ खूब हैं।"

"यह तुह्मारी कृपा है दादा! हाः! हाः! हाः!"

" हिः ! हिः ! हिः ! "

इसी समय श्रीनाथ आया । उसके चेहरेसे हवाई सी उड़ रही थी ।

शूलपाणिने पूछा—" क्यों श्रीनाथ, मदन और माणिक कल रातको ही कलकत्ते चले गये न ? "

श्रीनाथने रोती हुई आवाज से कहा—" बाबू, सर्वनाश हो गया ! वे तो गये ही, पर मेरा सर्वनाश कर गये ! "

" क्यों, क्या हुआ ? "

" किस साहससे आपसे अर्ज करूँ । मेरा एकबारगी सर्वनाश कर गये ! "

" क्यों, क्या हुआ, कह न ? उन लोगोंको मालूम हो गया क्या ? यमुनाको लेकर सटक गये ? "

" हाँ । "

" हाँ ! कहनेमें शर्म नहीं आती । अहमक, पाजी, बदमाश ! यह सब तेरी करतूत है । "

श्रीनाथने कहा—" मुझे कुछ भी नहीं मालूम । न मालूम किसने उनसे सब बातें कह दीं । वे गुप्त रीतिसे सब बन्दोबस्त कर और कल रातको माणिकसे यमुनाका व्याह कर कलकत्ते चले गये । "

शूलपाणिकी सारी देहमें आग लग गई । उनका सिर गर्म हो उठा । उन्होंने उचककर दोनों हाथोंसे श्रीनाथको दबोच लिया और झकझोरते हुए कहा—" पाजी ! हरामजादा ! बेईमान ! उल्लूका पट्ठा ! सूअर ! तू था कहाँ ? तेरे घरकी लड़कीका व्याह हुआ, और तुझे पता न लगा ?–उस वक्त तूने मुझे खबर क्यों न दी ? हरामजादा ! पाजी ! बदमाश ! शराबी ! उल्लू ! "

मुखोपाध्यायने जाकर श्रीनाथको छुड़ाया । श्रीनाथने हाँफते हुए रोते–रोते कहा—" मैं घरमें न था, नहीं तो पता क्यों न लगता ? मुझे नशेका जरा अभ्यास है, इससे अड्डेको जाता हूँ । कल लौटनेमें बहुत रात हो गई थी, आते ही मैं सो गया । अभी सवेरे उठनेपर सब सुना है । उन लोगोंने दिन भर सब बन्दोबस्त किया था । रातमें माणिकके घरमें यमुनाका व्याह कर दिया और उसी वक्त चुपचाप सब लोग, मदन, माणिक, यमुना, मदनकी माँ, माणिककी माँ और यमुनाकी माँ सब

कलकत्तेको रवाना हो गये। जाते वक्त गंगा मेरी स्त्रीसे सब बातें कह कर गई थी उसने भी कल रातमें मुझसे कुछ नहीं कहा। आज सबेरे उसने बतलाया है। उसने मेरी फजीहत भी खूब की है; कहा है कि घरमें मुझे अब खाना न मिलेगा।"

"इसीसे काला मुँह लेकर यहाँ आया है। चल हट मेरे सामनेसे, अभागा नशाखोर, उल्लू, पण्डित के घरका छछुन्दर! सार्वभौम ठाकुरके यशका कलङ्क।"

श्रीनाथने कहा—"बाबू, यदि आप अब मुझे निकाल देंगे तो मेरी क्या गति होगी? बाबाके आनेपर मैं घरमें न रहने पाऊँगा। औरतने भी आज खाना न देनेके लिए कह दिया है।"

"जैसा तू पाजी है, वैसा ही उचित दण्ड तुझे मिलेगा। तुझे निकाल नहीं दूँगा, सिरपर चढ़ाकर तेरी पूजा करूँगा। तुझे यदि टुकड़े-टुकड़े भी कर डालूँ तो भी शरीरकी ज्वाला न जायगी! पाजी! अहमक़! नशाखोर! उल्लूका पट्ठा! जा, अपनी इज्जत लेकर चला जा, नहीं तो जूते खायगा।"

श्रीनाथ डरके मारे और कुछ कह न सका। वह रोता हुआ चला गया।

शूलपाणिने कहा—"मुखोपाध्याय, अब क्या किया जाय, कहो तो ' इन लोगोंकी गर्दन तोड़कर खून पी लूँ, तो भी यह दुःख दूर न होगा।"

मुखोपाध्यायने कुछ उदासीनता प्रकट करते हुए कहा—"अब क्या करेंगे! अब तो गुपचुप ही रहना होगा।"

"गुपचुप ही रहना होगा! इसका बदला मैं लूँगा, लूँगा, लूँगा। यमुनाको दस्तयाब करूँगा, दस्तयाब करूँगा, दस्तयाब करूँगा! तब मेरा नाम शूलपाणि! देखूँगा बच्चे! क्या करते हैं? हरामज़ादे!"

मुखोपाध्यायने ज़रा मुस्कुराकर कहा—"कहते क्या हैं बाबू! ऐसा करेंगे! वह अब आपके भानजेकी बहू है।"

क्रोधसे उन्मत्त हुए शूलपाणिने मुँह बनाकर कहा—"होने दो भानजेकी बहू! माणिक मेरा भानजा नहीं! और यह क्या है? दो औरतोंने घरमें छिप कर ब्याहका खेल किया, और बस ब्याह हो गया?"

मुखोपाध्यायने कहा—" व्याह हो भी गया, और नहीं भी हुआ । आप रिजर्व गाड़ीमें सोहागरात मनाते पर कहाँसे माणिकने कूदकर कल सुहागरात मना ली ? पूरा बदजात भानजा है ! उसने मामाके मुँहका कौर इस तरह छीन लिया ! "

" रहने दो, अब मत जलाओ मुखोपाध्याय ! मैं इसका बदला जरूर लूँगा । जैसे होगा यमुनाको दस्तयाब, करूँगा, देखूँगा । "

लड़खड़ाते हुए पाँवोंसे शूलपाणि भीतरकी ओर चले और फिर लौट कर बोले—" जाओ मुखोपाध्याय, आदमियोंको साथ ले इसी क्षण जया हरामजादीके घरको तोड़-फोड़कर मिट्टीमें मिला दो । मुझसे टकरानेका मजा चखे अभागिनी । "

शूलपाणि जल्दीसे भीतर जाकर बिस्तरेपर लेट रहे । रतन सिरपर गुलाब जल छिड़क पँखा ले हवा हाँकने लगा ।

मुखोपाध्यायने मन ही मन हँसकर कहा—" आहा ! बड़े शौकसे रिजर्व गाड़ीमें सोहागरात मनानेवाले थे । दुःख होगा नहीं ? "

उसी रिजर्व गाड़ीसे उसी दिन शूलपाणि मुखोपाध्यके साथ कलकत्ता गये ।

चौथा खण्ड।

पहला परिच्छेद।

आँखें खुलीं।

घनश्याम कई दिनोंसे बहुत बेचैन रहते हैं। वे दोदण्ड भी कहीं स्थिर होकर बैठ नहीं सकते। वे इस कमरेसे उस कमरेमें, आँगनमें, बागीचेमें, सदा लड़खड़ाते पावोंसे घूमते रहते हैं। वे कभी जरा बैठ जाते हैं, अखबार या पुस्तक उठा जरा पढ़ते हैं, फिर फौरन ही उसे रख देते हैं और खिड़की या वराण्डेकी रेलिंग पकड़ झुककर खड़े होते हैं। वे बेवक्त गाड़ी मँगाते हैं, कुछ दूर जाते हैं और फिर लौट पड़ते हैं। कभी नौकरोंकी पीठ ठोंक कर उनका बहुत कुछ अनावश्यक अनादर करते हैं, और कभी बिना कारण ही उनको मार-पीटकर तिरस्कारके साथ सामनेसे हटा देते हैं। उनको भोजनमें रुचि नहीं, केवल चाय या पेगके लिए बार बार हुक्म देते हैं। वे लड़कीसे कभी भेट नहीं करते हैं; उसे बुलाते भी नहीं हैं। एमा भी पिताके पास नहीं फटकती। नौकर-चाकर कहते हैं; कि साहबका दिमाग फिर गया है, मिस बाबाका व्याह हो जानेपर वे चली जायँगी, इसी चिन्ताके मारे साहब पागल हो गये हैं।

हिरण आज दो दिनोंसे क्यों नहीं आता। शूलपाणि भी घर गये और अबतक न लौटे, विवाह हो जाता तो बला टलती, शूलपाणि शायद आज सवेरे ही आनेवाले हैं। घनश्यामने दराज़से शूलपाणिकी चिट्ठी निकाली।

बेहराने डाककी चिट्ठीयाँ लाकर टेबलपर रख दीं और वह सलाम करके बाहर चला गया। घनश्यामने शूलपाणिकी चिट्ठी फेंक दी और कुर्सीपर बैठकर डाँकसे आई हुई चिट्ठियाँ उठाईं। एक एक कर चिट्ठियोंका ठिकाना देखते देखते उन्होंने एमाके नामकी एक चिट्ठी देखी। एमाको किसने यह चिट्ठी लिखी ? लिखाबट तो मेमो जैसी है। चौरंगीके डाकघरकी मुहर है, तारीख कलकी है। घनश्यामने चिट्ठी

खोल डाली । ऊपर पता था......होटल, नीचे हस्ताक्षर था, जूलियाना चौधरी । जूलियाना चौधरी ! यह कौन है ? घनश्याम चिट्ठी पढ़ने लगे ।

" सर्वनाश ! ओह ! यह क्या ?"

घनश्याम रोष और विस्मयसे चिल्ला उठे । वे चिट्ठीको हाथमें ले उछलकर खड़े हो गये । वे कँपते हुए हाथोंसे फिर चिट्ठी पढ़ने लगे ।

ओ ! अभागा ! बदमाश ! ठग ! कैसी बदनामीकी बात है ! कैसे शर्मकी बात है ! कैसी घृणाकी बात है! इस तरह मुझे डुबा रहा था । देखूँगा ! कुत्तेको देखूँगा ! कैसा पाजी है ! ओः नरक का कुत्ता है ! बेहरा ! बेहरा ! गाड़ी लाओ ! जल्दीसे गाड़ी लाओ !

घनश्यामने ज़ोरसे टेबलपर हाथ और फर्शपर पाँव पटका । कुछ मिनटोंके भीतर ही गाड़ी आ गई । घनश्यामने चिट्ठी और कई एक कार्ड जेबमें डाले और टोपी और छड़ी ले गाड़ी पर जा बैठे । गाड़ी बागको कँपाकर, रास्तेको कँपाकर रास्तेके दोनों बाजुओंके घरोंको कँपाकर दौड़ चली ।

कोई दो घंटेके बाद घनश्याम लौट आये । उन्होंने बैठक खानेमें घुसते ही शूलपाणिको बैठे देखा ।

" यह देखो शूलपाणि, अपने लड़केकी कीर्ति देखो ।"

घनश्यामने चिट्ठी निकालकर उनके पास फेंक दी और कहा—" हिरणने विलायतमें मेमसे व्याह किया है । अब एमासे व्याह करने चला है । वह मेम अपने बाल-बच्चोंके साथ यहाँ आई है । देखो, तुम्हारा लड़का ऐसा पाजी है । वह मेम कहीं कोई गोलमाल खड़ा न करे, इसीसे उसने उसे लोभ दिखाया है कि एमासे व्याह करके उसकी ज़मीदारीमेंसे चार आना उसे और उसके बाल-बच्चोंके लिए दे देगा । मेमको यह मंजूर नहीं है । इसीसे उसने एमाको यह चिट्ठी लिखी है ।"

शूलपाणि बाबूने चिट्ठी पढ़ी । उनके मनकी अवस्था और चेहरेका भाव अवर्णनीय है । ऊँची लहरोंसे विक्षुब्ध हुए अकूल सागरमें तड़फड़ाता व्यक्ति जैसे तृणको पकड़कर किनारे लगनेकी आशा करता है, उसी तरह शूलपाणिने निराशामें क्षीण आशाको धारण कर रुद्ध प्रायः क्षीक्ष्ण स्वरसे कहा—" किसीने शत्रुतासे विघ्न डालनेके लिए तो यह चिट्ठी नहीं लिखी है ?"

" हाः ! हाः ! हाः ! शूलपाणि तुम क्या सोचते हो? तुम मुझे क्या पूरा उल्लू समझते हो ? मैं अभी अभी उस मेमसे मिल आया हूँ और उसके व्याहका सर्टिफिकेट बालबच्चोंके जन्मका सर्टिफिकेट आदि सब देख आया हूँ। "

" अब उपाय ? "

" उपाय ! इसका उपाय क्या होगा ? कानूनके अनुसार तुम्हारा लड़का दूसरा व्याह तो कर नहीं सकता। "

" यदि डाईवोर्स किया जाय। "

" डाइवोर्स कैसे करोगे ? डाईवोर्सका कोई कारण तो दिखाना होगा। इच्छा करनेसे ही तो ऐसा नहीं हो सकता ? "

" फिर एमाके सम्बन्धमें स्वामीजीसे जैसे विधि ली है, उसी तरह उसके सम्बन्धमें भी स्वामीजीसे विधि ली जाय और उनके शिष्योंका अनुमोदन ले— "

घनश्यामने जमीनपर पाँव पटककर हाथके पास की एक चेयर पटकी और दाँत पीसते हुए कहा—" इससे मेम राज़ी होगी क्यों ? अँगरेजोंका विवाह–कानून राज़ी होगा कैसे ? उस मेमके नालिश करने पर हिरणपर बाइगेमीका चार्ज लगेगा। कानूनके अनुसार एमा हिरणकी उपपत्नी मानी जायगी, एमाके बाल-बच्चे सब अवैध कहे जायँगे, यह बदनामी शूलपाणि, मैं सहूँगा ? तुम जान–बूझ करके मेरी ज़मीदारीके लोभसे मुझे बदनामीमें डुबोना चाहते हो। धिक ! "

शूलपाणिने ज़रा भौंए टेढ़ीकर कहा—" तो फिर तुम्हारी एमासे कौन व्याह करेगा ? जब एमाका व्याह करना ही है तब हिरण ही अच्छा है। एमा भी विवाहित है, हिरण भी विवाहित है, दोनों समान हैं। "

" हाँ, एक विवाहित पुरुष और एक विवाहिता स्त्री व्यभिचार करेंगे ! तुम शूलपाणि मुझे ऐसा अहमक समझते हो कि मैं एमाको तुम्हारे लड़केकी उपपत्नी बनाऊँगा, और अपनी जमीदारी उसे दे दूँगा। "

शूलपाणिने भी कुछ रुक्ष स्वरसे उत्तर दिया—" अच्छा, आज तुमको इस बातसे इतनी घृणा क्यों हुई ? हिरण विवाहित हो या न हो, तुम्हारी लड़की तो विवाहिता है ? कानूनके अनुसार वह हिरणकी विवाहिता स्त्री कभी न समझी जायगी,–साधारण मनुष्य उसे उस दृष्टिसे न देखेंगे। यह सब समझ–बूझ करके ही

तो हिरणके साथ उसका व्याह करनेवाले थे । हिरणका व्याह हो चुका है, यह बात आज मालूम हो गई तो अन्तर क्या पड़ गया ? ’

घनश्यामने कहा—“ मैं यह सब बातें जान-बूझ करके हिरणके साथ एमाका व्याह करनेवाला था ! तुम आज ऐसी बात कहते हो शूलपाणी ? तुम तो मेरे परम हितैषी निस्वार्थ बन्धु हो, आज तुम्हीं ऐसी बात कहते हो ? शूलपाणि मैं अब सब समझ गया हूँ, मेरी आँखें खुल गई हैं। स्वार्थके लिए तुमने छलसे मुझे भुला रक्खा था ? एक पर एक चाल खेल, मुझे अन्धा बना, तुमने मुझे कैसा हीन बना दिया है ? तुमने मुझे समाज-संस्कारका खूब गौरव दिखलाया था न ? देश भरके लोग मुझे धिक्कारते, अपनी भूल समझने पर मैं अपने आपको जिन्दगी भर धिक्कार देता, अभी ही मेरा मन मुझे धिक्कार रहा है । तुमने मुझे बन्धुत्वके भुलावेमें डाल, मेरी एक मात्र लडकीको, जिससे अधिक प्यारा मुझे और कोई नहीं है, कलंकमें डुबाकर मेरी जमीदारी धोखा दे हड़प लेनी चाही थी । शूलपाणि तुम फूलके भीतर छिपे हुए कालसर्पकी तरह कपटी और अविश्वासी बन्धु थे । मैं आज तुमको पहचान सका हूँ, तुम्हारी हर-कतों को जान सका हूँ । जाओ शूलपाणि, मैं तुम्हारी कोई मदद नहीं चाहता । हरगोपालकी लड़की आ जाये, मैं उसे उसके न्याय्य अधिकारसे वंचित नहीं करना चाहता । ओः मैं कैसा पापी हूँ, भाई मर गया, उसकी अनाथ लड़की को उसके हक़से वंचित करने के लिए, उसकी जायदाद अपनी मुट्ठीमें करनेके लिए मैंने कैसा बुरा फन्दा तैयार किया था ! धिक्कार है ! धिक्कार है ! मुझको ! जाओ शूलपाणि ! तुम्हारे भुलावेमें पड़ मैं प्रायः मनुष्यत्वखो बैठा था । मैं आज फिर मनुष्यत्वको वापस पा सका हूँ अब फिर उसे खोना नहीं चाहता । जाओ ! ”

इतने दिनों से पोषितहुई उस पापवासना, पापचेष्टा और पापकौशलका ऐसा दारुण परिणाम हुआ !

शूलपाणि उठे । उन्होंने व्यर्थ पापके व्यर्थ रोषसे उन्मत्त दानवकी तरह मुँह विवृतकर अर्द्ध स्फुट, क्रोधविकृत स्वरसे कहा—“ अच्छा ! ऐसी बातें ? अच्छा देखूँगा ? ” यह कह शूलपाणिने जल्दीसे वहाँसे प्रस्थान किया ।

घनश्याम कुछ शान्त हो, टेबल के पास जा अपने आसनपर बैठे । हुक्म पाकर नौकर पेग ले आया । घनश्याम ने पेग पीया । अनन्तर वे चुरुट पीते हुए

कुछ देरतक चिन्ता कर अपने मन ही मन बोले—" नहीं, मुझे ऐसे बड़प्पन की जरूरत नहीं। जो समाजको मान्य नहीं, जो कानूनके आगे न ठहरायेगा, ऐसा काम कर एमाको कलंकमें न डुबादूंगा। मदनको चिट्ठी लिखूं। उसमें साहस है, मनुष्यता है। देखनेम भी—हाँ अच्छा ही है। मानो राजपुत्र है,–वेशभूषा चाहे जैसा हो। वह यदि विलायत जाकर बारिस्टर हो आये और अपनी देहाती सभ्यता छोड़ दे, बिल्कुल हम लोगों जैसा ही हो जाय, तो उसे ही जमाई स्वीकार करूँगा। ठीक तो है!–मैंने पहले यह बात न सोचकर कैसी बेवकूफी की थी। ऐसा पहले सोचता तो लगातार एक वर्ष तक ऐसे कष्टकर उद्वेगोंमें उलझना न पड़ता, ऐसे नीच कौशलों और ढोंगमें न फँसना पड़ता! कहाँ मदन और कहाँ हिरण, मदनके आगे हिरण बन्दर जैसा है।"

दूसरा परिच्छेद।

माणिककी दरबानी।

मदन और माणिक, जया, गंगा, मेनका और यमुनाके साथ यथासमय कलकत्ता पहुँचे। साथमें गदा भी गया था। यात्रियोंको कालीघाटमें सहजमें ही घर किरायेसे मिल जाता है। इस लिए वे सब पहले कालीघाट गये और एकदिनके लिए एक छोटासा घर किराये पर लिया।

सबने सवेरे गंगास्नान और कालीदर्शन कर ब्याहके दूसरे दिनकी रस्में पूरी कीं।

शूलपाणि उसी रातको अथवा दूसरे दिन कलकत्ता आ पहुँचेंगे। आते ही शायद कालीघाटमें इन सबकी खोज करायेंगे। पंडो और गुंडोके कारण कालीघाट अपरिचित लोगोंके लिए खतरेकी जगह है। शूलपाणि कलकत्तेमें रहते हैं, रुपया और नाम भी है। इसलिए यमुनाको ले यहाँ रहना निरापद नहीं। आगे यमुनाकी चिन्ता है, फिर और बातोंकी चिन्ता है। इधर शूलपाणिके लौट आने पर ही हिरणका ब्याह होगा? इसलिए पहले दिन ससुरालकी खबर लेना मदनने आवश्यक न समझा। भोजन करनेके बाद मदन और माणिक बाहर निकले। उन्होंने गंगाके

किनारे एक छोटा सा घर किरायेसे लिया और उसी रातको उसी घरमें सब लोग आगये । दूसरे दिन नई गृहस्थीका बन्दोबस्त करनेके कारण देर होगई । खाना खानेके बाद मदन और माणिक बाहर निकले । मदन घनश्यामके कलकत्तेके घरका पता जानता था । दोनों वहाँ गये किन्तु घरमें ताला बन्द था । पुकारने पर वहाँ किसीकी आहट न मिली । मदन बहुत घबराया । मदन या माणिकको घनश्यामके वराटनगरवाले उद्यान की ख़बर न थी । माणिकने कहा—" मामाके घर एक बार उनकी तलाश की जाय ? "

" उस घरमें घुसने पायेगा ? दरवाजेके पास ही अर्द्धचन्द्र प्राप्त होगा ।"

माणिकने कहा—" ऐसा न होगा दादा ! चलो अब लौट चलें । दरबान बनकर नौकरी की तलाशमें दरबानोंके पास जाना पड़ेगा । तब सब ख़बर मिल सकेगी ? तुलसीदासके दो दोहे कहते ही सब भुलावेमें आ जायँगे । चलो, कुछ साजबाज ख़रीद कर लें । "

दोनों लौटे । ज़रूरी चीजें खरीद कर माणिकने दरवानका वेष धारण किया और एक बड़ी लाठी हाथमें ले चल पड़ा ।

दो तीन घंटेके बाद माणिक लौट आया । उसने मदन को खबर दी कि (१) घनश्याम अपनी लड़कीके साथ वराहनगरके उद्यानगृहमें रहते हैं; (२) हिरणने विलायतमें एक मेमसे ब्याह किया था, वह अपने बालबच्चोंके सहित यहाँ आ पहुँची है, इसलिए हिरण और एमाका विवाह-सम्बन्ध टूट गया है, (३) और घनश्याम और शूलपाणिका घनिष्ठ बन्धुत्व विछिन्न हो गया है ।

मदनने कहा—" चलो आफ़त टली । "

" अब क्या करोगे ? बहूको लेने न जाओगे ? "

" यही सोचता हूँ ।"

" सोचते हो ! पुरुष होकर अपना मान दूसरेके घर छोड़ रक्खोगे ? एक आफ़त-टली, पर यदि दूसरी आये ? "

मदनने उत्तर दिया—" नहीं माणिक, जाऊँगा । देखूँगा वह क्या कहती है, फिर जैसी सलाह होगी वैसा किया जायगा ।"

माणिकने दरवानका वेष दूर किया ।

तीसरा परिच्छेद ।

स्वामी—स्त्री ।

दूसरे दिन शामको मदन बराहनगर गया। दरबानसे उसे पता मिला कि घन-श्याम घरमें नहीं हैं, किसी कामसे, एक बन्धुसे मिलने हुगली गये हैं। मदनने मिस बाबासे मिलनेकी इच्छा प्रकट की। दरबानने इस पर आपत्ति की। मदनने जेबसे दो रुपये निकालकर दरबानके हाथपर रक्खे। दरवानने जरा इधर-उधर देख-कर रुपये जेबके हवाले किये और उसका कार्ड मांगा। मदन विपदमें पड़ा। उसने कभी कार्ड आँखसे न देखा था। दरवान ने एक टुकड़ा कागज और पेंसिल ला दी। मदनने अपना नाम लिखा—"श्रीमदन भट्टाचार्य, कालिकापुर।"

दरवान कार्ड लेकर भीतर गया। मदन कँपते हुए हृदयसे उसके लौटनेकी राह देखने लगा। यदि वह मिलना न चाहेगी तो क्या होगा? इस दरवानको ठेलकर वह शायद भीतर जा सकता है। किन्तु यदि घरके और आदमी जुटकर वाधा दें, और पुलिस को बुलायें तो फिर क्या होगा? माणिक और गदाको साथ लाने पर भी यह वाधा तो आ ही सकती है। कौशलसे इस घरके भीतर जाकर भी कैसे भेट सकेंगे? वह यदि चिल्लाकर लोगोंको बुलाये? फिर क्या रातमें चोरकी तरह आकर उसे ले जाना पड़ेगा? छि! ऐसी आसुरीक विधिसे ले जाने पर क्या वह उसकी श्रद्धा करेगी? किन्तु क्या एक बार भेट भी न करेगी। इसी बीचमें दरवानने लौट आकर सलाम किया। मदनने उत्तेजित स्वरसे पूछा—"क्या?

"आइये बाबू, मिस बाबाने सलाम कहा है।"

मदन दरवानके साथ भीतर चला। उसके पाँव लड़खड़ा रहे थे। मदनको एक सजे हुए कमरेमें बिठाकर दरवान बाहर चला आया।

मदनकी छाती धड़कने लगी। मदनने कमरेके भीतर चारों ओर देखा। कमरा सुन्दर साहबी ढंगसे सजा हुआ है, इसी कमरेमें उसकी बीबी रहती है। कहाँ वह और कहाँ उसकी वह बीबी! वह किस पर अपनी स्त्री होनेका दावाकरने चला है। मदनने मानों कल्पनाकी आँखोंसे उस सुसज्जिता सुन्दरीके होठों पर विन्द्रूपकी वक्र हँसी देखी। मदन घृणा और लज्जासे मानों मर गया।

उसने सोचा—"छि! मैं यहाँ क्यों आया?"

सहसा पीछेसे किसीने मीठी आवाजसे पूछा " क्या सोचते हो ? "

मदन चौंक उठा । उसने पीछेकी ओर घूमकर देखा और देखकर खड़ा हो गया । खड़ा हो ताकता रहा । यह कौन है ? यह तो साहब घनश्यामकी लड़की एमा नहीं है ? यह तो ग्राम्यगृहस्थकी ग्राम्य वधू गौरी है ! यह तो ग्राम्य वधू ही है–लाल पाड़की साड़ी पहने है, हाथों में लोहे और शंखकी चूड़ियाँ हैं, पाँवोमें महावर लगा है, माँग सिन्दूर भरी है, सुन्दर सलज्ज अवनत मुख है !

मदन विस्मित मुग्ध नेत्रोंसे टकटकी लगा देखता रहा । एमाने फिर मुँह खोला, उसके होटों पर, नेत्रके कानोंमें, बहुत मृदु मधुर हँसीकी रेखा झलक पड़ी । लाल हुआ चेहरा फिर नीचे झुक गया । शरदमें प्रभातकी किरणोंसे स्फुटित हुआ शतदल भी क्या ऐसा दिखाई देता है ? किसी अज्ञात पूर्व पुलकके उच्छ्वाससे मदनका सर्वाङ्ग रोमाञ्चित हो गया ।

एमा मदनकी ओर कनखियोंसे देखकर मुस्कराई और फिर उसने कुन्द–दन्तों को गुलाबी होठोंसे ढक लिया । वह मुस्कराकर मृदु मधुर स्वरसे बोली—" क्या देख ते हो ? "

मदनने चौंक कर शर्मके मोर सिर नीचे झुका लिया । पतिके नीचे झुके हुए चेहरेकी ओर ताककर एमाने कुछ ऊँचे मृदु कम्पित स्वरसे पूछा—" क्या देख रहे थे, कहो न ? "

मदनने एमाकी ओर देखा । इस बार एमाने सिर नीचे झुका लिया । मदन बोला—" मैंने तुमको इस वेशमें कभी न देखा था, इस वेशमें तुम्हें देखनेका खयाल भी मुझे न था ।

" क्या तुमने मुझे कई बार देखा है ? "

" नहीं, इलाहबादके रेलवे स्टेशनपर एक दिन देखा था, फिर और कभी देखा नहीं । "

" फिर कैसे यह खयाल था कि इस वेशमें मुझे न देख पाओगे ? "

मदन चुप हो रहा । वह एमाकी तरफ देखता हुआ चुपचाप न मालूम क्या सोचने लगा । मदनको अपनी ओर ताकते देखकर एमा कुछ संकुचित होने लगी । थोड़ी देरके बाद फिर एमाने मदनकी ओर देखा । मदन तब भी उसकी ही ओर ताकर हा था ।

ईषत् संकोचके साथ एमाने मुस्कुराते हुए कहा—" अब क्या सोच रहे हो ? "

मदनने उत्तर दिया—" क्या सोच रहा हूँ कुछ कह नहीं सकता। मानों मैं कुछ समझ ही नहीं पाता हूँ।"

" क्या नहीं समझ पाते ? "

" तुमको।"

" क्यों, क्या मैं कोई पहली बनकर तुम्हारे सामने आखड़ी हुई हूं।"

" तुम तो मेरे सामने इस वेशमें कभी नहीं आई, ऐसी बातें भी तुमने कभी नहीं कीं।"

" तुम आये थे ? तुमने ही मुझे पूछा था ? "

" मैं डरके मारे नहीं आया।"

" डर ! अपनी स्त्रीके पास आनेमें डरते थे ? कैसे पुरुष तुम हो ? "

मदन जरा मुस्कराया बोला—" मैं पुरुष चाहे जैसा होऊँ पर डरना तो जानता नहीं। फिर तुमको अपनी स्त्री समझनेका मुझे कभी साहस नहीं हुआ।

" क्यों ? "

मदनको सहसा उत्तर देनेको न मिला। उसने एमाके चेहरेकी ओर देखा; अनन्तर बोला—

" तुम कैसी सुन्दर हो ! "

" तुम कैसे बुरे हो ? दर्पणमें अपना मुँह तो देखो।"

" तुम कितनी बड़ी हो गई हो ! "

" तुमसे अधिक तो नहीं। न मानो तो माप देखो।"

मदन हँस पड़ा, बोला—" नहीं, हँसने की बात नहीं। सच ही मैं डरके मारे तुम्हारे पास अबतक न आया था। जभी तुम्हारी याद मुझे आती थी तभी मेरे मनमें यह ख़याल उठता था कि मैं तुम्हारे निकट बिल्कुल नाचीज़ हूँ। तुम कैसे बड़े घरानेकी लड़की हो, कितनी सुन्दर हो, तुमने कितना पढ़ा-लिखा है; तुम्हारी चाल-ढाल, रहन-सहन सभी अनोखी और ऊँचे ढंगकी है। मैं जंगली उल्लू किस साहससे तुम्हें अपनी स्त्री समझूँ ?

एमा मुस्कुराई; अनन्तर बोली—

" छि, तुम ऐसी बातें कहते हो ? मैं किस बातमें तुमसे श्रेष्ठ हूँ। मैं तुम्हारी स्त्री हूँ, तुमसे श्रेष्ठ कैसे होऊँगी ? विवाहके बाद लड़की बापकी बेटी नहीं रहती,

पतिकी स्त्री हो जाती है । पतिका भाग्य ही उसका भाग्य है; बापके भाग्यसे वह श्रेष्ठ अश्रेष्ठ नहीं होती । और मैं श्रेष्ठ ही ऐसी क्या हूँ ? बाबा रुपये पैसे के सिवा और किस बातमें तुमसे श्रेष्ठ हैं ? और यदि हुए भी तो क्या ? सुन्दर स्त्री क्या किसीके नहीं होती ? बाबाने कुछ लिखाया पढ़ाया है, तो लिखा-पढ़ा है । किन्तु मैंने क्या तुमसे अधिक लिखा-पढ़ा है । यदि मैंने तुमसे कुछ अधिक ही लिखा पढ़ा हो तो मैं क्या इतनेसे ही तुमसे श्रेष्ठ हो जाऊँगी । जो श्रेष्ठ होता है, वह मनसे श्रेष्ठ होता है, मनुष्यत्वसे श्रेष्ठ होता है, महत्वसे श्रेष्ठ होता है । केवल रुपया-पैसा या लिखाई-पढाईसे मनुष्य श्रेष्ठ नहीं होता । इसके बाद हम लोगोंकी चाल-ढाल और रहन-सहनको लो। हाँ चाल-ढाल और रहन-सहनसे अनोखी जरूर हूँ, किन्तु तुम्हारी चाल-ढाल और रहन-सहनसे ऊँची है, यह कैसे समझा ? यह चाल-ढाल विदेशी साहबोंकी चाल ढालकी नकल है । इसीसे क्या अच्छी और ऊँची हो सकती हूँ ? देशके निवासी होकर देशको और देशके आचार-व्यवहारको ऐसा हीन क्यों समझते हो ? और इसके लिए चिन्ता ही क्या ? तुमने मुझे अबतक बापके रख छोड़ा है, इसीसे बापकी जैसी चाल-ढाल है, वैसी ही मेरी भी है । इसीसे क्या तुम्हारे घर जाकर भी ऐसी ही चाल चलूँगी ? ”

मदनने अवाक् हो स्त्रीकी बातें सुनीं । ऐसी सहज बात अबतक उसके मनमें न उठी थीं । सच ही वह जंगली उल्लू है । वह एमाके पाँवोंके तले बैठने योग्य भी नहीं । जो हो, उसने मुस्कुराकर कहा—“ तुम क्या मेरे घर चलोगी ? ”

“ तुम ले जाओगे, तो जाऊँगी । और नहीं भी ले जाओगे तो क्या हुआ ? क्या तुम्हारे घरमें मेरा कोई हक नहीं । ”

“ कहाँ, अबतक तो गई नहीं । ”

“ तुमने भी तो बुलाया नहीं, बुलाना चाहा भी नहीं । ”

“ हाँ, बुलाना चाहा तो नहीं, । ”

“ फिर ?

“ अब तो बुलाने आया हूँ, चलो फिर ! ”

“ चलो न । मैं तो चलनेके लिए तैयार होकर ही आई हूँ । ”

मदनको फिर चिन्ता हुई । एमाने कहा—

“ फिर क्या चिन्ता करते हो ? ”

मदनने जरा गंभीर होकर कहा—"देखो, मैं गाँवमें रहनेवाला गरीब गृहस्थ हूँ। मेरी स्त्रीको भी गाँवमें रहनेवाली ठीक ग्राम्य गृहस्थवधूकी तरह रहना होगा। जो ऐसा न कर सकेगी, उसे मैं अपनी स्त्री नहीं मान सकता। आज तुम्हें देखकर तुम्हारी बातें सुनकर मुझे बड़ी आशाहुई है। तुम सच ही क्या-ग्राम्य गृहस्थवधूकी तरह रह सकोगी?"

"रह सकूँगी।"

मेरी माँ खाना बनाती हैं, धान कूटती है, पानी खींच लाती है, बासन मलती है, ये सब काम तुम कर सकोगी?"

"सब काम कर सकूँगी।?

"ये सब काम तो तुमने कभी किये नहीं हैं।"

"ये काम नहीं किये हैं सही, पर क्या सीख भी न सकूँगी? यदि न कर सकूँगी तो घरसे निकाल देना।"

उच्छ्वसित आनन्दके आवेगके साथ मदनने कहा—"गौरी आज तुम सचमुच मेरी स्त्री हो।"

एमाने मुस्कुराकर कहा—"अभीतक मैं क्या तुम्हारी नकली स्त्री थी?"

"तुम नकली स्त्री न थी, मैं ही नकली पति था। मैंने भूलमें पड़कर इतने दिनों तक अनर्थक कष्ट पाया है, और तुमको भी कष्ट दिया है। इलाहाबादकी उस घटनाके वक्त तुम्हें पहचाननेपर मुझे गहरी चोट लगी थी। मेरे मनको यह बात बहुत असह्य मालूम हुई थी कि मेरे जिन्दा रहते ही फिरंगी लोग घाट-बाट पर तुम्हारा ऐसा अपमान करें। तुम्हारी याद मेरे मनमे काँटे की तरह चुभ गई थी। मैंने अपने आपको सैकड़ों बार धिक्कार दिया है। किन्तु फिर भी तुम्हारे पास आनेका साहस न हुआ।"

एमाने कहा—"उसी दिनसे मैं भी बहुत ज्वाला सहती आ रही हूँ। मैं मन ही मन देवताकी तरह तुम्हारी पूजा करती आ रही हूँ। कितना रोती थी, पर तुमको खबर न दे सकी। खयाल होता था कि मेरी जाति चली गई है, कौन क्या कहता होगा, इसका ठिकाना क्या? कौनसा मुँह ले तुम्हारे पास जाऊंगी।"

"छि, गौरी, तुम मुझे ऐसा नीच समझती थी कि लोकनिन्दाके डरसे मैं तुम्हारी जैसी साध्वी स्त्रीको त्याग देता?"

नहीं यह बात नहीं है । मैं यह बात जानती थी कि मुझे जानेपर तुम घरसे निकाल न दोगे, किन्तु लोक समाजमें तो तुम्हारा मान कम हो जाता ! मैंने तुम्हारे मानके कारण ही अबतक अपने हृदयको खूब मजबूतीसे बाँध रक्खा था । ”

मदनने हँसकर कहा—“ उसी मानकी रक्षाके लिए मुझे आज तुम्हारे पास आना पड़ा है । ”

“ यह जानती हूँ । ”

“ जानती हो, कैसे ? ”

एमाने घूमकर पुकारा—“ रंगिणी ? ”

परदेको हटा रंगिणी आ पहुंची । उसने मदनके पाँवोंके पास पांच रुपये रखकर प्रणाम किया ।

“ कौन हो वैष्णवी ? तुम फिर यहाँ कैसे आ पहुँची ? ”

रंगिणीने विनीत भावसे उत्तर दिया—“ दीदी साहबके आकर्षणके कारण आ पहुँची हूँ । जब आप ही नये मनुष्य आकर हाजिर हो गये, तब मैं पुरानी हो क्या ठहर सकती थी ? ”

मदन मुस्कुराया । उसने पाँवोंके पास रक्खे हुए रुपयोंकी ओर इशारा करके पूछा-“ ये रुपये किस लिए हैं ? ”

“ वही बखशीसके रुपये हैं । ”

“ ओ हो, तो लौटाती क्यों हो ? ”

“ यह बखशीस दीदी साहबको मिलनी चाहिये उनको ही दीजिये । ”

मदनने एमाकी ओर घूमकर पूछा-“ यह क्या बात है गौरी ? ”

एमाने मुस्कुराकर लज्जावनत मुखसे उत्तर दिया—“ मैंने इसे भेजा था । ”

“ तुमनेही भेजा था ! कहाँ, यह तो इन्होंने कहा नहीं था ! ”

“ कहनेको मना कर दिया था । ”

“ क्यों ? ”

एमाने उत्तर दिया—“ मैं यह चाहती थी कि अपना मान रखनेके लिए तुम अपनी इच्छासे आओ, मेरी प्रार्थनासे वाध्य होकर नहीं । ”

विस्मित मदन मुग्ध नेत्रोंसे एमाकी ओर ताकता रहा, अनन्तर बोला—“ गौरी मैं क्या कहूँ, कुछ खयालमें नहीं आता । तुम रमणीरत्न हो । ”

" अपने पाँवोके निकट रखने योग्य समझते हो क्या ? "

" पाँवोंके ! तुम्हें सिर पर रखनेके योग्य भी मैं नहीं हूँ। मैं तुम्हारे पाँवोंकी धूलिसे भी अधम हूँ गौरी ! "

" छि, ऐसी बात करते हो । तुम पतिदेव हो, मैं तुम्हारे पाँवोंकी दासी हूँ। "

" मदनने कहा—" जाने दो । फिर चलो गौरी मेरे साथ । तुमको पाकर अब यहाँ छोड़ न जा सकूँगा । मेरी माँ यहाँ आई है । हम लागोंने एक घर किरायेसे ले रक्खा है । चलो अभी ही तुमको लेता जाऊँगा ।

एमाने कहा—" बाबा आज घरमें नहीं हैं । "

" इससे क्या हुआ ? "

" छि, इतने दिनके बाद क्या चोरकी तरह मुझे ले जाओगे ? "

मदनने उत्तर दिया-" नहीं, पतिकी तरह आ तुमको लेजाऊँगा । वे कब लौटेंगे ? "

" आज रातको ही । "

" कल उनसे भेट करूँगा । अच्छा, फिर अब मैं जाता हूँ गौरी । "

मदनने एमाका हाथ पकड़कर स्नेह करुण स्वरसे बिदा माँगी ।

रंगिणीने कहा—" ये जाते क्यों है दीदी साहब ? आज यहीं रहें न ? "

मदनने कहा—" नहीं, मैं चोरकी तरह रहना नहीं चाहता । फिर मैं आज जाता हूँ गौरी ! "

" जाओ । " एमाकी आँखोंमें अश्रुविन्दु दिखाई पड़े । मदनने एमाके बाहु पकड़कर उसे छातीके पास खींच लिया । उसने स्नेहके साथ एमाकी आँखोंके आँसू पोंछ दिये और अति स्नेहसे कहा—" जाता हूँ । "

मदन चला गया । एमा आँचलसे मुँह ढक कर रोई ।

रंगिणीने कहा—"दीदी साहब, तुमने उनको जाने दिया ? किस हृदयसे ऐसा कर सकी ? "

एमाने गर्व पूर्वक अश्रुपूर्ण मुख ऊपर उठाकर उत्तर दिया —" जो हृदय उनके मानसे अभिमानी है, उसी हृदयसे रंगिणी । मैं उनको इस घरमें रखनेवाली कौन हूँ और वे भी चोरकी तरह यहाँ क्यों रहें ? "

चौथा परिच्छेद ।

आग क्या बिलकुल ही गुल हो गई ?

मदनको घर लौटनेमें रात हो गई । उसने घर पहुँचते ही दरवाजेपर एक विशाल काय पुरुषको देखा, जो जटाजूट और डाढ़ी मूँछसे सुशोभित था, सर्वांगमें विभुति धारण किये था, व्याघ्राम्बर लपेटे था, जिसके गलेमें रुद्राक्ष की माल पड़ी थी, और हाथमें त्रिशूल और सींग था । मदन स्तम्भित हो खड़ा हो गया । उस विशाल मूर्तिने भीम गंभीर स्वरसे कहा—" बम भोलानाथ ! मैं महाकालका सेवक हूँ, अवन्तीसे आया हूँ । "

हाँ, यही सन्यासी महाकालका सेवक है ! मदन आगे बढ़कर सन्यासीको प्रणाम करने चला । यह देख महाकालका सेवक खिलखिलाकर हँस पड़ा और पीछे सरक कर बोला—" ओः ठहरो, ठहरो, करते क्या हो दादा ? यात्राके समय अकल्याण न करो । "

" माणिक ? वाह ! "

" वाह दादा ! रंग जरा जमने न दिया ? पहले ही झुककर प्रणाम करने चले । "

" खूब स्वांग बनाया है । रास्ता चलते लोग डर जायँगे । जाता कहाँ है । आनन्दाश्रम ? "

" हाँ दादा वैसे जाने न पाऊँगा । किन्तु संन्यासी अतिथिको वह खदेड़ न सकेगा । मैं सदानन्दकी आनन्दमयी मूर्ति देखते ही पहचान लूँगा कि वे वही मेरे शोणितानन्द ब्रजगिरि हैं या नहीं । यदि वेही सदानन्द हैं, तो इसमें सन्देह नहीं कि मेरे बाबाजीके शोणित पानानन्दकी आशासे ही उन्होंने यह आनन्दमय रूप धारण किया है ।

" कहीं पकड़ा तो न जायगा ? "

" दादा, तुमने तो मुझे पहचाना नहीं, झुककर प्रणाम करने चले, और वह पकड़ लेगा ? "

" नहीं अकेला न जा । मैं भी तेरे साथ चलूँगा । और साज है ? "

" तुम्हारे साथ जानेकी जरूरत नहीं है दादा, दो जने जानेसे ही पकड़े जायँगे। डरो मत, वह बाघ मारने वाली छुरी बाघकी छाल के भीतर छिपी है।"

" अच्छा तो जा। आनन्दरस जरा लेते आना। सब अकेले ही न पी जाना।

" हिस्सा माँगते हो दादा, पर तुमने तो हिस्सा दिया नहीं है। तुम आज कितना पी आये हो, जरा उगलो न। मालूम होते हो खूब भरपूर पी आये हो।"

" हाँ, माणिक, खूब भरपूर पी आया हूँ।"

मदनने संक्षेपमें एमासे भेट और बातचीत होनेका वर्णन किया। माणिकने मदनको गले लगाकर कहा—" दादा मैं भी तो खूब भरपूर पीकर ही जा रहा हूँ। पर वहाँसे बच-बचाकर जो कुछ ला सकूँगा, तुमको पिला दूँगा। फिर जाता हूँ दादा, शायद आज रातको लौट न सकूँ। आतिथ्य पानेपर आज वहां रात काटनी होगी।"

मदनको प्रणामकर माणिक चला गया।

दूसरे दिन बड़े फजर ही माणिक घर लौट आया। सदानन्द व्रजगिरि ही निकले माणिकने वेश बदलते बदलते मदनसे आनन्दाश्रमके आतिथ्य, सदानन्दके सम्मिलन, भक्तोंके आनन्दोत्सव आदिकी बातें कहीं।

गदाने माणिकको देखकर कहा—" छोटे दादा ठाकुर, तुम कल रातको कहाँ थे? तुमने देह, हाथ, मुँह, पाँव में क्या राख लपेटी है? कहीं स्वांग बनाकर शायद गये थे? खूब! तुम स्वांग बनाना भी जानते हो? अभी अभी व्याह किया है, परसों ही सोहाग रात थी, और कल ही तुमने स्वांग बनाकर रात कहीं, बाहर काटी।"

माणिकने स्नान करके धोती बदली। उसने कुछ जल पान करके पान तमाखू खाते खाते मदनसे पूछा—" दादा फिर भाभीतो आज ही आयँगी न?"

" हाँ, लेने ही जा रहा हूँ।"

" अच्छा, जाओ फिर। और सुनो दादा, मेरा भी व्याह हो गया; तुम्हारी भी बहू आ रही है। इसलिये उस वक्त भोजका प्रबन्ध क्यों न किया जाय। मैं जाताहूँ. खाँ साहबको खबर दे उनका निमन्त्रण कर आता हूँ। उनके सिवा यहाँ तो और कोई बन्धु बान्धव नहीं हैं।

" ठीक है। अच्छा मैं अब जाता हूँ।"

" मदन बहूको लेने जा रहा है, यह खबर सुनकर सब बहुत आनन्दित हुए। चलते वक्त मदनने माताको प्रणाम किया । माताने पूछा-" क्यों मदन, बहू जूता-सूता पहन कर तो न आयगी ? "

मदनने मुस्कुराकर कहा—" माँ, तुम पागल हुई हो ? बहूको जूता पहने तुम्हारे पास लाऊँगा ? गृहस्थके घर गृहस्थकीही बहू आवेगी, बीबी नहीं आवेगी । "

" वह तो बीबी ही है मदन । "

" बापके घर बीबी थी, मेरे घर बहू ही होकर आवेगी । "

" तब तो खैर है बेटा । आहा मेरे भाग्यमें यह सुख भी था ! भगवती दुर्गा, काली माई, गंगा माई, बाबा नकुलेश्वर सब दया करना; मेरे घरकी लक्ष्मीको घरकी लक्ष्मी बनाना गोदमें सोनेके चाँद जैसा बेटा देना । आहा ! वे (मदनके पिता) इस वक्त कहाँ हैं ? "

मेनका यह कह कर जोरसे रो उठी । मदनकी आँखें भी डबडबा आईं । माणिकने कहा-" यह देखो इतने दिनोंके बाद उनका शोक उठ ही पड़ा । शान्त हो, शान्त हो, वे स्वर्गमें हैं, वहाँसे सब दिखाई देता है । यदि अब भी लड़केपर माया होगी तो स्वयं ही देखकर सुखी होंगे, आशीर्वाद देंगे । तुमको रोकर उनको जतलाना न पड़ेगा । "

मंगलके समय अमंगलका दोष दिखा, जया और गंगाने मेनकाको शान्त किया। मेनकाने भी इस दोषका स्मरण करते ही बुढ़ापेमें उठे यौवनके पतिशोकको सम्वरण किया ।

मदन और माणिक अपने अपने अभीष्ट स्थानोंकी ओर गये ।

बराहनगरसे बहू बाजार पास था । इसलिए माणिक खाँ साहबके पास आगे पहुँचा ।

खा साहब दूकान पर ही थे । उन्होंने माणिकके पहुँचनेपर दूकान बंद कर दी । अनन्तर वे माणिकको साथ ले भीतर गये । वे नकली बाल और डाढ़ी-मूँछ खोल कर माणिकके बगलमें बिस्तरपर बैठ गये ।

माणिकने गौरदासका चेहरा बहुत कुछ बदला हुआ देखा । उसने देखा कि उनके दुबले चहरेपर स्वास्थ्य और पुष्टिका पूर्ण ज्योति झलकती आती है। नवीन डाढ़ी-मूँछ शोभा दे रह हैं। मुंडे सिरपर नये बाल निकल आये हैं। माणिकने

देखा, गौरदासका मुँह बहुत सुन्दर हो गया है। उसने मुस्कुराकर कहा—"बाबाजी, तुमने तो अच्छा नवयौवन प्राप्त किया है। बाबाजी, कौन अश्विनीकुमार तुम्हें च्यवन ऋषिका यौवन दे गया?"

गौरदासने कहा—"तुम्हीं भैया वह अश्विनीकुमार हो। तुमने ही स्नेहरससे मेरे मनकी आग बुझा दी है। बहुत वर्षोंके अविरत, शान्तिहीन, कठोर पर्य्यटनकी दारुण क्लान्तिके बाद तुम्हारे संसर्गमें आ मैंने विश्राम और शान्ति पाई है। अश्विनीकुमार क्या वृद्ध च्यवनको इससे भी श्रेष्ठ ओषधि देसके होंगे?"

माणिकने पूछा—"तो आग क्या बिलकुलही गुल हो गई बाबाजी? मैंने इतना बखेड़ा कर ब्रजागिरिको खोज निकाला; अब उनके आनन्दरसमें फिर क्या सुशीतल शान्तिरस सींचोगे?"

"खोज निकाला! कहाँ भैया, कहाँ?"

"वे सदानन्द ही तुम्हारे ब्रजागिरि हैं। असलमें प्रयत्न बहुत नहीं करना पड़ा है। सहजमें ही काम सिद्ध हो गया है।"

"अच्छा? तुम वहाँ गये थे शायद?"

"हाँ गया था ही। नहीं तो क्या वह मेरे घरपर दर्शन देने आयेगा?"

"कहो तो भैया, सब सूनूँ।"

माणिकने कल रातकी सारी घटना गौरदाससे कही। "हुँ—" गंभीर दीर्घ निश्वासके साथ केवल 'हुँ' कर गौरदास उदासीन भावसे बैठे रहे।

माणिकने सोचा—बाबाजीको हो क्या गया! उसने फिर पूछा—"बाबाजी, आग क्या बिलकुल ही बुझ गई। अब जरा भी न जलेगी?"

गौरदास लम्बी सांस छोड़ कर उदास भावसे बोले—"आज इस कलकत्तेमें, कलत्तेके धनी–पदस्थ लोगोंके बीच ऐसे गौरवान्वित प्रतिष्ठित अवस्थामें मैंने संन्यासीको पाया है। प्रतिशोधका ऐसा सुयोग कभी मिला नहीं, मिलेगा भी नहीं। किन्तु जी मानों अब प्रतिशोध नहीं चाहता। उसने मेरा जो कुछ अपहरण किया है, उसे सहस्रों प्रतिशोधसे भी वापस न पाऊँगा। किन्तु भैया तुम मुझे मिलगये हो। मैंने तुम्हारे स्नेहसे हृदयमें शान्ति पाई है। तुम्हींने मानों मेरा सब गया हुआ धन ला दिया है। उसने मानों तुमको दे मेरा सब कुछ लौटा दिया है। इस शान्ति और सुखके साथ मेरा जीवन अच्छी तरहसे बीत जायगा। हिंसा भी

पाप है, प्रतिहिंसा भी पाप है । इसीसे सोचता हूँ कि पापकी आगसे हृदयको फिर क्यों जलाऊँ ? कौन जाने भैया, उस आगसे उसको जलाने जानेमें मेरी ही सब सुख-शान्ति कहीं भस्म न हो जाय । ”

माणिककी आँखोंमें आँसू आ गया । वह सहसा उठकर बाहर गया । अनन्तर मुँहको धोपोंछकर, कष्टके साथ आँसुओंको रोककर होठों पर फिर मुस्कुराहट लाकर कमरेके भीतर आया । गौरदास वैसे ही उदास भावसे बैठे हैं । उनका चेहरा उसी तरह चिन्तामें डूबा हुआ है । माणिकने मुस्कुराकर कहा—“ बाबाजी, इस आग बागकी बात पीछे देखी जायगी । यदि जलेगी तो जिसे भस्म होना होगा होगा ही ! न जले तो ही अच्छा । सदानन्दको आनन्दरससे देशको डुबाने दो, न होगा हम लोग भी डुबकी लगायँगे । तुमको बाबाजी, एक काम करना होगा । उस वक्त हम लोगोंके यहाँ तुम्हारा निमन्त्रण है । तुमने अभी तक केवल भैयाको ही देखा है । बहू को तो देखा नहीं । आज चलो बहू को भी देख आओ ।”

“ बहू को ! ”

“ हाँ नई बहूको । मैंने इस बीचमें व्याह किया है बाबाजी ! ”

“ तुमने व्याह किया है ? आहा, सुनकर बड़ा सुखी हुआ । ”

“ तुम क्यों सुखी न होगे बाबाजी ? तुमको तो मुश्किल सहनी न होगी ।”

“ क्यों भैया, तुम जवान हो, हृदयमें निर्मल स्फूर्त्ति है,–फिर भी तुम व्याहसे डरते हो ? ”

“ इसके निकट सब स्फूर्त्ति सूख जाती है बाबा । मैंने जिस लड़कीसे व्याह किया है, उसे यदि देखते ? ”

“ क्यों भैया, बहू क्या कुरूपा है ? मुखरा है ?”

माणिकने कहा–“ बहुत अधिक सुरूपा है बाबाजी, बहुत अधिक ‘ मुखरा ’ । हृदयमें बिल्कुल स्फूर्त्ति नहीं होती, ऐसा कह नहीं सकता । पर पूरा भरोसा नहीं होता ।”

गौरदासने कहा—“ भरपूर जवानीमें ऐसी सुन्दरी लड़कीसे तुमने व्याह किया है, फिर तुम्हारी स्फूर्त्ति बढ़ेगी नहीं, सूख जायगी ? यह क्या कहते हो भैया ? ”

" बाबाजी, मालूम होता है, तुम जवानी की उम्रमें बड़े रसिक थे। सुन्दर स्त्री पानेसे स्फूर्त्ति होनेका मर्म अच्छी तरहसे अनुभव करके ही ऐसा कह रहे हो।"

गौरदासने गहरी सांस छोड़कर कहा—" था ही भैया। मेरी स्त्री भी बहुत खूबसूरत थी—जाने दो दूसरी बात छेड़ो।"

" अच्छा बाबाजी, अब भी अपना परिचय न दोगे ?"

गौरदासने कहा—" अभी नहीं भैया। देखूँ यदि व्रजगिरिसे भेट हो जाय। नहीं ठहरो भैया, इस बातको भी अब छोड़ो-भूलने दो। छेड़नेसे अब आग भभक उठेगी। मालूम होता है, राखके भीतर आगकी चिनगारियाँ अबतक छिपी हुई हैं। बहू को दिखाओ भैया, बहूके स्नेहरससे इन चिनगारियोंको बुझ जाने दो।"

माणिकने कहा—" तो उस बहूके स्नेहसे केवल चिनगारियाँ ही क्यों आगके पहाड़ भी बुझा आ सकते हो। अच्छा, फिर याद रखना, भूल नहीं जाना। मेरे व्याहका यही प्रथम भोज है। तुम्हें ही खिला-पिलाकर पाकस्पर्श होगा।"

गौरदासने पूछा—" प्रथम भोज! पाकस्पर्श! क्यों यह देशमें नहीं हुआ ?"

" नहीं बाबाजी, जिस रातको व्याह हुआ उसी रातको बहू को लेकर भग आया। व्याह नहीं था, पूरा सुभद्राहरण था—विवाहकी रातको ही नायकनायिका भगे। देखो मैं रसिक पुरुष हूँ न ?"

" व्याहकी रातको ही बहूको लेकर भगे बात क्या थी भैया ?"

माणिकने कहा—" तुमने अपना परिचय नहीं दिया है बाबाजी। मैं ही क्यों दूँ—अच्छा यदि तुमको बहुत रंज होता है तो नाम गाँव न बताऊँगा घटना बताता हूँ।"

माणिकने तब संक्षेपमें सार्वभौमगृहवासिनी गंगा और यमुनाके सम्बन्धकी बातें, शूलपाणिकी पापचेष्टा, यमुनाका विवाह, पलायन आदिका वर्णन किया। केवल नाम किसीका न बताया। घटनाका वर्णन खतम कर माणिकने कहा—" अच्छा बाबाजी, जाता हूँ फिर। शामको मैं आऊँगा और तुमको अपने साथ ले चलूँगा। किन्तु एक बात है।"

" क्या बात है भैया ?"

" इस खाँ साहबके वेशमें तुम्हारा जाना ठीक न होगा। हिन्दू गृहस्थके घर खाँ साहब,—यह कैसे होगा ?"

" अच्छा तो बाबाजी बन जाऊँगा । "

" नहीं यह भी समयानुकूल न होगा । घरमें कोई महोत्सव तो हो नहीं रहा है, जो वैष्णव बनकर जाना ठीक होगा । तुम्हारे तो बाल, डाढ़ी-मूँछ सब नये निकल आये हैं । ऐसी नोजवानीको छिपा हीनता क्यों लाओगे । "

" फिर तुम जैसा कहो वैसा करूँ । "

" एक रातके लिए क्या बाबू नहीं बन सकते । बाबू बनना तो अब अच्छा शोभा देगा ? "

" और तो कोई नहीं आयगा ? "

" नहीं, यहाँ मेरे कोई बन्धु-बान्धव नहीं । तुम खाओगे और हम लोग । मेरा लुका चो िका व्याह ठहरा । पर तुम्हारे पास बाबुओं जैसी पोशाक कहाँ होगी, और तुम खरी ने भी कहाँ जाओगे । मैं ही सब लेता आऊँगा ।

" अच्छा भैया । "

माणिक चला गया । गौरदास फिर खाँसाहबके वेशमें दूकानपर आ बैठे ।

पाँचवाँ परिच्छेद ।

स्वामीका अधिकार

पाठक चलिये, एक वार वराहनगर चलें । मदन क्या करता है, यह भी देख आयें ।

बैठक खानेमें घनश्याम और मदन बैठे हैं । ससुरका ललाट और भौएं टेढ़ी हैं । जामाताका चेहरा गर्व और अभिमानसे उद्दीप्त है ।

ससुरने कहा—" फिर मेरे इस प्रस्तावसे तुम सहमत नहीं हो ? ग्राम्य असभ्यता छोड़कर, और हम लोगोंका यह उच्च सामाजिक जीवन ग्रहण कर हम लोगोंके बीच हम लोगोंके होकर न रहोगे ? "

मदनने उत्तर दिया—"देखने या शिक्षाके लिए मुझे विलायत जानेमें कोई आपत्ति नहीं है, पर यदि अपने सामर्थ्यसे कभी जा सकूँगा तो जाऊँगा । किन्तु आपके इस हेय प्रस्तावसे मैं कभी सहमत नहीं हो सकता । आपकी यह सम्पत्ति

कौन चीज है, मैं पृथिवीका राजत्व पानेपर भी अपने आपको कभी बेच न दूँगा। स्वाधीन देहाती मदन कभी ससुर का पोष्य मदन साहब न होगा। ”

“ अच्छी बात है, फिर मेरे साथ तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है, तुम यहाँसे बिदा हो। ”

मदनने कहा—“ मेरी स्त्री यहाँ है। उसे साथ ले जाऊँगा।

“ खूब ? वह मेरी लड़की है, तुम्हारी स्त्री नहीं। तुम्हारे साथ उसे न जाने दूँगा। ”

“ वह आपकी लड़की थी, पर अब मेरी पत्नी है। अपनी स्त्रीको अपने साथ ले जाऊँगा। आपके घर न छोड़ जाऊँगा। ”

घनश्यामने क्रोधसे गरज कर कहा—“ ऐसी बड़ी स्पर्द्धा ! तू असभ्य हलवाहा है, मेरी लड़की पर तू अपनी स्त्री होनेका दावा करता है। ”

“ स्त्री पर पतिका दावा रहता ही है। ”

“ रहता है—यदि पति जैसा पति हो एमा तेरा यह दावा स्वीकार न करेगी। उसकी सरीखी कोई भी लड़की तेरे जैसे हलवाहेको अपना पति माननेमें घृणा करती है। ”

“ जो करती हो करे, एमा अपने पतिसे घृणा नहीं करती, पतिका दावा कभी अग्राह्य नहीं करती। यदि करती तो मैं ले जाना न चाहता। ”

मदनकी ऐसी दांभिकतासे घनश्याम अत्यन्त क्रोधसे उत्तेजित हो उठे। उन्होंने कहा—“ एमा करती है ! मैं कहता हूँ। तेरे जैसे पतिके घर एमा जाना नहीं चाहती, जाने की इच्छा भी नहीं कर सकती। ”

मदनने कहा—“ एमाने कहा है कि वह मुझसे घृणा नहीं करती। वह मेरे घर जाना चाहती है। ”

घनश्यामने पुकारा—“ एमा ! एमा ! ”

एमा दरवाजे की आड़में ही खड़ी थी। वह सिर नीचा किये हुए थर्राते पाँवोंसे कमरेके भीतर आई।

घनश्यामने कहा—“यह देख एमा ! यही वह देहाती गँवार मूर्ख मदन है। देख, अच्छी तरहसे देख, मेरी लड़की हो, ऐसा उन्नत जीवन पा, ऐसी उच्च शिक्षा पा, तुझे इसे पति कहनेकी इच्छा होती है ? ”

एमाका चेहरा लज्जासे लाल हो उठा । उसने आँचल के छोरको अंगुलीसे लपेटते हुए, सिर झुकाये मृदु कंठसे कहा—" वे हैं तो पति ही । "

घनश्याम फिर टेबलपर मुष्टिघात और फर्शपर पदाघात कर घृणा और विरक्तिके साथ बिकट स्वरसे बोले—" यह मैं पूछता नहीं हूँ । ब्याह जब हुआ है तब लोग पति कहेंगे ही । मूर्ख यदि मेरे प्रस्तावसे सहमत हो जाता, तो हम लोगों जैसा हो हम लोगोंमें रहता । मैं भी वही कहता,–तू भी कह सकती । किन्तु यह गँवार भूत राजी न हुआ । अब बतलाओ, इस असभ्यको, इस मूर्ख हलवाहे को पति कहनेमें तुझे घृणा नहीं होती ? "

" नहीं बाबा, बल्कि—"

" बल्कि ! बल्कि क्या ? तेरे बल्कि का माने क्या ? " घनश्याम अत्यन्त रोष से गरज और धमका कर उठ खड़े हुए और जोरसे पाँव पटक पटक कर घरको कँपा यह पूछा ।

एमाने धीर निर्भीक भावसे सलज्ज मृदु कंठसे उत्तर दिया—" बल्कि गौरव ही होता है । "

" ओहो ! इसीसे पहले से ही शायद हलवाहे की बहू जैसी सजकर गौरवपूर्वक मेरे पास आई है । दूर हो, दूर हो अभागिनी मेरे पास से । "

एमा गृहस्थ बहूके वेष में ही आई थी । इतनी देर के बाद पिताने इस ओर लक्ष्य किया ।

एमा लौट चली । वह दरवाज़े तक भी न जाने पाई थी कि क्रोध और अभिमान भरे स्वरसे घनश्याम ने पुकरा—" सुन एमा ! "

एमा फिर लौटी ।

घनश्यामने कहा—" सुन एमा । जानती है, सारी सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणि तू ही है । आज यदि मेरा कहना न सुनेगी, हलवाहे के साथ चली जायगी, तो मेरी सम्पत्तिमें से एक पैसा भी तुझे न मिलेगा । "

मदन क्रोधसे फूल रहा था । किन्तु घनश्याम एमाके पिता हैं । इसीसे वह अबतक चुप था । किन्तु घनश्यामकी इस हीन धमकीने उसे चुप रहने न दिया । उसने कहा–"मेरी स्त्री आपकी सम्पत्ति नहीं चाहती । उसका प्रतिपालन करनेकी सामर्थ्य मुझमें है । इसीसे उसे लेने आया हूँ । "

घृणामिश्रित क्रोधसे मुहँ सिकोड़ मदनकी ओर ताककर घनश्यामने कहा—"है हलवाहेकी तरह हलवाहेकी स्त्रीका प्रतिपालन करनेकी सामर्थ्य है—एमाका नहीं।"

मदनने उत्तर दिया—"अपनी स्त्रीका प्रतिपालन अपने समान ही करूँगा। आपको इसपर बोलनेका कुछ भी अधिकार नहीं।"

घनश्यामने कहा—"तुम्हारे साथ मैं कोई तर्क नहीं करना चाहता। मैंने एमासे पूछा है, वही उत्तर देगी। कह एमा, तू जायगी?"

दुःखके उच्छ्वाससे एमाका गला रुँधसा रहा था। उसने उत्तर दिया—"बाबा, आप नाराज होते हैं, मैं क्या कहूँ? वे पति हैं, उनके साथ मुझे जाना ही होगा।"

"जाना ही होगा! मेरी लड़की हो इसके साथ जा मेरे मुँहपर काजल पोतेगी?"

एमाने कहा—"बाबा, वे पति हैं, पतिके साथ ससुराल जाऊँगी, इससे क्या आपके मुँहपर काजल पुतेगा?"

"वह यदि तुम्हारा पति होने योग्य होता तो फिर बात ही क्या थी?"

एमाकी करुण दृष्टि और करुणस्वर घनश्यामके हृदयका स्पर्श करता था।

एमाने कहा—"वे किस बातमें मुझसे अयोग्य हैं? मैं ही बल्कि उनके अयोग्य हूँ। वे योग्यसे अधिक हैं।"

करुणताके कोमल स्पर्शसे मानो तीव्र अग्नि और भड़क उठी।

घनश्यामने कहा—"धिक्कार है तुझको एमा! इसीलिए मैंने तुझे उच्च शिक्षा दी थी। इसीलिए मैंने तेरा जीवन उच्च आदर्श पर संगठित किया था। मेरा सब किया कराया क्या व्यर्थ हुआ?"

एमाने धीर दृढ़ स्वरसे उत्तर दिया—"कुछ वृथा नहीं हुआ है बाबा। आपने मुझे शिक्षा दी है, इसीसे मैंने कर्तव्यपालन, धर्मपालन सीखा है। इसीसे नारी जीवनके प्रधान धर्मका पालन करने जा रही हूँ।"

"दूर हो फिर। मैं ऐसी लड़कीका मुँह भी देखना नहीं चाहता। आजसे मैं तेरा पिता नहीं, तू भी मेरी लड़की नहीं। मेरी सम्पत्तिमेंसे एक पैसा भी तुझे न मिलेगा।"

एमा रोती हुई पिताके पाँवों तले पड़ बोली—"बाबा, बाबा, बिना अपराधके ही मुझे एक बारगी छोड़ देंगे। इतना स्नेह, माया, ममता सब एक बारगी भूल जायँगे। बाबा, आपके निकट मैं अब भी वही एमा हूँ। क्यों, क्यों फिर मेरा परित्याग करेंगे?"

" यदि तू मेरी वही एमा होती, तो तेरा परित्याग न करता । अब भी कहता हूँ एमा; इस इरादेको छोड़ो । "

यह कहते कहते घनश्याम स्नेहके उच्छ्वाससे अभिभूत हो गये । उन्होंने एमाको उठा, एमाके करुण अश्रुपूर्ण मुखको बाहुसे घेरकर गोदपर रक्खा और उसकी आँखोंके आँसू पोंछकर सिरपर हाथ फेरते हुए कहा—" एमा, मेरी लक्ष्मी बेटी रो नहीं, मेरी नाराजगी का कुछ खयाल न कर । अब मैं नाराज न हूँगा । क्या सच ही तुझको अपनी सम्पत्तिसे वञ्चित करूँगा । मेरे और कौन है एमा? एमा, मेरी लक्ष्मी एमा ! मेरी बेटी, मेरी बेटी हो मेरे पास रह, कोई डर नहीं । "

सहसा पिताके बाहुबन्धनसे अपनेको मुक्तकर एमा उठ खड़ी हुई । उसने आँखोंके आँसू पोंछ डाले और पिताके चेहरेकी ओर ताककर कहा—" बाबा, आप यह क्या कहते हैं ? आपकी एमा क्या ऐसी हीन है, जो आपके धनके लिए रोयगी ? आपके धनके लिए पतिको छोड़ देगी ? "

" अच्छा ! "

" आपके स्नेहको खो देनेके भयसे रोई थी बाबा, आपकी सम्पत्तिके लिए नहीं । आपके पाँव पकड़कर मैंने आपके स्नेहकी भिक्षा माँगी थी, आपकी सम्पत्तिकी नहीं । "

घनश्यामने कहा—" तो तुझको वह स्नेह भी न मिलेगा । यदि उसे पति मानकर उसके साथ चली जायगी तो तेरा मुँह कभी न देखूँगा—तेरा नाम भी कभी न लूँगा । "

एमाने रोकर कहा—" और कुछ चाहती नहीं बाबा । ज़रासा स्नेह चाहती हूँ—वह भी क्या अदेय है ? "

" नहीं स्नेह क्यों ? भिखारीपर जैसी दया करता हूँ, वैसी भी दया तुझपर न करूँगा । भूखों मरनेपर यदि मेरे दरवाज़ेपर भी आ बैठेगी तो तुझे रोटीका एक टुकड़ा भी न दूँगा । कुत्तेकी तरह निकाल बाहर करूँगा । "

मदन अब सह न सका । वह उठा और रोष और अभिमानसे छाती फुला मुँह ऊपरकर खड़ा हुआ; बोला—" ऐसी बड़ी बातें ! एमा भूखों मरनेपर आपके दरवाज़े आ बैठेगी और आप कुत्तेकी तरह उसे निकाल बाहर करेंगे ! जानते हैं, एमा किसकी स्त्री है ? जानते हैं एमाके पति मदनकी देहमें कितनी शक्ति है, कितना

सामर्थ्य है, हृदयमें कितना साहस और तेज है ? इस देहकी दुर्जय शक्तिसे, इस हृदयके अदम्य साहस और तेजसे जगत्में जो कुछ साध्य हो सकता है, मदनकी स्त्रीको उसका कभी अभाव न होगा। जबतक इस शरीरमें रक्तका एक बूँदभी रहेगा तबतक एमाको आपके दरवाज़े आ न बैठना होगा। मेरे मरनेपर भी मेरी सम्पत्तिसे एमाका गुज़र बसर होता जायगा, आपकी दयाकी भिखारिणी उसे न होना होगा। "

घनश्यामने गरज कर कहा—" तू इस मूर्खकी झूठी स्पर्द्धामें भूल सच ही क्या मेरा आश्रय छोड़ जायगी ? "

एमाका हाथ पकड़ कर मदनने गर्वपूर्वक उत्तर दिया-" अवश्य छोड़ जायगी। समर्थ पति कर आश्रय छोड़कर पिताकी भिक्षा एमा नहीं चाहती। एमा चलो, निष्ठुर पिताके दुर्व्यवहारसे रोओ नहीं। यहाँ तुमने जितना स्नेह खोया है, उससे सौगुना स्नेह मैं तुमको दूँगा। यहाँ तुम पिताका मुँह ताकती हो, मेरे घरमें तुम मेरे सर्वस्वकी मालिक होगी। "

एमाको साथ ले मदन चला गया।

" गई सच ही चली गई ! मेरे स्नेहका अन्तमें एमाने इस तरह बदला दिया। अनायास ही मुझे छोड़कर मदनके साथ चली गई ? "

घनश्यामने रोकर टेबलपर सिर रक्खा।

छठवाँ परिच्छेद।

मेनका ठकुरानीकी शुचि।

मदन बहू को ले आया। मेनका, गंगा, जया आदि बाहर आकर बहूको घरके भीतर ले गईं।

मेनकाने बहुको गोद पर ले लिया। उसका मुँह देख कर रो पड़ी।

" आहा, मेरी बहू चाँद जैसी है। आओ बहू ! घरकी लक्ष्मी घरमें रहो। मेरी गृहस्थीको हरी भरी कर दो। सात सालोंमें सात बेटे दे मेरे अँधेरे घरको सोनेके चाँदोंसे उँजेला कर दो। "

बहूको गोदपर ले बहूकी देह और सिरपर हाथ फेरते हुए मेनका अश्रुपूर्ण मुखसे, गद्गदकंठसे इसी प्रकारकी बहुतसी बातें कहने लगीं।

यमुना चिपककर आ बैठी। माणिकने भाभी कहकर प्रणाम किया। गदा आकर बहू ठकुरानी कह हँसता हँसता पाँवोंपर लोट गया। मदन दूर खड़ा मुस्कुराता रहा। आनन्दके उच्छ्वाससे एमा रो पड़ी। रंगिणीने भी आँखें पोंछी।

गदाने कहा—"बहू ठकुरानी तो रोने लगीं। बापके घरसे अभी आई हो तो रोओगी ही। पर यह तुम्हारे बापके बापका घर है। बापके घरसे यहाँ सुखसे रहोगी। यह देखो कैसे पति हैं, कैसे देवर हैं, मानो राम-लछमन खड़े हैं। और मैं हनुमान तो हूँ ही। दादा ठाकुरने युद्ध करके तुम्हारा उद्धार किया, नहीं तो एक छलांगमें तुम्हें कंधेपर बिठाये मैं समुद्र पार कर आता न? फिर देखो ये दो फूफी हैं, बिल्कुल सीधी-सादी हैं। और ये मेरी यमुना बहन हैं। और ये माँ ठकुरानी, कोसला रानी ही हैं। ये सबका भूत उतार देती हैं। इनके डरके मारे कौआ और चील्ह भी भगजाते हैं। देखो, उन्होंने तुमको गोदपर ही ले लिया है। और सार्वभौम ठाकुरको तो तुमने देखा नहीं। वे मानो राजराजेसरी देवताकी पिरतिमाहैं।"

सब खिलखिला कर हँस पड़े। एमा एक हाथसे आँखों के आँसू पोंछती थी और एक हाथसे हँसी रोकती थी।

हँसने-रोनेमें सबके आनन्दका उच्छ्वास अतिवाहित हुआ।

बेला हो गई। भोजन का समय निकट आया। सब उठकर घरके काम काजमें लगीं। मदन और माणिक बैठकखानेमें जा बैठे। गदा तमाखू भरने गया। यमुना एमाको ले मनकी बातें कहने सुनने के लिए एक एकान्त कमरेमें गई। रंगिणिने सोचा, मैं नौकरानी हूँ, बैठी क्यों रहूँ? कहाँ क्या काम-काज है, वह यह खोजने गई। जया रसोई बनाने और गंगा साग काटने गई।

मेनका ठकुरानी परान्न नहीं खाती थीं। वे हविष्यके कमेरमें रसोईके उद्योगके लिए गई। किन्तु कमरेमें पैर रखते ही उनके मनमें यह बात उठी कि बहू कृस्तान है, उसने बापके कृस्तानी घरमें कृस्तानी खाना पीना खाया पीया है। मेनकाने बहू को छुआ है, वे स्नान किये बिना हविष्यके कमरे में कैसे जायँगी।

गंगामें डुबकी लागाआना सोचकर लोटा और धोती हाथमें ले मेनका नीचे उतरी। किन्तु सीढ़ियाँ उतरते उतरते उन्होंने सोचा कि गंगाने भी तो बहू

को छुआ है। वह भी हविष्यके कमरेमें जायगी, उनकी ही बग़लमें बैठकर खायगी। इस लिए उसको भी डुबकी मार आना चाहिए। किन्तु बहूको सब ने ही छुआ है, मदन, माणिक, गदा आदि सबने ही छुआ है। उन सबसे तो अछा छूत होगी हा। बहू तो घरमें ही है, घरकी बहू घरमें ही रहेगी। रोज जब-तब उसे छूना ही होगा। सभी छूएँगे। कितना गंगास्नान करेंगे? घरमें तो गंगा बहेंगी नहीं। अब क्या उपाय किया जाय? फिर बहूका सिर मुड़ा प्रायश्चित्त कर शुद्धि की जाय। किन्तु बहू सधवा है, फिर उसका मूंड मुडा लड़केका अमङ्गल कैसे करेंगी। अच्छा तो फिर बिना मूंड मुडाये ही प्रायाश्चित्त किया जायगा। इसके लिए पण्डितको कुछ रुपया अधिक देना ही पड़ेगा। किन्तु प्रायश्चित्तकी बात ही किसतरह मुँहसे निकालें? बहू क्या खयाल करेगी?"

मेनका बड़े असमंजसमें पड़ीं। वे लोटा और धोती लिये सीढ़ीके पास बैठ चिन्ता करने लगीं।

जया रसोई घरके कमरेमें आग सुलगा चावल, दाल लेनेके लिए भांडारगृहमें जारही थीं, सहसा मेनकाको इस अवस्थामें देखकर उसने पूछा—"यह क्या बड़ी बहू? लोटा धोती लिये इस जगह क्यों बैठी हो? आनन्दके मारे बेखबर तो हो नहीं गई?"

जयाको देखकर मेनकाने कहा—"सुनो जया ननद, इधर तो आओ जरा। मैं सोच सोचकर मरी जाती हूँ, किनारा नहीं पाती, क्या करूँ कहो तो?"

जया पास आई। मेनकाने एकान्तके एक कोनेमें उसे बुला इधर उधर देखकर बहुत धीमी आवाजमें सब बातें उससे कहीं।'

जयाने कहा—"छि छि छि! तुम पागल हुई हो बड़ी बहू? ऐसी बात मुँह पर भी न लाओ। बहू सुनेगी तो क्या खयाल करेगी?"

"अनाचार तो कुछ हुआ ही है। फिर?"

"अनाचार! बापके घरमें जैसी चाल थी, उसी चालसे लड़की थी। वह क्या जानती थी कि यह अनाचार है!"

"न जान करके भी अनाचार करनेसे पाप तो लगता ही है, शुद्ध बिना हुए—"

" नहीं, वह अशुद्ध नहीं है । उसे प्रायश्चित्त करके शुद्ध करनेकी जरूरत नहीं । जो मनसे निष्पाप है, उसकी देहपर पापका कारिख नहीं लगता । उसने बापके घर बिना जानें बूझे चाहे कुछ किया हो, तुमने तो कुछ अपनी आँखोंसे उसे करते देखा नहीं । वह तुम्हारी बहू है, कायमनसे तुम्हारी बहू होकर वह तुम्हारे घर आई है, और क्या चाहती हो ? "

" यह तो सच है । फिर भी मन दुविधा करता है । पर एक काम क्यों न किया जाय ? बहू नई आई है, गंगा पास है, वैसे भी तो गंगास्नान करना ही होगा । इससे उसे गंगास्नान क्यों न करा दूँ ? गंगास्नानसे भी तो पाप कट जाते हैं । फिर कालीघाटमें पूजा करा दूँगी, मन ही मन कामनाकर पंच देवताओंको नैवेद्य चढ़वा दूँगी । बहू भी जानेगी और लोग भी जानेंगे कि बहूके आनेसे पूजा–होती है । और केवल तू जानेगी, मैं जानूँगी और देवता जानेंगे कि बहूके कृस्तानी पापोंके क्षयके लिए पूजा की गई है । यह हो जाय तो ठीक ! "

जयाने मुस्कुरकर कहा—" यह अच्छी बात है, यदि इससे तुम्हारे मनकी दुविधा दूर हो तो यही करो । शामको हम सब बहूको ले गंगा-स्नानकर गंगाको धूप-प्रदीप दे आयँगी । और पूजा करना हो तो कलपरसों करना । फिर भी तुम्हारी उस कामनाकी बात मैं कुछ भी नहीं जानती । वह सब तुम्हीं जानो और देवताओंक कानोंमें कहना । "

मेनकाने कहा–" अच्छा, फिर मैं गंगामें डुबकी मार आऊँ; हविष्य बनाना है । और सुनो गंगाके विषयमें क्या करें । वह भी तो कमरेमें जायगी, एक ही जगह बैठकर खाना होगा । वह भी यदि गंगामें डुबकी लगा आती तो अच्छा होता उससे कहूँ क्या ? "

" नहीं; और किसीसे न कहे । इससे तुम्हारी जाति न जायगी, डरो मत । और जाय भी तो उस बेला गंगास्नान तो करोगी ही, उससे सब दोष दूर हो जायँगे । "

मेनका आज आनन्दके कारण बहुत नरम हो गई है । वह और आपत्ति न कर अकेले ही जा गंगास्नान कर आई ।

सातवाँ परिच्छेद ।

रातके कोई नौ बज गये हैं। आज भोज है; निमान्त्रित व्यक्ति एकसे अधिक नहीं किन्तु मदन, माणिक और गदा थे तीनों ही पन्द्रह मनुष्योंका खाना खा सकते हैं । इसलिये मत्स्य-मांस बहुत आया है। जया रसोई बना रही थी। मेनका साग बना धीरे धीरे रसोईघर तक गई और रसोईके सम्बन्धमें जयाको नाना आदेश और उपदेश दे जप करने बैठीं। एमा और रंगिणी जयाकी मददके लिए हुक्म की प्रतीक्षामें सामनेके वराण्डे पर बैठी हैं। गंगा ऊपरके एक कमरेमें अकेले बैठीं पान बना रही थीं। मदन गदाको ले मिठाई खरीदने बाजार गया है। माणिक बैठक घरमें बाबूरूपी गौरदाससे बातें कर रहा है।"

यमुनाने गंगाके पास जाकर कहा—" माँ, जो बाबू निमन्त्रण खाने आये हैं, उन्होंने मुझे यह अँगूठी दी है।"

" कहाँ है देखूँ ?"

" यमुनाने अँगूठी माताके हाथ पर रखदी।"

गंगा अँगूठीको घुमा–फिरा कर देखती देखती सहसा चौंक कर उठ खड़ी हुई।

दीवारगीरीके पास आ गंगाने अच्छी तरहसे अंगूठी देखी। गंगाके संपूर्ण चेहरे पर रक्तकी लालिमा दौड़ गई। विस्फारित नेत्रोंमें उज्ज्वल ज्योति फूटी। छाती बहुत जल्दी जल्दी धड़कने लगी।

यमुनाने पूछा—" क्या मा ?"

गंगाने लड़खड़ाती आवाजसे पूछा–" यमुना, बतला तो, किसने तुझे यह अंगूठी दी है ?"

" जो बाबू निमन्त्रण खाने आये हैं, उन्होंने।"

" वे कौन हैं यमुना ?"

यमुनाने कहा—" यह तो मुझे मालूम नहीं माँ। उनके पास जाना पड़ा था। घूँघट खोल कर बातें भी करनी पड़ीं थीं। उन्होंने मेरे बापका नाम मेरा नाम, घर कहाँ है, आदि अनेक बातें पूछीं । हां माँ, मेरे बाबाका नाम क्या था? पूछनेपर

तुमने कभी बतलाया नहीं। आज देखो कैसा शर्माना पड़ा। माँ बतलाओ न मेरे बाबा का क्या नाम, था? वे कौन थे?

"पीछे बतलाऊँगी। उन्होंने और क्या पूछा? क्या कहकर यह अँगूठी दी?"

यमुनाने कहा—"अनेक बातें पूंछ कर उन्होंने अन्तमें कहा—"बेटी, मेरे भी एक सुन्दर बेटी थी। जब वह बिल्कुल बच्ची थी, तभी मैंने उसे खो दिया। होती तो वह भी आज तुम्हारी जैसी होती। तुमको देखकर न मालूम क्यों, आज मुझे उसकी याद आगई है। मेरे पास और कुछ है नहीं, केवल यह अँगूठीही मेरी सम्पत्ति है। यह तुमको देता हूँ, तुम पहनो और मुझे अपना पिता समझ कर कभी कभी याद करना।"

गंगाने पूछा—"और-सुन-यमुना-मेरी बात यही यही कि तेरी माँ है या नहीं-यह कुछ पूँछा।"

"यह तो पूछा ही था। तुम्हारे सम्बन्धकी बातें भी मैंने। कह दी हैं। काशीकी बातें, दादाके माँके यहाँ तुम्हारे रहनेकी बातें, दादाके यहाँकी बातें, आदि सब कह दी हैं। माँ क्या तुम उनको पहचानती हो?"

"हाँ—नहीं-उनको कभी मैंने देखा नहीं है।"

गंगाने मन ही मन कहा—"ये कौन हैं? यह अँगूठी इन्होंने कहाँ पाई? यह तो उनकी ही अँगूठी बिलकुल संक्षेपमें, उनका और मेरा नाम दो फूलोंके बीचमें एक कलीपर लिखा है। विवाहके बादसे यह अँगूठी बराबर उनके हाथमें थी। यह अँगूठी कभी उन्होंने अपनी अँगुलीसे उतारी नहीं। उस अन्तिम दिनको भी यह अँगूठी उनकी अँगुलीमें थी। इनको यह अँगूठी कहाँ मिली? ये कौन हैं?"

यमुनाके कहा—"माँ, तुम क्या सोचती हो? ऐसा क्यों करती हो? क्या हुआ है माँ? इस अँगूठीमें वह क्या लिखा है?"

गंगाने पूछा—"यमुना क्या अब भी वे उसी कमरमें हैं?"

"हाँ, मैं तो अभी बैठा देख आई हूँ।"

"और वहाँ कौन है?"

"माणिक दादा—" यमुनाने जीभ काटकर लज्जासे मुँह घुमा लिया। यमुना अबतक भी पुराना माणिक दादा नाम बिल्कुल भूल नहीं सकी है। उसे इससे बार बार शर्माना पड़ता है। सब हँस पड़ीं, किंतु गंगाके होठोंपर हँसी दिखाई नहीं पड़ी।

गंगा जल्दी जल्दी कदम बढाती हुई बाहरके उसी कमरेकी ओर चली। यमुना भी साथ गई।

आठवाँ परिच्छेद।

ऋण—परिशोध।

बात क्या है भैया? विवाहके समय भी परिचय नहीं दिया? पिता, पितामहका नाम नहीं बतलाया? कैसे व्याह हो गया? गौरदासने माणिकसे ये बातें पूछीं।

माणिकने उत्तर दिया—"यथा नामसे ही काम चला लिया गया।

"तुम लोगोंने जानना नहीं चाहा। तुम्हारी माँने भी इस पर आपत्ति नहीं की?"

"नहीं।"

"क्यों?"

माणिकने कहा—"बाबूजी, मैंने यह जाननेके लिए तंग करने की कोई जरूरत नहीं समझी। मैंने व्याह यमुनासे किया है, उसके बाप, दादा, कुलवंशसे मैंने व्याह किया नहीं है। शास्त्रमें भी लिखा है-स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि। कुल, वंश, बाप दादा कोई हो चाहे न हो, जल द्वारा वह आनेपर भी यमुना जैसी लड़कियाँ सिर पर उठा ली जा सकती हैं। सार्वभौम ठाकुरने ब्राह्मण की ही लड़की जानकर उसका प्रतिपालन किया है। जाति-रक्षाके लिए इतना ही काफी है। फिर भी कुल-शील की बातें माँ उठा सकती थीं। पर उनकी भी इस ओर प्रवृत्ति न थी।

"इससे यह विवाह असिद्ध नहीं हुआ?"

माणिकने हँसकर उत्तर दिया—"उस वक्त कुछ हुआ भी हो तो अब अच्छी तरहसे सिद्ध हो गया है। फिर भी हम दोनोंको अच्छी तरहसे हजम करनेमें अभी

देर है। एक बारगी जल्दीसे निगल गये न? वह अब भी भूलसे 'माणिक दादा' कह कर पुकारना चाहती है और मुझसे भी लोगोंके सामने 'यमुना,' 'तुम' आदि कहना नहीं छूटता। और वह कैसा मीठा लज्जाका भाव आँखें मिलाना, लाल मुहँ फेर लेना—यह क्या कुछ भी नहीं? हम लोगोंका प्रथम प्रणय तो बाबूजी बहुत सीधे सादे ढंगसे हो गया।"

"सीधा—सादा ढंग ही भैया बड़ा मीठा है, बड़ा सुन्दर है।"

माणिकने पूछा—"बाबूजी आज तुमको सबेरेसे ही बहुत गंभीर देखता हूँ। यहाँ जिस वक्तसे आये हो, उस वक्तसे उस गंभीरताका भाव मानों सागरजलके तलपर उतर गया है। और बाबाजी और खाँ साहबके वेशोंसे तो यह बाबूजीका वेश ही अच्छा दिखाई देता है। हम लोग ही बेढँगेसे मालूम होते हैं। मैं भी गंभीर बनूँ क्या?"

गौरदासने कहा—"नहीं भैया, तुम्हारी यह स्वभाव सरल हँसी और स्वभाव सरल स्फूर्ति मुझे बहुत अच्छी लगती है। तुमको मैं इसी तरह देखना चाहता हूँ।"

माणिकने कहा—"जो कहो बाबूजी! "खाँ साहब और बाबाजीके रूपोंके जैसे तुम्हारे पृथक् नाम हैं, उसी तरह इस बाबूरूपका भी कोई नाम रख दो।"

गौरदासने कहा—"अच्छा भैया, इस रूपमें मेरा नाम रक्खो-हरगोपाल।"

माणिक चौंक पड़ा। सहसा बगलका दरवाजा खुल गया। उन्मादिनीकी तरह गंगाने भीतर प्रवेश किया-पीछे यमुना थी।

"तुम हो! सच ही तुम हो! तुम जीते हो? ओह!"

गंगा मूर्छित हो गौरदासके पाँवों तले लोट गई।

"यह क्या? ओ! अमला! अमला! अमला!"

गौरदासने बैठकर गंगाकी मूर्छित देह गोदपर उठाली और आकुल स्वरसे पुकारा—"अमला! अमला!"

माणिकने जल्दीसे भीतर जाकर जया और मेनकाको पुकारा और पानी लाकर गंगाकी आँखों और सिरपर छिड़का।

जया रसोईघर छोड़कर और मेनका जपकी माला हाथमें लिये दौड़ आई। रमा और रंगिणी भी कमरेके पास आ खड़ी हुई। मदन भी आ पहुँचा। वह

भी जल्दीसे कमरेके भीतर आ गंगाके पास बैठ गया। गदा हाथकी मिठाई फेंककर एमा और रंगिणीके पीछे खड़ा हो झाँकने लगा।

" माँ ! माँ ! "

" अमला ! अमला ! "

गंगाकी मूर्च्छा टूटी। किन्तु उसने आँखें बन्द किये ही क्षीण कंठसे कहा—" यह क्या स्वप्न है ! मैं कहाँ हूँ ? सच ही तुम आये हो ? सच ही तुम जीते हो ? आँखें खोलनेपर फिर कुछ भी देख न पाऊँगी, सब मिथ्या है। "

" स्वप्न नहीं है अमला ! आँखें खोलकर देखो ! देखो, मैं ही हूँ। मरा मनुष्य फिर जीकर तुम्हारे पास आया है। "

गंगाने देखा। वह कुछ देर तक टकटकी लगा गौरदासके चेहरेकी ओर ताकती रही। अनन्तर वह आँखें बन्दकर फिर बेहोश हो गई।

" अमला ! अमला ! "

" हूँ। "

" आँखें खोलो। उठ बैठो। मिथ्या नहीं, स्वप्न नहीं, सच मैं ही हूँ। "

गंगा फिर अचेत हो गई।

गौरदासने घबराकर कहा—" भैया मुँहपर जरा पानी छोड़ो, सिरपर जरा हवा करो। "

मदनने गंगाके मुखपर पानी छिड़का। मेनकाने हवा की। जयाके हाथ-पावोंमें शक्ति न थी। माणिक जड़वत् दीवारके पास बैठा था।

सब कुछ देर तक चुप रहे।

गंगाने अपेक्षाकृत होशमें आ फिर देखा।

" अमला ! "

गंगाने गौरदासके मुँहकी ओर ताककर कमरेके चारों ओर देखा। सच ही स्वप्न नहीं है, कुछ भी मिथ्या नहीं है। पति जीवित हैं, लौट आये हैं। किन्तु अब तक कहाँ थे ? गंगाकी अस्थिर अवसन्न विशृङ्खल चिन्तामें क्रमसे स्थिरता और शृङ्खलता आई।

गंगा धीरे धीरे उठ बैठी। उसने देह और सिरका कपडा संभाला।

गौरदास—अब गौरदास क्यों—हरगोपालने कहा—स्वप्न नहीं है अमला, मैं जीता हूँ । मैं १४।१५ साल गली गली भटका हूँ । मैं प्रतिहिंसाके कारण पागलकी तरह घूमा हूँ । किन्तु तुम मुझे फिर मिलोगी, यह कभी खयाल न था ।

जिस नामका उच्चारण सार्वभौम ठाकुर बड़े आदरसे करते थे । जिस नामका उच्चारण मेनका ठकुरानी नित्य स्नेहके साथ करती थीं, उस चिरपरिचित ' गंगा ' नामको क्या पाठक, आप लोग भूल सकेंगे ? आप लोग भूल भी जायँ, पर ये लोग तो भूल न सकेंगे ? इनके निकट तो गंगा गंगा ही रहेगी । इसलिये नाहक अमला नाम लिखकर क्यों झंझट बढाऊँ ? गंगा गंगा ही रही । अमला नहीं हुई ।

गंगाने धीर मृदुकंठसे कहा—" प्रतिहिंसा—किसकी ? "

हरगोपालने कहा—" किसकी ? क्या तुम जानती नहीं ? जिसके कारण घरसे निकाल दिया गया, तुम पर पशुकी तरह व्यवहार किये, तुम्हारे आँसुओंसे भींगे मुखकी ओर देख कर भी देखना न चाहा,—इतने पर भी जिसे सच्चा बन्धु समझकर हृदयमें स्थान दिया था, वही विश्वासघातक पाषण्ड घड़ियालके मुखपर मुझे ढकेल दे । "

सब चौंक उठे । जया खड़ी थी, थर्राकर बैठ गई । माणिकने एक बार माँकी ओर ताककर हरगोपाल के मुँहकी ओर देखा ।

गगाने पूछा " बचे कैसे ? "

हरगोपाल कहने लगे-" घड़ियाल मुझे मुखमें दबा नदीके एक दूसरे किनारेपर एक जंगलके पास ले गया । मैं एक पेड़ पकड़कर चिल्लाने लगा । कई आदमी एक छोटीसी नावपर चढ़े जा रहे थे । वे सब मेरा चिल्लाना सुन आ पहुँचे और घडियाल को मार भगाकर उन्होंने मुझे अपनी नावपर चढ़ा लिया । मैं बेहोश हो गया ।

" आहा ! वे कौन थे ? उनके हाथ प्राण बेच देनेकी इच्छा होती है । "

हरगोपालने कहा—" कितने दिन बेहोश रहा, मालूम नहीं । होश आनेपर अपनेको एक अस्पतालमें पाया । देहके घाव पक उठे थे, बहुत ज़ोरका बोरवार चढ़ा । कभी थोड़ा बेहोश होता था, पर अधिकतर अज्ञान या अवसन्न अवस्थामें ही पड़ा रहता था । प्रायः दो महीने इस तरहसे बीते । फिर ज्वर छूटा,—घाव सूखने लगे—और ३।४ महीने मुझे उसी अस्पतालमें रहना पड़ा । इस बीचमें तुम्हारा कोई पता न चला—तुम्हारे मिलनेकी संभावना भी न रही । किसीसे क्या पूछता ? पिताके निकट भी खबर भेजनेकी इच्छा न हुई । दारुण मानसिक यातनासे कई

महीने बीते । अस्पतालसे निकलकर गुप्तरीतिसे मैंने पता लगाया तो मालूम हुआ कि पापी तुझको ले कहीं चला गया है । ”

अमलाने कहा—“ भग गया था, मुश्किलसे उसके हाथसे छूटकर मैंने रक्षा-पाई । फिर इतने दिनों तक कहाँ रहे ? ”

हरगोपालने कहा—“ अबतक अपना परिचय किसी को न दिया था, देनेकी इच्छा न हुई । प्रतिहिंसाके लिए वैरागी बनकर नगर नगर, तीर्थ तीर्थ, पापीकी खोजमें घूमने लगा । प्रतिहिंसाकी दारुण ज्वाला हृदयमें लिये इस तरहसे घूमते-फिरते रहना ही मेरे जीवनका व्रत हुआ । जितने ही दिन व्यर्थ भ्रमणमें बीतने लगे, उतनी ही अधिक हृदयमें आग प्रज्वालित होने लगी । मेरा शरीर, मन सब जलतासा रहने लगा । सोचता था, कि जीवनकी सब चीज़ें ही जब जलगईं, तब जीवन भी इसी तरह जले । ”

उच्छ्वासके आवेगसे हरगोपालका गला रुँध गया । सब निस्पन्द नीरव बैठे रहे । हरगोपालने माणिककी ओर देखा । माणिकका चेहरा विवर्ण हो रहा था और नीचे झुक रहा था । वह दीवारसे लगा खड़ा था अच्छा, माणिककी ऐसी दशा क्यों हुई ? इतने दिनोंके बाद उसे आकांक्षित परिचय प्राप्त हुआ, फिर उसमें उत्साह या स्फूर्ति क्यों नहीं ? ”

हरगोपालने फिर आत्म-विवरण आरंभ किया—“ ५।६ साल पहले उससे हरिद्वारमें भेट हुई । मुझे और भी व्यथा पहुँचानेके लिए तुम्हारे सम्बन्धमें उसने जो बातें कहीं, वह सब कह तुम्हें कष्ट नहीं पहुँचाना चाहता । तुम कहाँ किस भावसे थी, वह सब आज माणिक और यमुनासे सुना है । माणिक अब तुमने मुझे पह-चाना कि मैं कौन हूँ । मैं ही यमुनाका पिता हरगोपाल मैत्र हूँ । ”

माणिकने विवर्ण मुख, कंपित कंठसे कहा—“पहचान गया । मेरी बेअदबी माफ कीजिये । यह घटना मैं भी कुछ कुछ जानता था । एक बात पूछना चाहता हूँ, आपका शत्रु यह संन्यासी है, वह कौन है ? ”

“ वही रामतारण है । ”

“ सच ही,-रामतारण ! मेरे पिता हैं । ”

माणिक जल्दीसे चला गया । जया भी पीछे पीछे चली मदनने एक बार देखा । वह भी उठ चला ।

हरगोपालने पूछा—" अमला ! रामतारण माणिकका पिता है । कैसे सर्वनाशकी बात है । "

गंगाने कहा—" हाँ रामतारण बाबू ही माणिकके पिता हैं । मैं समझती हूँ, तुमको जबतक मालूम न हो सका था ? "

" नहीं, कैसे मालूम हो ? माणिकने मुझसे कभी अपना परिचय नहीं बतलाया । और यह बात मनमें कभी उठी भी नहीं । उसका नाम भी आज मैंने मदनके मुँहसे सुना है । "

गंगाने कहा—" पिताका ऋण पुत्रने चुका दिया है । नरकके मुँहसे माणिक और माणिककी माँ ने यमुनाको उबारा है । "

" मैंने यह सब सुना है अमला । केवल यही नहीं, तुम्हें और यमुनाको दे उसने पिताका अपहृत मेरा सब धन ही दे दिया है । और जानती नहीं अमला, मेरे परम शत्रु अपने पिताको भी उसने मेरी मुट्ठीमें कर दिया है । केवल ऋण ही उसने नहीं चुकाया है, उल्टे मुझे ही उपकार-सूत्रसे बाँध लिया है । "

अमलाने पूछा—" उसका पिता ? यह जिस संन्यासी की बात कह रहे हो वह कौन है ? "

प्रयागमें माणिकसे भेंट होनेसे आरंभकर अब तककी सब घनटायें हरगोपालने कहीं ।

अमलाने सुनकर कहा—" इसीसे माणिक इस तरह चला गया । चलो देख आयें, मुझे बहुत डर लगता है । "

दोनों बाहर गये ।

नौवाँ परिच्छेद ।

परिशोधका मूल्य ।

माणिक बहुत रो रहा है । वह विस्तरपर पड़ा मुँह छिपा रो रहा है । लड़केके पास बैठी माँ भी चुपचाप आँसू ढाल रही है । मदन भी पास बैठा है । धीरे धीरे मदनने जयाको संन्यासी सम्बन्धी सब परिचय दिया । माणिकका रोना और भी बढ़ गया । जया भी सिसक सिसक कर रोने लगी ।

जयाने रोते हुए कहा—" बेटा माणिक, रो नहीं। मैंने सब दुःख सहे हैं, पर तेरा यह दुःख इन आँखोंसे देखा नहीं जाता। उठ बैठो बेटा, मेरी ओर देखो जरा। विधाता, कैसे ऐसे हुआ। क्यों सोने जैसे माणिकने इस अभागिनीके पेटसे जन्म लिया? आज मेरे माणिक का मुहँ छोटा हो गया। यह भी मुझे आँखों से देखना पड़ा।"

माणिक उठ बैठा और आँखें पोंछते हुए क्रन्दनकम्पित स्वरसे माँ को सान्त्वना दे बोला—" रोओ नहीं माँ, यदि माणिकके लिए कोई गौरवकी बात है तो यही कि वह तुम्हारे पेटसे जन्मा है। तुम्हारा लड़का होनेसे ही माणिक अपना सिर ऊँचा कर सकता है। मेरा मुँह देखकर ही तुमने सब कुछ सहा है। तुम्हारे दुःख, तुम्हारा पुत्र हो, तुम्हारी लज्जासे क्या मेरा दुःख, मेरी लज्जा बढ़कर हैं। तुम्हारा पुत्र हो, तुम्हारी ओर देखकर मैं क्या यह सह न सकूँगा। माँ, मैं सब कुछ सहूँगा। सब कुछ मुझे सहना होगा। किन्तु आज सहा नहीं जाता। दिलको गहरी चोट लगी है। और किसीके आगे न रोऊँगा माँ। तुम्हारी गोद पर बहुत रोया हूँ माँ। आज फिर एक बार अपनी गोद पर बिठा लो माँ। तुम्हारी छाती पर सिर रख दिलभरके रोलूँ, जिससे दिलका बोझ हलका हो।"

" आ बेटा, मेरी गोदपर आ। रो बेटा!—मेरी गोदपर बैठकर जितना रो सके रो। रो रो कर आँसुओंसे कलंक की यह स्याही धो डाल।

माँ की छातीपर सिर रख, माँ का गला पकड़ पितृताड़ित शिशुकी तरह माणिक रोया। पुत्रको छातीसे लगा, उसे बाहुसे जकड़, माता भी रोई, हाय, माँ-बेटके इन आँसुओंसे कलंककी यह स्याही क्या न धो जायगी?

मदनने पुकारा—" माणिक! जया फूफी!"

माणिकने मुँह उठा मदनकी ओर देखा और फिर सिर नीचे झुका कहा—" मदन दादा, मैं रो रहा हूँ। दुर्बल असहाय बच्चेकी तरह माँ की गोदमें रो रहा हूँ। तुम मुझे बुरा कहोगे? दुर्बलताके कारण मुझसे घृणा करोगे?"

मदनने कहा—" नहीं माणिक रो लो। मैं बुरा न कहूँगा। तुम्हारे साथ मैं भी रो ही रहा हूँ। पुरुषको यदि रोना पड़ता है, तो ऐसी ही व्यथासे; माँ की गोदही उसके लिए रोनेका स्थान है। रोओ माणिक। यह स्याही यदि किसी तरहसे धुलेगी तो आँसुओंसे ही, और चीजोंसे नहीं।"

माणिकने कहा—" मदन दादा, मनको मैं किसी तरहसे समझा नहीं सकता। विधाताका कैसा खेल है—मैं इसके बीच क्यों जा पड़ा ? "

"पुत्र होनेसे पिताका ऋण चुकानेके लिए ही विधाताने तुमको इसके बीच ला डाला है । इसके लिए दुःखी क्यों होते हो माणिक ? उस ऋणका भुगतान करनेके लिए ही यमुना ऐसी आफतमें फँसी थी । तुमने व्याह कर उसकी रक्षा की है । तुमने उस ऋणको चुकानेके लिए ही यमुनाके पिताको विपदके समय आश्रय दिया था, उनके प्रतिशोधके सहायक हो, उनके शत्रुको उनको सौंप दिया है । हरगोपाल बाबूमें यदि मनुष्यता होगी तो वे समझ गये होंगे कि उनको यथेष्ट बदला मिल गया । "

इसी बीचमें हरगोपालने कमरेके भीतर घुसकर कहा—" मिल गया, यथेष्ट बदला मिलगया । माणिकने सब ऋण चुका मुझे ही ऋण-सूत्रसे बाँध लिया है। बेटा माणिक, मनको क्यों दुःखी करते हो । रामतारण एक समय मेरा बड़ा बन्धु था । बीचमें उसने चाहे जो कुछ किया हो, मैं उसे तुम्हारा पिता समझकर छातीसे लगा लूँगा ? इतने दिनों में भी क्या तुम मुझे पहचान नहीं सके ? मैं क्या ऐसा पशु हूँ कि तुम्हारे इतने उपकारोंको भूल जाऊँगा और उसके साथ शत्रुताका कोई कामकर तुम्हारे हृदयको और भी व्यथित करूँगा ? मेरी आग तो पहले ही बुझ गई बेटा । जो कुछ भस्म था, वह भी अब बह गया । "

माणिकने कहा—" यह मुझे मालूम है कि आप अब शत्रुता न रक्खेंगे । मैं इसके लिए दुःख नहीं करता । किन्तु—किन्तु—"

मदनने स्नेहके साथ माणिकका हाथ पकड़कर कहा—" किन्तु क्या माणिक ? उन बातोंकी अब चिन्ता न करो । उन बातों को मुँह में न लाओ—भूल जाओ ।"

माणिकने कहा—" भुला नहीं सकता मदन दादा । मदन दादा, तुम मुझे जानते हो, मेरे मनको समझते हो । तुम समझ सकते हो कि मेरा मन आज कैसा व्यथित हो रहा होगा । मदन दादा, वे पिता हैं । लोग कहते हैं, पिता धर्म है, पिता स्वर्ग है,—किन्तु मैं उनको इस भावसे देख नहीं पाता ? हृदय फटा जाता है, तो भी देख नहीं पाता ? उनको देवतुल्य देखनेके लिए मनको जितना ही अग्रसर करता हूँ, उतना ही सिर नीचेको झुकता है । "

मदनने कहा—" सिरके नीचे झुकते वक्त माँ की ओर देखो। माँ की गोद पर बैठ कर माँ का मुँह देखकर पिता सम्बन्धी दुःख भूलो। ऐसी माँकी गोद नरकमें स्वर्ग है माणिक।"

" दुःख यदि भूल सकूँगा मदन दादा, तो माँ की गोद पर ही बैठकर, माँ का मुँह देखकर ही। नहीं तो यह व्यथा, यह लज्जा किसी तरह भुलाई नहीं जा सकती।"

हरगोपालने कहा—" बेटा माणिक, चलो; तुम्हारे साथ चलकर एक बार तुम्हारे पितासे भेंट करें। तुम मेरे भी हो, उनके भी हो। तुमने ही मुझको और उनको एक बन्धनसे बाँध लिया है। चलो बेटा, आज उसी बन्धनसे उनको बाँध लायें।"

माणिकने कहा—" आप तो स्नेह-बन्धनसे बँध गये हैं, किन्तु वे भी बँध गये हैं या नहीं, उनको भी बाँध सकूँगा या नहीं, कह नहीं सकता। मालूम नहीं, वे मुझे देखकर सुखी होंगे या नहीं। यदि वहाँ जाना ही होगा तो आपके साथ नहीं, माँ के साथ जाऊँगा। माँ तुम चलोगी क्या? मुझे साथ ले चलोगी?

जयाने कहा—" चल बेटा। जब इतने दिनोंके बाद उनका पता लगा है तो एक बार उनसे भेंट करूँगी ही। और जब जाऊँगी तो तुझे साथ क्यों न ले जाऊँगी। तू ही उनका धन है, मैंने इतने दिनों तक तुझे यत्नसे रक्खा है। आज तुझे पाँवों पर डालकर अपना जन्म सार्थक करूँगी। और यदि उनको लौटा ला सकूँगी तो तेरे ही द्वारा—और किसी उपायसे नहीं।"

मदन उठ गया और एक गाड़ी बुला लाया। जया और माणिकको ले हरगोपाल और मदन उसी रातको आनन्दाश्रम गये।

जाते वक्त एमाने इशारेसे मदनको बुलाया। उसने पास आकर देखा कि एमाके पीछे खड़ी रंगिणी सिर नीचा किये रो रही है।

मदनने पूछा—" क्या?"

" इनको भी साथ लेते जाओ।"

" क्यों?"

" उन्हीं संन्यासी महाराजका चेला इनका पति है।"

" यह क्या? कैसे जाना?

" यह सब गाथा गानेके लिये समय नहीं । पीछे सुनोगे, इनको साथ लेते जाओ । "

" अच्छा चलें । "

रंगिणी कँपते पावोंसे मदनके पीछे पीछे चली ।

पाठकोंको स्मरण रह सकता है कि हरगोपाल और अमलाके इस प्रथम साक्षात्के समय मेनका ठकुरानी उन लोगोंके निकट ही थीं । सहसा विधवा गंगाके सधवा हो जानेसे मेनकाकी छाती धड़क उठी । वे गंगाकी ओर देखकर कँप उठीं । पतिके आगे विधवाका वेश ! कैसा अलक्षण है ! वे गंगाके खाली हाथों और सफेद कपड़ोंकी ओर देख न सकीं । किन्तु गंगा बहुत अस्थिर हो गई है, जया भी लँगड़ी सी बेहोश बैठी है । ऐसी अवस्थामें, गंगाके निकट ममता करने वाले किस मनुष्यको छोड़कर वे वहाँसे उठतीं । लाचार हो, वे इस तरहसे घूमकर बैठ गईं, जिससे गंगा उनको दिखाई न दे सके और ऐसी ही बैठी वे पंखा झलने लगीं ।

माणिक क्या कर रहा है यह देखनेके लिए जब सब उठे तो वे जल्दीसे उठकर अपने कमरेमें चली गईं । बहू आने वाली थी, इसलिए सवेरेसेही उन्होंने साड़ी और शंखकी चूड़ियाँ मँगवाली थीं । किन्तु बहूके लिए इनकी जरूरत न पड़ी । मेनकाने अब सन्दूक खोली और वही साड़ी और चूड़ियाँ निकालीं । ताकसे सिन्दूरकी डिब्बी भी उठा ली । किन्तु अबतक भी सब माणिकके कमरेमें दुःखित बैठे थे । गंगा भी वहीं थी । मेनका ठकुरानी दरवाजेके पास खड़ी हो इन्तजार करने लगीं । सबके चले जानेपर उन्होंने शंख तथा लोहेकी चूड़ियाँ और साड़ी गंगाको पहना दी ।

जल्दीसे रसोईघरमें जा और वहाँसे एक मछली ला गंगाके मुँहमें ठूंस दी ।

गंगाने हँस—रोकर मेनकाको प्रणाम किया और उनके पाँवोंकी धूलि सिर पर चढ़ाई ।

दसवाँ परिच्छेद।

पिता-पुत्र।

गहरी रातमें आनन्दाश्रमके उसी एकान्त विश्रामगृहमें सदानन्द और सुन्दर विराजते हैं।

सदानन्दने पूछा-" सुन्दर ! अबतक भी कुछ पता न चला ? "

सुन्दरने कहा-" नहीं गुरुदेव ! आप देख ही रहे हैं, एक तरहसे दिन रात रास्ते रास्ते रास्ते भटकता रहता हूँ। गौरदासका कुछ भी पता नहीं लगता। आज शामको केवल सर्वदमन दिखाई पड़ा था। किन्तु वह दूरकी एक गलीमें घुस किसी ओरसे सरक गया।

ज़रा खामोश रहकर सहसा उत्तेजित स्वरसे सदानन्दने फिर कहा-"सुनो सुन्दर ! इस वक्त गौरदासकी अपेक्षा सर्वदमन मेरा बड़ा शत्रु है। सर्वदमनके आश्रयमें होनेसे ही गौरदाससे मैं बहुत डर रहा हूँ। नहीं उससे डरता न था। यदि उसे सर्वदमनका आश्रय न मिला होता तो वह सहजमें ही पकड़ा जाता, उसकी समाप्ति भी कर दी जाती। सुन्दर ! मैं चाहता हूँ कि वह सर्वदमनके आश्रयसे बंचित हो।"

" यह कैसे हो सकता है ?

" हा ! हा ! हा ! सुन्दर ! यह नहीं समझे ! गौरदासको खोजते हो ? ज़रूरत नहीं ! वह छद्मवेशमें जहाँ छिपा हो उसे वहीं छिपा रहने दो। सर्वदमनकी खोज करो। और मिल जानेपर वह भगने न पावे। सुन्दर, गौरदासको चाहे पाओ या न पाओ, वृथा समय नष्ट न करो। तुमने सर्वदमनको देखा है, फिर उसे देखोगे। उसके रक्तसे ही मेरी इष्टदेवी इस राक्षसी प्रतिहिंसा की तृप्ति पहले कराओ। तेजस्वी सर्वदमनके उग्र वीर्य तप्त शोणितसे आगे उसकी पूजा करूँ, गौरदासको वे ला ही देंगी। न ला देंगी, तो समझूंगा कि उनकी रक्तपिपासा शान्त हो गई, गौरदासकी अब उनको ज़रूरत नहीं।

सहसा दरवाजा खुलगया। सदानन्दने देखा—" गौरदास ! "

हरगोपालने कहा—" गौरदास ही तुम्हारे सामने पहले हाज़िर है। यदि ज़रूरत हो तो वृद्ध गौरदासका ही शीतल रक्त लो ब्रजगिरि, युवक सर्वदमनका गर्म पतला रक्त नहीं। "

" गौरदास ! तुम यहाँ ? "

हरगोपालने कहा—" आज मैं तुम्हारा परम शत्रु गौरदास नहीं व्रजगिरि ! रामतारण ! आज मैं तुम्हारा पुराना बन्धु हरगोपाल हूँ। "

हरगोपाल ! रामतारणका बन्धु ! "

" हाँ हरगोपाल, रामतारणका बन्धु व्रजगिरिका शत्रु गौरदास नहीं। रामतारण ! जिस सर्वदमनके गर्म खूनसे तुम अपनी इष्टदेवीकी तृप्ति कराने कहते थे, वह सर्वदमन कौन है, जानते हो ? "

" जानता हूँ, मेरा विश्वासहन्ता अकारण अयाचित परम शत्रु है। तुमसे भी बढ़कर शत्रु है। मेरे समग्र सौभाग्यमें वह अभिशाप है, शान्तिमें अशान्ति है, सुखनिद्रामें दुःस्वप्न है, कुसुमशय्या पर कालसर्प है ?"

" सर्वदमन तुम्हारा पुत्र है—तुम्हारे पापोंका प्रायश्चित्त है, तुम्हारे ऋणका चुकानेवाला है, कलंकमें गौरव है, अमंगलमें मंगल है, अभिशापमें आशीर्वाद है।"

" पुत्र ! सर्वदमन मेरा पुत्र है ! सर्वदमन ही वह अभागा माणिक है। "

हरगोपालने कहा—" भाई रामतारण ! आज सब बैर भूल जाओ। आज फिर गोपालके बन्धु हो ! मैं सब भूल गया हूँ, तुम्हारे माणिकने मुझे सब भुला दिया है। माणिकने मेरी निराश्रय कन्याको नरकके मुँहसे उबारकर उससे व्याह किया है। माणिकके द्वारा ही मैंने अपनी स्त्री–कन्याको वापस पाया; माणिकके द्वारा ही आज तुमसे यहाँ भेट भी हुई है। माणिकने तुम्हारा सब ऋण चुका उल्टे मुझे ही ऋणी बना लिया है। आओ भाई, फिर तुम्हें छातीसे लगा वह ऋण मैं भी चुका दूँ। "

हरगोपाल बाहु फैलाकर रामतारणको छातीसे लगानेके लिए आगे बढ़े। रामतारणने उनको ठेलकर कहा—" चलो हटो, बड़े गौरवसे माणिकके गुण सुनाते हो। आये माणिक ! पितृभक्त पुत्र पिताके गौरवसे गौरवान्वित हो। "

हरगोपालने कहा—" माणिक आया है भाई। तुम्हारी बेइज्जती करने नहीं आया है। माँके साथ तुम्हारे चरणोंपर भक्ति की अंजलि दे स्नेह पाने आया है। भाई ! स्त्री सतीलक्ष्मी रमणीरत्न है। पुत्र तुम्हारा मनुष्य नामका गौरवकारी है। क्यों घृणासे मुँह घुमाते हो ? क्यों भ्रान्त अभि-

मानसे हृदयके दरवाजे बन्द कर रखना चाहते हो। लो भाई, दिल खोलकर इन लोगोंका दिल उठा लो। जीवन धन्य बनाओ, कभी सुखी नहीं हुए आज सुखी हो ?"

सदानन्दने कहा—" सुनो हरगोपाल ! तुम्हारा यह अनुग्रह पाकर, अनुग्रहका बन्धुत्व पाकर माणिक और तुम्हारे माणिककी माँ धन्य हुई हैं, हों। मुझे तो यह अति घृणाभरे पाँवोंसे ठोकर मारनेके सिवा और कुछ नहीं है। जाओ !—यदि आणकी आशा हो तो बिदा हो। और अपने माणिक तथा माणिककी माँसे कहना कि वे लोग मेरे सामने न आयें। उनका मुँह मैं देखना नहीं चाहता, देखकर सुखी न हूँगा, विश निकलेगा।"

इतनेमें ही जयाने माणिकके साथ कमरेके भीतर प्रवेश किया।

करुण दृष्टिसे पतिके चेहरेकी ओर देख, अत्यन्त करुण स्वरसे जयाने कहा—" विष निकलेगा ! क्यों ! देखो, इस अपने सुधाभरे सोनेके चाँद माणिककी ओर एक बार देखो। ऐसी सुधा पाकर भी विष निकलेगा। यह तुम्हारा है, इतने दिनों तक तुम्हारे इस धनको छातीसे चिपका कर मैंने इसकी रक्षाकी है। आज इसे तुम्हारे चरणोंपर समर्पित करने आई हूँ। छाती जुड़ानेवाला ऐसा धन पाकर रक्खोगे नहीं। देखो, एक बार देखो, ऐसा माणिक राजाके घर भी नहीं होता। क्यों मुँह घुमाये हुए हो ? एक बार देखो तो ! मेरा मुँह नहीं देख सकते हो मुझे पाँवोंसे ठेल सकते हो, माणिककी ओर क्यों न ताकोगे ? माणिकको क्यों पावोंसे ठेलोगे ! और और—मुझे भी क्या पाँवोंसे ठेल सकोगे ? तुम्हारी चाह और कोई न होऊं, पर माणिकको तो गर्भमें रक्खा है। तुम्हारे माणिककी तो इतने दिनोंतक रक्षा की है ?"

उसी तरह मुँह घुमाये हुये सदानन्दने कहा—" तुम्हारा सुधारस सोनेका चाँद तुम्हारे ही रहे तुम्हारा छाती जुड़ानेवाला धन तुम्हारी ही छाती जुड़ाये ! मेरी छातीमें वह विष है ! तुमने विषके आधार इस कालसर्पको इतने दिनोंतक गर्भमें रक्खा था।"

यह कहकर सदानन्दने वज्रशिखामय दृष्टिसे जयाकी ओर घूमकर देखा और वज्रकठोर स्वरसे कहा—" मैं कभी तुम्हारी ओर या तुम्हारे माणिककी ओर स्नेह—

दृष्टिसे देख नहीं सका, आज देख सकूँगा । माणिक जब निर्दोष शिशु था, तब तो देख ही न सका, आज देख सकूँगा ? आज कालसर्पकी तरह माणिकने मुझे घेर लिया है । उसने गुप्त शत्रु बन मेरी सुखकी अट्टालिका तोड़ दी है; मुझे अतल जलमें डुबा शत्रुका मुख उज्ज्वल किया है । आज उसे स्नेह-दृष्टिसे देखूँगा ? पागल कुत्तेकी तरह जो हरगोपाल १५।१६ वर्षों तक मेरे पीछे फिरता रहा है, पर मेरा बाल भी बाँका न कर सका, अपने प्रतिहिंसानलमें स्वयंही जलकर खाक हुआ है, आज वही अधम पापी कह, मुझपर दया कर मुझे आलिङ्गन करने आया है । इसका मूल कौन है ? तुम्हारा वही माणिक ! राजाके समान मेरा यह ऐश्वर्य था; उसे उसने मुहूर्त्त-मात्रमें मिट्टीमें मिला दिया । मैंने हरगोपालका अनिष्ट किया है, इससे उनकी शत्रुता मार्ज्जनीय है । किन्तु यह माणिक मेरा अयाचित अकारण शत्रु है-पितृवैरी है-हीन कुत्तेकी तरह मेरा अपमान करानेका कारण है आज उसने मर्मान्तिक शत्रुके पदतलोंपर पिताका सिर झुका दिया है । यह वही माणिक है-इसके अपराधोंके लिए क्षमा नहीं । ”

प्राणधन सोनेके चाँद माणिकके प्रति ऐसी अकारण अनुचित युक्तियाँ जयाके हृदयमें चुभीं । उसने कुछ उत्तेजित स्वरसे उत्तर दिया—“ तुम ऋणमें डूबे हुए थे, तुम्हारा ऋण चुका दिया माणिकने ! जो वैर भूलनेका न था, उस वैरको भुला हरगोपालको तुम्हारा बन्धु बना दिया है माणिकने ! गौरवसे तुम्हारे सब पापोंको-सब कलंकोंको-ढक दिया है माणिकने ! उसी माणिकको तुम माफ नहीं कर सकते ? छि ! छि ! यह क्या बक रहे हो ? एक बार अपने मनको टटोलो न ? हरगोपाल तुम्हारे शत्रु हुए, किसके दोषसे ? उन्होंने तुमको अपना बन्धु समझकर तुम्हारे हाथ अपनेको विश्वास कर सौंप दिया था, वही विश्वास तोड़कर तुमने उनका सर्वनाश किया । तुमने उनका सर्वस्व लूट लिया था, माणिकने उसे लौटा दिया है । तुम्हारा नाम लेनेसे घृणासे जो मुँह घुमा लेते थे, वेही आज तुम्हें छातीसे लगा सुखी बनाने आये हैं । हरगोपालका अभिशाप तुम्हारे जीवनमें और मरणपरभी तुम्हारे सिर चढ़ा रहता, उसी अभिशापके बदले उनका आशीर्वाद ला दिया है माणिकने ! और क्या चाहिए ? पुत्रसे पिता और क्या चाह सकता है ? पुत्र पिताका और क्या कर सकता है ? ”

सदानन्दने विकट अट्टहासकर कहा—"आज मैं दयाका पात्र हूँ! जिस रामतारणने अपने बुद्धिबलसे सैकड़ों धनियोंके लड़कोंको पुतलोंकी तरह नचाया है, जिस तेजस्वी व्रजगिरिने तीर्थ तीर्थमें संन्यासियोंसे पूजा पाई है, अपनी क्षमतासे जिस सदानन्दने इतने पदस्थ लोगोंको अपना चरणसेवक बना रक्खा है, आज वही दयाका पात्र है! उसका शत्रु, उसका पुत्र, उसकी स्त्री ये सब आज उस पर दया दिखाने आये हैं! धिक्कार है मुझे! इस स्वर्गसे नरक वाञ्छनीय है!—सुन्दर!"

सुन्दरका हाथ पकड़ जल्दीसे सदानन्द दूसरे कमरेमें चले गये और उन्होंने दरवाजा बन्दकर लिया।

ग्यारहवाँ परिच्छेद।

कराल मुखमें अभय हास्य।

दूसरे दिन प्रातःकाल मेनका ठकुरानी रसोईघरके सामने आ खड़ी हुई। पकी, अधपकी, और बिना पकी हुई बहुविध खाद्यसामग्री वैसे ही सजी पड़ी थी! आहा! इतनी चीज़ें किसीके पेटमें नहीं गईं। मेनका ठकुरानीने अति दीर्घनिश्वास छोड़ी। अनन्तर वे धीरे धीरे रसोईघरके भीतर गईं। उन्होंने खाद्य पदार्थोंको उलट-पलट कर यह जाना कि वे ख़राब हो गये हैं या नहीं। जो ख़राब हो गये थे उनको मेहतरानीको देनेके लिए अलग रख दिया। जो अच्छे थे, उनको सजाकर एक ओर रक्खा। आहा! कल ही बहू आई, और मुँहमें एक कौर अन्नतक न डालसका। यमुना भी अभी छोटी ही है, वह भी भूखों मर रही है। गंगा भी भूखी होगी। वे सब और जया ननदभी पतिके साथ आती होगी। कल उतनी रातमें क्या उन सबको वहाँ खाना मिला होगा? सवेरे सवेरे रसोई बन जाती तो सब लोग खा पी लेते, किन्तु बनाये कौन? जया है नहीं। बहू साहबकी लड़की है, अभी कलही आई है, उसने हाँडी कभी हाथसे छूई न होगी, देखीभी न होगी। यमुनानेभी अबतक फूल तोडा है, गाना गाया है, पोथी पढ़ी है,—उसनेभी रसोई कब बनाई है? गंगा है, उसकाभी मन ठिकाने नहीं। वह क्या रसोईमें नमक मसाला ठीक डाल सकती है।

मेनकाने सोचा कि वे खुद ही रसोई बनायेंगी। राँध–परोस कर और सबको खिला–पिलाकर वे फिर गंगामें डुबकी लगा आयेंगी, और अपना हविष्य बनायेंगी। फिर गंगा तो सधवा है–वे ही अकेली हैं, हविष्यके लिए इतनी जल्दी भी क्या है?

मेनका रसोईकी तैयारीमें लगी। इसी वक्त गंगा नीचे आई। मेनकाने कहा—"न्हा धोकर कुछ जलपान कर लो न? कल रातको पेटमें अन्न नहीं गया। न हो, वासी भात ही खा लो।"

गंगाने कहा—"भूख नहीं है बड़ी बहू। मन स्थिर नहीं है। वे सब कुशलता-पूर्वक लौट आयें, न्हाने खानेकी इतनी फिक्र क्या? तुम यह क्या कर रही हो?"

मेनकाने कहा—"सब भूखे हैं,—चीजें सब खराब होती जा रही हैं, उनको पकाऊँ। यहीं बैठो। मन स्थिर हो जायगा।"

गंगा बैठ गई।

ऊपर एक कमरेमें एमा और यमुना बैठी हैं। दोनों खामोश हैं। उनके चेहरों-पर उत्कण्ठाका भाव झलक रहा है।

"हिः! हिः! हि! बहू ठकुरानी, हिः! हिः! हिः!" गदा हँसता हुआ आकर बैठ गया।

"क्या गदा?

"कुछ नहीं बहू ठकुरानी। वैसे ही तुम्हारे पास आगया। तुम आई और साथ ही इतना बखेड़ा भी आया। तुम्हारे पास बैठकर मनकी दो बातें कहता—सुनता, वहभी न कर सका।

"तो अब कह न?"

"हिः! हिः! हिः! इसीसे तो आकर बैठा हूँ। बहू ठकुरानी, तुम्हारे आनेसे मुझे कितना परमानन्द हुआ है, कह नहीं सकता। हिः! हिः! हिः! बहू ठकुरानी, तुम बहुत अच्छी हो।"

गदा की हँसी और आनन्दसे एमा और यमुना दोनोंके मनका भाव हलका हो गया। एमा हँसी; यमुनाने भी हँसकर पूछा—"मैं अच्छी नहीं गदा?"

गदाने कहा—"तुम भी अच्छी हो। पर बहन, चाहे करोध करो या न करो, मेरी बहू ठकुरानी की तरह तो नहीं हो। तुमको तो बराबर कहता हूं, अच्छी हो,

बहू ठकुरानी मेरी और भी अच्छी हैं। देखो बहू ठकुरानी, मैं मूरख मानुष हूँ, मुंह से कुछ खराब निकल जाय तो बुरा न मानना।"

एमा—"क्यों बुरा मानूंगी गदा? तू बड़ा बुद्धिमान् है।"

गदा—"हाः हाः हाः हाः! तो बहू ठकुरानी, दया किरपा कर तुम जो चाहे कहो। मैं क्या तुमसे बातें करने लायक् हूँ। दादा ठाकुरके पाँवों तले पड़ा हूँ, खदेड़ो भी तो न जाऊँगा। दादा ठाकुर मेरे बहुत अच्छे हैं, बहू ठकुरानी, ऐसा पति न मिलेगा। कहनेसे यमुना बहन नाराज़ तो होंगी छोटे दादा ठाकुर अच्छे हैं, पर मेरे दादा ठाकुर के आगे वे कुछ भी नहीं। वाह!"

यमुना—"मैं नाराज क्यों होऊंगी गदा?"

गदा—"नाराज होगी क्यों नहीं? वे तुम्हारे पति हैं, तुम उनसे बड़ा और किसीको क्यों देखोगी? तो यह पति भी जो तुम्हें मिला है वह मेरे दादा ठाकुर की बदौलत। तुम उनको ही अपना असली पति समझो।"

एमा और यमुना हँस पड़ीं। गदा भी हँसा, बोला—"हिः हिः हिः! कैसा सुनाया है बहू ठकुरानी, यमुना बहनको, मेरे दादा ठाकुरके आगे इनके पति—वाह! यह हो नहीं सकता। देखो बहू ठकुरानी, तुम आई हो, अच्छा हुआ। अब एक दिन मुझे पेट भर खिला दो।"

"खायगा क्या कह?"

"हाः हाः हाः तुम बड़ी अच्छी हो बहू ठकुरानी। पर कहूँ क्या? मुझे तो सभी चीजें अच्छी लगती हैं। और दादा ठाकुरके यहां खाने—पीनेका कोई दुःख नहीं है। एक बार जाकर देखो न, कितनी सामगरी रक्खी है। सवेरे, वासी भात, चिवड़ा, लाई जो चाहता हूँ खाता हूँ, राड नारियलका दुःख नहीं। दो पहरको, कहूं क्या तुमसे बहू ठकुरानी, मां दस हाथोंसे परोसती हैं, और मैं खाता हूँ। पेट बिल्कुल फटने लगता है तोभी नहीं उठता। रोज इतना खाता हूँ कि बिना किसीके उठाये उठता ही नहीं। और माँ बकती रहती हैं,—कहती हैं—राक्षस है राक्षस! खाते वक्त तो इसे होश नहीं रहता।' फिर देखो बहू ठकुरानी जब खाने बैठा और मुंहको अच्छा लगा, तब तो मुझे होश सचही नहीं रहता। सोचता हूं, मेरे दस पेट क्यों नहीं हुए?"

एमाने कहा "फिर अच्छा तो है। अब क्या खायगा, मैं बनादूंगी!

"हाः हाः हाः ! हां बहू ठकुरानी, यदि बनाओतो एक चीज बनाओ । उसका नाम तो मुझे याद नहीं आता । पर मां को जैसा बनाते देखा है, वैसा बताता हूं । चना और उर्द की बराबर दाल रातमें फुलादो । सवेरे दालके छिलके अलग कर दोनों को खूब पीस डालो । फिर पीठीमें मसाला छोड दो और पीठीको रोटीकी तरह गोली पोओ । फिर उसे दुहरा और दुहरासे चौहरा करो । फिर उस घी या तेलसे पकालो । पकाकर दहीमें छोड दो । बस यही बनादो, तो एक दिन खूब भर पेट खालूं । वह सारवभोम ठाकुर आरहे हैं !"

"आँ ! दादा ! कहाँ ! दादा ! दादा !"

यमुना दौड़कर सार्वभौम ठाकुरके पास पहुंची ।

"बेटी ! बेटी !"

यमुना को गलेसे लगा सार्वभौम ठाकुर रो पड़े ।

कलकत्तेमें घर ठीक हो जानेके बाद मदन और माणिकने सार्वभौम ठाकुरके पास तारसे खबर भेजी थी । वे तार पाते ही चल पड़े थे । आज प्रातःकाल ही उनके यहां पहुचेनेकी खबर थी । इसलिए उनको लेनेके लिए मदन हवड़ा स्टेशन गया था । रेलसे उतरते ही उन्होंने मदनसे सब खबर सुनी । मदनने उनको एक बार आनन्दाश्रममें ले जाना चाहा । किन्तु एक बारगंगा और यमुनासे भेट किये बिना उन्होंने जाना न चाहा । लाचार हो मदन उनको डेरेपर ले आया । नीचे गंगासे भेट कर वे ऊपर आ रहे थे । मदन मेनका और गंगासे रातकी घटना कह रहा था ।

यमुना और सार्वभौम एक दूसरेको पकड़ रोने लगे । एना घूँघट खींचकर अदबके साथ खड़ी हो गई ।

गदाने कहा—"देखो ! इतने दिनोंके बाद आये—यहाँ इस बीचमें क्या क्या हो गया । आनन्दसे हँसना चाहिए था वह ता किया नहीं; रोने लगे । बहूका आना सुनकर माँ पहले ही चिल्ला उठी थीं । फूफीका मरा पति जीता आ गया, इससे वे बिल्कुल बेहोश हो जमीनपर लेट गई, कोई हवा करता था, कोई पानी छिड़कता था, यमुना बहन रोती थी, वह पति कितना पुचकारता था, मरा पति जीता मिला नहीं, मानो जीता पति ही मर गया । छोटे दादा ठाकुरने अपने बापका पता पा माँ की गोद आँसुओंसे तर कर दी । भाई, तुम सब भले आदमियोंके यहाँ उल्टा ही होता है ।"

सार्वभौम हँस पड़े और बोले—" हमारा यह आनन्दका ही रोना है गदा। तू खूब हँसा था ?

गदाने कहा—" हँसा था। "

सार्वभौमने पूछा—" ये कौन खड़ी हैं यमुना ? "

यमुनाने कहा—" तुम्हारी एक और यमुना हैं। आओ दीदी, दादाको प्रणाम करो। दादा तुम्हारे भी दादा हैं। "

एमाने आगे बढ़कर प्रणाम किया।

सार्वभौमने आशीर्वाद दिया—" चिरायुष्मती हो बेटी, पतिपुत्रयुक्ता चिरभाग्यवती हो। यह मदनकी पत्नी है यमुना ? "

" हाँ दादा, यही मदन दादाकी बीबी बहू है। "

इसी समय गंगाने आकर कहा—" दादा मदनसे सब बातें सुननेसे मन बहुत अस्थिर हो रहा है ! चलिये, सब कोई आनन्दाश्रम चलें। हम सबके जानेसे जया दीदीको भी ढाढ़स होगा। "

" मदन क्या कहता है ? "

" वह भी चलने कहता है ?

" अच्छा चलो। यह कह सार्वभौमने यमुना की ओर देखा और कहा—" चलते वक्त बेटी, एक बार माँका नाम सुनाओ। मेरा हृदय कँप सा रहा है। कौन जाने भगवतीके मनमें क्या है ? भय दूर करो माँ आभया ! करालमुखमें आज भ्रुकुटी क्यों माँ ?

सार्वभौम ठाकुरके मुँहकी ओर देख और मुस्कुराकर यमुनाने गाया—

" भ्रूकुटि भीषणानना अग्निनयना--
रक्तरंजित लोलरसना,
कालवरण करालवदना !
तो भी अभय हास्य वह
नयन कोरमें श्यामा ये माँ !
हो न भीषणा
रोषणा घोर गर्जना दानवत्रासना

अट्टाट्ट हासा
घनघोर घोषा
असुरनाशी असिधारणा
रणताण्डवरङ्गे
दलमलि दानवचण्डनर्त्तना
तो भी अभय हास्य वह
वरदा श्यामा ये माँ !
हो न भीषणा
मुण्डमाला करमेखल कपाल भूषण
ये तो श्यामा माँ !
भृकुटि से भय क्या येतो श्यामा माँ
श्यामा माँ ये तो श्यामा माँ

सार्वभौम ठाकुरने गद्गद हो कहा—" माँ, भगवती ! क्यों तुम्हारे कराल मुखमें वह अभय हास्य नहीं देखता ? तलवार देखकर क्यों डरता हूँ, हुंकारसे क्यों भय पाता हूँ ?

केवल गदा घरमें रह गया । और सबको ले मदन आनन्दाश्रम गया। मेनकाका रसोईका उद्योग अधूरा ही रह गया । आश्रम की बातें सुनने पर रसोई बनाने के लिए उनके हाथ पाँव न उठते थे ।

बारहवाँ परिच्छेद ।

शूलपाणिकी नवीन आशा ।

गहरी रातमें आनन्दाश्रममें सहसा इस तरह रसभंग होनेकी खबर कमरे कमरेमें फैलगई । संन्यासी शायद खूनी आसामी है, डकैत है; दगाबाज है, बदमाश है इत्यादि । उसे जान–पहचानके लोगोंने आकर पकड़ लिया है; शायद पुलिस भी आ रही है । सेवकों, अनुचरों और नायिकाओंकी आनन्दरसकी निमग्नता क्षणभरमें ही दूर हो गई । प्रायः सब ही, कुछ न कुछ माल हथिया कर रातमें ही आनन्दनिकेतनसे भाग निकले ।

रसकुंजरिका नामकी कोई नायिका भक्तप्रधान शूलपाणि बाबूके प्रति विशेष भावसे आनन्दमयी थीं। इसने रातमें ही शूलपाणि बाबूके घर आकर आश्रय लिया और उनको निरानन्दकी वह खबर सुनाई।

दूसरे दिन सवेरे विस्तारके साथ सब हाल जाननेके लिए मुखोपाध्याय आनन्दाश्रमको भेजे गये। आश्रमके जो दो एक आदमी भगे नहीं थे, उनको कुछ दक्षिणा दे बहुत पूछ–ताछ करने पर मुखोपाध्यायको इतना मालूम हो सका कि हरगोपाल मैत्र जीते हैं और यहाँ आ गये हैं, वे अपनी स्त्री–कन्याको भी पा गये हैं, कन्याका विवाह हो गया है, जमाई भी आया है, और सदानन्द रामतारण कहे जाकर पहचाने गये हैं किन्तु यमुना ही हरगोपालकी लड़की है, माणिक ही उनका जमाई है, यह मुखोपाध्यायको मालूम नहीं हो सका।

घनश्याम द्वारा लाञ्छित हो, घर लौटनेपर शूलपाणिको बदला लेनेकी चिन्ता हुई थी। उन्होंने सोचा था कि इसी चैत्रमास में ही जनार्दनके वसीयतनामेकी आठ वर्ष की अवधि पूरी होगी; घनश्यामकी जमींदारी घनश्यामको सौंप देनी होगी। किन्तु यदि सौभाग्यसे हरगोपालकी कन्या मिल जाय तो वह आधी जमींदारी और अब तकमें जमा हुआ रुपया पायेगी। शूलपाणि उसके परम हितैषी हैं, उन्होंने गत आठ सालों तक उसकी बहुत खोज की है, इस प्रकार समझाकर उस तरुणी कन्याको और उसके पतिको अपनी मुट्ठीमें कर सकेंगे। वे उनकी हितैषणा और बुद्धिमानीसे आकृष्ट हो उनको ही मैनेजर रक्खेंगे। इसी पदपर रहकर, नित्य नये जंजाल बाँधकर, और नित्य नये मामले मुकदमे तथा दाँव-पेंच रचकर एक ओर अनभिज्ञ सुखप्रिय, क्लेशसे भागनेवाले घनश्यामको तंग कर सकेंगे, दूसरी ओर आमदनी भी खूब होगी।

इस प्रकारकी चिन्ता कर उन्होंने उसी दिन सब अच्छे अच्छे अखबारोंमें जनार्दनकी आधी सम्पत्तिकी अधिकारिणी हरगोपालकी कन्याके सम्बन्धमें विज्ञापन भेजे। प्रत्येक पत्र–पत्रिकामें बड़े बड़े अक्षरोंमें ऐसी जगह विज्ञापन को स्थान दिया गया, जहाँ सबकी नजर पड़ सके।

आज यह खबर पाकर शूलपाणि बहुत खुश हुए। ईश्वरकी अपार करुणा है! इतनी शीघ्र उनकी इच्छा पूरी हो गई।

शूलपाणिने स्थिर किया कि इसी वक्त हरगोपालसे मिलें और उनसे वसीयत-नामे की बातें कहकर घनश्याम की निन्दा करें, और अपनी हितैषणाकी बात उनको समझाकर बाध्य कर लें। किन्तु इसके पहले घनश्यामको जरा छकाना चाहिये। उन्होंने उस दिन चोह मुँहसे कितनीही बहादुरी झाड़ी हो, किन्तु कन्याके साथ हर-गोपालके लौटनेकी खबर पानेसे उनको निश्चय ही सन्ताप होगा। शूलपाणि मैनेजर रूपमें घनश्यामको यह खबर देंगे। शूलपाणिने अति शिष्ट और मार्जित भाषामें गुप्त तानेजनीसे भरी नीचे लीखी चिट्ठी लिखी।

"प्रिय महाशय,

आपको आपके स्वर्गीय पिताके वसीयतनामे की बातें सदा याद रहती होंगी। निरुपम पितृभक्ति और भ्रातृस्नेहके कारण आप इस चिन्ताके मारे अबतक छटपटाते रहते थे कि कब उस अनाथ भतीजी का पता लगेगा और आप परलोकवासी पिताकी इच्छा पूरीकर पुत्रका कर्तव्य पालन कर सकेंगे, तथा भतीजीको भाईकी उत्तराधिकारिणी बना भाईका कर्तव्य पालनकर कृतार्थ होंगे। आज नीचे लिखी खुशखबरी आपको दे मैं आपकी इतने दिनोंकी चिन्ता और अशान्तिको दूर कर सका, आपके सच्चे स्नेह और बन्धुत्वका बदला चुका सका, इससे हृदयको अपार आनन्द हो रहा है।

आपके भाई हरगोपाल बाबू जीते जागते हैं। वे अपनी स्त्री और कन्याके साथ कलकत्ते आये हैं। यदि आप भाई से मिलकर सुखी होना चाहें तो आनन्दाश्रममें जा उनसे मिल लें।

वसीयतनामेमें लिखी आठ वर्षकी अवधि पूरी होनेमें अब भी कुछ देर है। अवधि पूरी होनेपर, आप भ्रातृस्नेह और धर्मभीरुताके कारण अपने भाईको भाईका अधिकार देनेमें कुण्ठित न होंगे, यह कहना ही व्यर्थ है। इति

आपका अत्यन्त विश्वस्त और अनुगतबन्धु

"श्रीशूलपाणि चौधरी"

शूलपाणिने बेहराको बुला बहुत शीघ्र घनश्याम को चिट्ठी दे आनेका हुक्म दिया और साहबसे इनाम माँगने कहा।

शूलपाणि रवाना होने ही वाले थे कि इतनेमें ही किसी धनी मुवक्किलका कोई कर्मचारी बहुत ज़रूरी काग़ज-पत्र ले आ पहुँचा। इसलिए उनको अटक जाना पड़ा। काग़ज़-पत्र देखते देखते कोई ग्यारह बज गये।

तेरहवाँ परिच्छेद ।

भाई भाई ।

एमाके चली जानेपर दिनभर घनश्याम घरसे बाहर नहीं निकले । उन्होंने किसीसे बाततक नहीं की: भोजनको प्रायः छुआ तक नहीं । नौकर झाँककर देखते थे कि वे मुँह छिपाये हुए लेटे हैं, या टेबलपर सिर रक्खे हुए बैठे हैं । कभी कभी सिर उठानेपर आँखें लाल लाल दिखाई देती थीं ।

क्लार्कने दूसरे दिन अखबार खोलकर टेबलपर रख दिये । घनश्यामने देखा हरगोपालकी कन्याके सम्बन्धमें मोटे मोटे अक्षरोंमें विज्ञापन छपा है । घनश्याम उस विज्ञापनको अच्छी तरहसे पढ़कर ज़रा मुस्कुराये । उन्होंने ख़याल किया कि शूलपाणिने उनको तंग करनेकी यह तदवीर निकाली है ।

घनश्याम अखबार हाथमें ले न मालूम क्या सोचने लगे-" आहा, यदि वह आ जाय, एमाको मैंने खो दिया है, यदि उसे पा जाऊँ । हरगोपाल नहीं हैं, मैं हूँ । यदि मैं उसे दोनों भाइयोंका प्रेम-दान दे रक्खूँगा तो क्या वह मुझे न चाहेगी ? वह आये-वह आये ! एमा हो वह एमाकी खाली जगह पूरीकरे ! "

इसी वक्त शूलपाणिका पत्र आ पहुँचा । पत्र पाकर घनश्याम रो उठे । उन्होंने अपना गुरुत्व भूलकर रोते ही रोते बेहराको गाड़ी लानेका हुक्म दिया । वे रोते ही रोते गाड़ीपर चढ़कर आनन्दाश्रमकी ओर भागे ।

इधर सार्वभौम ठाकुर और अन्यान्य सबलोग आनन्दाश्रममें आ पहुँचे थे । हरगोपालने कृतज्ञ और भक्तिपूर्ण हृदयसे अपनी स्त्री-कन्याको सस्नेह आश्रय देनेवाले और उनका पालन-पोषण करनेवाले सार्वभौम ठाकुरको प्रणाम किया । स्नेह और आनन्दसे आँसू बहाते हुए सार्वभौम ठाकुरने उनको छातीसे लगा आशीर्वाद दिये ।

रामतारण अबतक दरवाजा बन्द किये कमरेके भीतर हैं । सबके हजारों विनती करने पर भी उन्होंने दर्वाजा नहीं खोला, कुछ उत्तर भी नहीं दिया । सार्वभौम उनसे भेट करने के लिए चले । हरगोपाल आश्रमके उत्सव गृहमें अकेले चुपचाप बैठे चिन्ता करने लगे ।

सहसा दरवाजेसे किसीने पुकारा—

" हरगोपाल ? "

हरगोपालने चौंक कर देखा । उन्होंने देखा कि दरवाजे पर घनश्याम खड़े हैं ।

" दादा ! दादा ! "

हरगोपाल दौड़कर दरवाजे की ओर चले । घनश्यामने बाहु-फैला भाई को गलेसे लगा लिया ।

प्रथम सम्मिलनका आवेग और अश्रु रोककर दोनों भाई कमरेके भीतर आ बैठ गये ।

पिताके वसीयतनामेसे आरंभकर शूलपाणिके मर्मानुवर्ती हो अबतक घनश्यामने जो जो काम किये थे, सब हरगोपालसे स्पष्ट रूपसे कहा । हरगोपालकी कन्याको ठगने की चेष्टा, हिरणके साथ एमाका व्याह करनेकी चेष्टा, शूलपाणिसे विरोध, अपना अनुताप, असभ्य देहाती पतिके साथ कन्याका गृहत्याग, विज्ञापन शूलपाणिका पत्र आदि सब ही विषय कह सुनाये । घनश्यामने यह सब कह हरगोपालके दोनों हाथ पकड़ माफी माँगी । उनके स्त्री, लड़का-लड़की आदि कोई भी नहीं, उनको कुछ खर्च दे हरगोपाल अपनी स्त्री कन्याके साथ सब जमीदारीका भोग करें, वे उन सबको सुखी देखकर सुखी होंगे । कभी कभी वे आयेंगे और हरगोपालकी कन्याको एमा समझकर प्यार करेंगे और मनमाना घूमें-फिरेंगे ।

घनश्याम अपने हृदयकी अपने ही सम्बन्ध की बातें कह रहे थे, अपनेही दुःखोंसे रो रहे थे, अपनेही आनन्दसे हँस रहे थे, एमाको धिक्कार देते थे, भतीजीको एमाकी जगह पर बिठाते थे । भाईके सम्बन्धकी बातें पूछनेका उनको अबतक अवसर न मिला ।

हरगोपाल शान्तचित्तसे सब सुन रहे थे और मृदु मुस्कुरा रहे थे । शूलपाणि के प्रति गालियाँ सुनते सुनते अन्तमें हरगोपाल बोले—" दादा, शूलपाणिने तुम्हारे से अधिक मेरा अनिष्ट करनेकी चेष्टा की थी । मेरी अनाथ लड़कीको वह नरकमें डुबानेवाला था । "

" हाँ हाँ, वह बड़ा बदजात है। कहो तो सुनूँ। मैं बैठा बैठा अपने सम्बन्धकी बातें ही बक रहा हूँ, तुम्हारे और तुम्हारी स्त्री-कन्याके सम्बन्धकी कोई बात ही नहीं पूछी। अब उल्टी पारी आती है। तुम कहो मैं सुनूँ। "

हरगोपालने तब यथासम्भव संक्षेपसे अपने और अपनी स्त्री-कन्याके सम्बन्ध की सब बातें कहीं।

उनका वर्णन पूरा हो जानेपर घनश्यामने फिर आवेगमें आ हारगोपालको छाती से लगा लिया और आनन्द प्रकट कर कहा—" भाई, आज तुम कैसे सुखी हो! तुम्हारे सुखसे मैं भी आज कितना सुखी हूँ। तुम्हारी कैसी प्रेममयी साध्वी स्त्री है। कैसी देवबाला सदृश कन्या है। और सबसे बढ़कर कैसा जमाई है! मानो उपन्यासका नायक है! किन्तु मेरी अभागिनी लड़कीको कैसा गँवार भूत मिला। और लड़की भी मुझे छोड़कर उसके साथ चली गई।

हरगोपालने मुस्कुराकर कहा—" मेरी लड़की और जमाई को देखोगे दादा?"

" कहाँ हैं? यहीं हैं वे लोग? ले आओ भाई, ले आओ। "

हरगोपाल उठ गये। और जरा देरमें ही माणिक और यमुना को साथ लिये आ पहुँचे। माणिककी सुन्दर सुगठित तेजस्वी वीरमूर्ति और यमुनाका कोमल कुसुमवत् रूप देखकर घनश्याम मुग्ध हो गये। उन्होंने स्नेहपूर्वक उन दोनों को आलिङ्गन कर आशीर्वाद दिया। "

हरगोपालने कहा—" दादा, यदि तुम्हारी लड़की और जमाई ठीक ऐसे ही होते, यदि इसी तरह तुम्हारे आगे आकर खड़े होते तो क्या तुम सुखी न होते? अपने को भाग्यवान न समझते?"

घनश्यामने यमुना और माणिककी ओर देखकर गहरी निश्वास छोड़ी और कहा-" आहा! ऐसा यदि होता हरगोपाल, तो आज मैं कितना सुखी होता। "

" फिर-फिर-" हरगोपालने दरवाजे की ओर इशारा करके कहा— " यह देखो। "

मदन और एमाने कमरे के भीतर पाँव रक्खा।

" यह देखो दादा! देख लो तुम्हारी लड़की और जमाई ठीक मेरी यमुना और माणिककी तरह ही हैं या नहीं? हम लोगों के लड़की जमाईके दो जोड़े

खड़े हैं न दादा, मैं मदन और माणिक दोनों को ही जानता हूँ । मदन राम है, माणिक लक्ष्मण, मदन भीम है, माणिक अर्जुन । माणिक यदि तुम्हारी दृष्टिमें श्रेष्ठ है तो मदन और भी श्रेष्ठ है, । माणिकने यमुनासे व्याह कर उसकी रक्षा की है । और मदनने उनका व्याह कर दिया है । महाप्राण मदन प्रतारणामय जीवन बिताना नहीं चाहता इसलिए वह ब्राह्मणका व्यवसाय छोड़कर वार्षिक आर्थिक हानि और सामाजिक उत्पीडनकी उपेक्षा करता है । वह खेतीसे गुजर वसरकर अपने मनुष्यत्वके गौरवसे अपने घरका राजा है । मदन स्वाधीन चेता है, वह दूसरे पर निर्भर हो आत्मविक्रय नहीं कर सकता, इसीसे वह तुम्हारी इतनी अधिक सम्पत्तिका लोभ अनायास ही छोड़ सका है । फिर इलाहाबादकी उस घटनाका स्मरण करो । तुम अपनेको उच्च सभ्यताके कारण उन्नत मानते हो, इसीसे तुम हिरणको इतना प्यार करते थे । उसपर श्रद्धा रखते थे,–तुम लोगोंके आगे ही एमा हीन असहाय रमणीकी तरह अपमानित हुई,–तुम लोगोंका साहस नहीं हुआ, अपरिचित मदनने वीरकी तरह आ और अपने प्राणको तुच्छ समझकर उसकी इज्जत बचाई । ऐसा जमाई । कितने आदमियोंको मिलता है ? हम दोनों भाई बड़े भाग्यवान् हैं इसोसे ऐसी देवबालाओं की तरह दो कन्यायें हुई हैं और उन कन्याओंके योग्य ही देवचरित्र दो बीर जमाई पाये हैं । देखो, देखो दादा, एक बार इधर देखो, और एक बार उधर देखो । किसी ओरसे दृष्टि हटा सकोगे दादा ? इनकी ओर देखकर हृदयके द्वार बन्द रख सकोगे दादा ? यदि रख सकोगे तो समझूँगा कि तुम मनुष्य नहीं पत्थर हो । तुम मेरे भाई नहीं, भाई होकर गले लगाने नहीं आये हो, विद्रूप करने आये हो । देखलो, अच्छी तरहसे देखलो । प्राण बाँधकर रख सकोगे दादा ?"

घनश्याम रो उठे ।

एमा दौड़कर पिताके चरणोंपर गिरी और पिताके चरणोंपर सिर रख रो पड़ी । लड़कीको हार्दिक स्नेहसे गले लगा घनश्यामने कहा—"एमा ! एमा ! आ बेटी, मेरी छातीसे लगजा ! तू छोड़ आई, मैं कितना रोया । दिनरात केवल रोता रहा ।"

एमाने कहा–" मुझे माफ़ी देंगे क्या बाबा ? फिर क्या एमा कह मुझे चरणोंपर स्थान देंगे ?"

" और कुछ मत कह एमा, आज मैंने अपनी सब भूल समझ पाई है, आँखोंके आगेसे मानों एक काला परदा आज खुल गया है ! जिन्दगीमें जो कभी न देखा था, जिसे देखने का कभी ख़याल न किया था, आज वही देखता हूँ । छि छि ! अबतक मैंने कैसी मूर्खता की !—बेटा मदन ! "

एमा हटकर खड़ी हुई । मदनने आकर ससुरको प्रणाम किया ।

घनश्यामने उठकर जमाईको गलेसे लगाया और कहा—" बेटा मदन, मैंने तुमको बहुत अपमानित किया है, बहुत दुःख दिया है । मुझे माफ़ करो । "

मदनने विनीत भावसे उत्तर दिया—" आप पूज्य हैं, मैं दास हूँ । अपमान मैंने ही किया है, स्नेह-गुणसे क्षमा करें । "

इसी समय दरबानने आकर शूलपाणिका कार्ड दिया । हरगोपाल ज़रा मुस्कुराये । घनश्यामने पूछा—" कौन है ? "

" शूलपाणि । "

" शूलपाणि ! आया है ?

शायद तुम्हारे विरुद्ध मुझे मुट्ठीमें करने आया है । तुम लोग ज़रा दूसरे कमरेमें ठहरो । मैं पापको बिदा करूं । "

सब दूसरे कमरेमें चले गये । हरगोपालने शूलपाणिको भेज देनेके लिए दरबानको हुक्म दिया । शूलपाणि कमरेके भीतर दाखिल हुए ।

आगत—स्वागतके बाद शूलपाणिने कहा—" हरगोपाल बाबू, मैं आपकी ज़मींदारी सम्बन्धी गुरुतर कर्तव्य—पालनके कारण असमयमें आपकी शान्ति नष्ट करने आया हूँ ।

" कहिये । "

" आपके स्वर्गीय पिताने मृत्युकालमें अपना वसीयतनामा बदलकर—"

" जानता हूँ, मुझे मरा समझकर मेरी अज्ञात कन्याको मेरी वारिसकी हैसियतसे अपनी आधी सम्पत्तिका उत्तराधिकारिणी बनाया है । "

" हाँ, इसके बाद उनके वसीयतनामेके अनुसार सब सम्पत्तिके रक्षणावेक्षण और आपकी कन्याके अनुसन्धानका भार सब अबतक मुझपर ही था । "

" और आपने अति हितैषी बन्धुकी तरह मेरी कन्याका पता लगानेके लिए अनेक विज्ञापन दिये थे । "

शूलपाणि मन ही मन पुलकित हुए । हरगोपालने शायद सब विज्ञापन देखे हैं। पहलेकी शिथिलता उनको मालूम नहीं हो सकी है।

उन्होंने कहा—" आपके भाई—"

" मेरी लड़कीको वंचितकर सब सम्पत्तिपर अपना अधिकार जमाना चाहते थे। किन्तु आप उनकी इच्छाकी उपेक्षाकर, अतुलनीय धर्मभीरुता और सहृदयताके कारण मेरी कन्याको उसका उचित अधिकार देनेके लिए बहुत व्यग्र थे। लगातार खोज–ढूँढ़से उसका पता आपने लगाया है । आप मेरे भाईके नाराज हो जानेसे डरते नहीं हैं। "

शूलपाणिने कहा—आप कृपाकर जो चाहे कहें। इस विषयमें मैंने दीन भावसे केवल अपने कर्तव्यके पालन की चेष्टा की है। अब आप अपनी स्त्री–कन्याके साथ आ गये हैं। "

" और मेरे भाईने भी खबर पाते ही आकर मुझे ग्रहण किया है और अपनी इच्छासे मेरी आधी सम्पत्ति छोड़ देनेका प्रस्ताव किया है । इसलिए आपको कष्ट न उठाना पड़ेगा। "

शूलपाणि चौंक उठे। उनका मुँह सूख गया। उन्होंने जरा टूटी–फूटी आवाजमें कहा—

" आपके भाई–भी आये हैं खुशी की बात है। किन्तु सहसा उनके इस प्रकारके परिवर्तनका कारण—"

" आप मेरे परम हितैषी हैं, शायद इसी डरसे। "

शूलपाणिने कुछ खुश होकर कहा—" हाँ हाँ, यह हो सकता है । मैं आपकी स्वार्थ–रक्षाके लिए कानूनी अधिकार हाथमें लिये बैठा हूँ । आपको वे वंचित ही नहीं कर सकते, इसलिए—"

" मुश्किलमें पड़नेसे साधु बन गये हैं। आप जैसे बुद्धिमान बन्धुकी सहायतासे वंचित हो, जिससे उनकेही वशवर्त्ती होऊँ, इसीसे आपसे पहले आकर उन्होंने केवल भ्रातृस्नेह ही दिखानेकी चेष्टा नहीं की है, वे आपके निष्कलंक चरित्र पर कलंक भी मढ़ गये हैं। "

" अच्छा! अच्छा! पर आपने शायद उनकी बातों पर विश्वास नहीं किया। मैं— "

" नहीं नहीं, आप इसके लिए चिन्तित न हों । विश्वास करता तो क्या आपसे सब बातें कहता । आप जैसे हितैषी बन्धुकी कपटी भ्राताके विरुद्ध सहायता अत्यन्त आवश्यक है । फिरभी, आप केवल मेरे बन्धु ही नहीं हैं, सम्बन्वी भी हैं ! "

" सम्बन्धी ! "

" हाँ, आपको शायद अबतक यह मालूम नहीं है कि मैंने अपनी स्त्री-कन्याको कहाँ किस दशामें पाया है । आपके ही गाँवमें, आपके ही आश्रयमें वे दोनों थीं । आपकी शुभ चेष्टाके फल-रूपमें आपके ही भांजे माणिकसे लड़की का व्याह हुआ । "

" मा—णिक । व्या—ह किया है ! आपकी ही—लड़की से—फिर यमुना !"

" हाँ ! नमस्कार; फिर आज पधारिये । आज अवसर अच्छा नहीं । सम्बन्धीके योग्य अभ्यर्थना आज नहीं कर सकता । "

" ठीक-हरगोपाल बाबू—मेरा—"

" हाँ, आपका अभिप्राय बहुत अच्छा था । आपने दयाकर अनाथा अज्ञात-कुलशीला बालिकाका व्याह बहुत अच्छे पात्रसे करनेकी चेष्टाकी थी । इसके लिए विशेष कृतज्ञ हूँ । किन्तु मौक़ा आज अच्छा नहीं; क्षमा करें, नमस्कार । "

शूलपाणिने समझ लिया कि अब ठहरना व्यर्थ है । वे बिदा हुए ।

घनश्याम मुँहमें रूमाल दिये हँसते हँसते कमरेमें आये और बोले-" शाबास हरगोपाल शाबास ! तुम बहादुर हो सही । कैसी मज़ेदार बातें कीं । ऐसा मज़ा बहुत दिनोंसे नहीं मिला । हाः ! हाः ! हाः ! "

हरगोपालकी पीठ ठोंक, हँसकर, आनन्द दिखा, अन्तमें घनश्याम विदा हुए ।

घनश्यामने घर पहुँचकर एक बोतल व्हिस्कीके साथ प्रातःकालका परिपूर्ण भोजन किया । वे बीच बीचमें खिलाखिलाकर इस तरह हँस पड़ते थे, जिससे नौकरोंको ख़याल होता था कि साहब बिल्कुल पागल हो गये हैं ।

इधर घनश्यामके चले जानेपर उदास चेहरेसे सार्वभौम ठाकुर उसी कमरेमें आये ।

हरगोपालने जल्दीसे उठकर पूछा—"क्या हुआ ? दरवाजा खोला ? भेट हुई ? "

सार्वभौमने कहा—" हाँ बेटा ! बहुत कहने सुननेपर शिष्यने द्वार खोल दिया, भेट हो गई है । "

" कुछ कर सके ? "

" नहीं बेटा ! जब जया और माणिक ही कुछ नहीं कर सके, तब मैं बुड्ढा क्या कर सकूंगा । फिर भी तुम लोगोंके ज़िद करनेसे एक बार गया था । "

" क्या कहा ? "

सार्वभौमने कहा—" वह कुछ बोलता ही नहीं है । कैसा स्तब्ध सा है । बहुत कहते कहते, समझाते समझाते अन्तमें एक बार बोला—" मैं निरुपाय हूँ इन लोगों के हाथ पड़ गया हूँ—जो करायँगे करना पड़ेगा । रहने कहेंगे तो रहूँगा, निकाल देंगे तो चला जाऊँगा । "

" फिर ? "

" मैंने जयासे आकर कहा । उसने कहा—' घरमें न रह सकेंगे । कोई सुरवस न रह सकेगा । फिर उनके मनमें क्या है, कौन जाने ? घरमें उनको रखनेमें भरोसा भी नहीं होता । वह कहती है कि वे काशीमें जाकर रहें । मैं भी उनके साथ जाऊँगी, उनको छोड़ न सकूँगी । "

हरगोपालने कहा—" कैसा सर्वनाश ! वे माणिकको छोड़कर उनके साथ काशीमें जाकर रहेंगी । आपने कुछ नहीं कहा ? कितना कष्ट उठाना होगा ? आफ़त भी कितनी आ सकती है ? उनका विश्वास क्या ? "

सार्वभौमने कहा—" क्या करूँ बेटा ? मैंने कहा था, पर जया ऐसी—वैसी स्त्री नहीं । उसको उसके संकल्पसे डिगाना सहज नहीं । फिर वह स्त्रीका कर्तव्य पालन करने के लिए पतिके साथ जाना चाहती है, इससे मैं जोर डालकर कुछ कह भी नहीं सकता । "

" रामतारण क्या कहते हैं ? "

" मैंने उससे जाकर कहा तो वह चुप हो रहा । पीछे बोला–अच्छा । "

हरगोपालने गंभीर दुःखके साथ कहा—" ठीक ? अन्तमें यह हुआ ? सबके पूर्ण सुखपर विषाद की काली छाया पड़ी ? आह, माणिक वैसे ही नीर्जीव सा हो रहा है, यह सुनने पर क्या बचेगा ? चलिये देखें, कुछ हो सकता है या नहीं ? "

" चलो बेटा । "

दोनों भीतर चले ।

चौदहावाँ परिच्छेद।

सुन्दर और रंगिणी।

शामको एक एकान्त कमरेमें राई रंगिणीने सुन्दरको पकड़ा। सुन्दरने पहले ही रंगिणीको देखा था। वह समझ गया था कि रंगिणी किसी प्रकारसे इन लोगोंके घरमें आश्रय पा नौकरी करती है। ये लोग बुरे आदमी नहीं हैं। दूरसे कई बार दोनोंकी देखादेखी भी हुई, किन्तु सुन्दर सामना न देना चाहता था। वह कटकर चलता था। वह सोचता था कि गुरुके सम्बन्धका निपटारा हो जानेपर वह किसी ओर चला जायगा। यह कहना अयुक्त न होगा कि गुरुके प्रति सुन्दरमें आन्तरिक आकर्षण पैदा हो गया था। गुरुको आफ़तमें फँसा देखकर और सबकी तरह सुन्दरने भागना नहीं चाहा। वह यह भी जानता था कि डरनेका कोई कारण नहीं है। सर्वदमन गुरुका पुत्र है और गौरदास, जो पहले शत्रु थे, अब मित्र और सम्बन्धी हैं। वह यद्यपि सदान्दका शिष्य है, किन्तु उसके विरुद्ध पाप करनेका कोई ऐसा प्रमाण नहीं है, जिससे अदालत उसे सज़ा दे सके! ये लोग केवल उसे निकाल दे सकते हैं, और कुछ कर नहीं सकते। फिर क्यों ऐसे वक्तमें वह किनाराकसी करे। यह स्थिर हो गया है कि गुरु स्त्रीके साथ काशी जायँगे। तो जायें। जाते वक्त वह भी गुरुको प्रणामकर विदा हो जायगा।

सुन्दर एकान्त स्थानमें बैठा इसी प्रकारकी चिन्ताकर रहा था। सहसा राइरंगिणी सामने आ खड़ी हुई। सुन्दरने देखा कि अब छुटकारा नहीं है। खैर जो होनहार होगी वह होगी ही। वह उठकर खड़ा हो गया।

रंगिणीने कहा—"तुम्हारे गुरुके सुखकी अट्टालिका तो टूट-फूट गई। अब क्या करोगे?"

सुन्दरने उदासीनता प्रकटकर कहा—"गुरुकी कृपासे वही करूँगा जो भाग्यमें लिखा होगा।"

र—"गुरुके पीछे तुमने सीर मुड़ाया या नाक—कान कठाये हैं?"

सु—"जो होना होगा, होगा।"

र—" फिर भी गुरुकी कृपा चाहिए ही । क्यों ? शरीरमें शक्ति है, माथेमें बुद्धि है, मनमें कुछ तेज भी है, इनकी कृपासे सुखी रह सकते हो । इनको छोड़ गुरुकी कृपासे विडम्बना क्यों भोगना चाहते हो ? "

सु—" अभ्यास; भाग्यमें जो हो; गुरुकी कृपाके सिवा इस वक्त और कुछ रुचता नहीं है । "

र—" पुराना अभ्यास छोड़ो, नया अभ्यास ग्रहण करो । फिर उसकी ही कृपा रुचेगी । तुम्हारे जोड़ का ऐसा गुरु क्या अब सहजमें मिलेगा ? "

सु—" साधनासे ही सिद्धि प्राप्त होती है । खोज करनेसे सब कुछ मिल सकता है । "

र—" फिर इस नये अभ्यासकी ही साधना करो; इस साधनासे नया सुख ही खोजो । "

" साधना कौन कराये ? "

" इच्छा हो तो साधना करनेवाले लोग हैं । "

" लोग तो तुम्हारे माणिक और मदन हैं ।

" यदि साधना करना है तो वे लोग साधना करायेंगे । नहीं, तो जिसके पास जाओगे वही निकाल बाहर करेगा । "

सु—" सब बातें सुनने पर वे भी निकाल देंगे मैंने कहाँ तक किया है, जानती हो ? "

र—कलंक के जो कुछ काम किये जा सकते हैं, वे सब तुमने इस सन्यासीके चेले हो किये होंगे । "

सु—" सन्यासीके हुक्मसे तुम लोगोंके माणिक का खून करने को भी मैं प्रस्तुत था । केवल मौका हाथ न लगा, नहीं तो—"

र—" अफ़सोस ! तुम मनुष्य हो या राक्षस ? "

सु—" राक्षस । मैं बड़े राक्षसका साथी छोटा राक्षस हूँ । तुम मुझे लौटाने आई हो, डरती नहीं ? "

र—" तुम राक्षसके साथ राक्षस थे, मनुष्यके साथ रहनेसे मनुष्य हो जाओगे। मनुष्यसे मनुष्यको डर क्या?"

सु—" यदि मनुष्य न होऊँ?"

र—" तो भी मैं डरती नहीं। तुम जो कुछ कर चुके, उससे अधिक अब और क्या करोगे? मैं अकेली हूँ, असहाय हूँ, स्त्री जाति हूँ विदेशमें कोई है नहीं। पति होकर रास्तेमें तुमने मेरा सर्वस्व छीन लिया था, और मुझे छोड़कर नौ दो ग्यारह हो गये थे। बड़े भाग्यसे मैंने वैकुण्ठकी ऐसी लक्ष्मीका आश्रय पाया। यदि उनका आश्रय न पाती तो पापमें डूब जाती; इस तरह आकर तुम्हारे सामने खड़ी होनेपर तुम मुँह ऊपर उठा सकते? मेरी निन्दा कर सकते?"

सुन्दरने कहा—" रंगिणी, अब कुछ मत कहो। मैंने मनुष्य जैसे काम नहीं किये हैं। इस पिशाचपर अब भी तुम्हारी ममता है? फिर उसे अपना बनाने आई हो?",

र—" है, इसीसे आई हूँ। नहीं तो क्या आती? भेट होते ही तुम्हारा सिर कूटकर बाहर कर देती।"

रंगणि की आँखामें आँसू आ गये।

सुन्दरने कहा—" रंगिणी, यह रास्ता सच मुच ही रुचता नहीं। यदि किसी भले आदमी का आश्रय पाता तो सच ही चेष्टा करके देखता कि मैं भी मनुष्यकी तरह गृहस्थी कर सकता हू या नहीं। किन्तु ये लोग क्या मुझे आश्रय देंगे?"

" देंगे।"

" माणिकके सम्बन्धकी वह बात सुन करक भी?" "वह सुनकरके भी देंगे। तुम संन्यासीके चेले ठहरे, इससे यह समझ न सकोगे कि यह कैसे हो सकता है। किन्तु सभी मनुष्य मनुष्य-राक्षस नहीं होते, उनमेंसे कुछ देवता भी होते हैं।

" होते ही हैं। तुम भी उनमेंसे एक हो।"

सुन्दरने रंगिणीका हाथ पकड़ा। रंगिणी जल्दीसे हाथ छुड़ाकर बाहरकी ओर चली। अनन्तर वह फिर लौटी और दर्वाजे के पास आकर बोली—" देखो, भूलना नहीं, भगना भी नहीं। म उन लोगोंसे जाकर कहती हूँ।"

रंगिणी चली गइ।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद ।

विदा.

आज जया पतिके साथ काशीकी यात्रा करेगी । सार्वभौम ठाकुर, मदन और माणिक साथ जा कर उन दोनों को काशी पहुँचा आयेंगे । आनन्दाश्रमके आँगनमें सब खड़े हो जयाको बिदा कर रहे थे । सबकी आँखोंसे आँसू टपक रहे थे । माणिक बहुत रो रहा था, वह अब भी माँको रोक रखना चाहता था ।

जयाने कहा—" बेटा, अब मुझे क्यों रोकता है ? मुझे जाना ही होगा, रह न सकूँगी । रह सकती तो क्या तुझे कहना पड़ता ? मैं क्या शौकसे जी रही हूँ बेटा ? तुझसे प्यारा मेरे और कौन है ? मैनें अनेक कष्ट सहकर तुझे मनुष्य बनाया है । अब जब तू मनुष्य हुआ है, लक्ष्मी सरीखी बहू लाया है, अब जब दुःखोंके बाद सुखके दिन आये हैं, तब क्या शौकसे मैं तुझे छोडकर जा रही हूँ । क्या मुझे इससे व्यथा नाहीं पहुँचती ? किन्तु करूँ क्या ? मुझे जाना ही होगा । इसी से सब सुखों, सब सुखोंकी आशाको छोड़कर सब व्यथा छातीमें दबाये हुए जा रही हूँ । मुझे जाना ही होगा " ।

माणिकने कहा—" जानाही क्यों होगा माँ ? उन्होने तो रहना भी चाहा था । फिर क्यों तुम मुझे छोड़ उनको साथ ले काशी जारही हो । "

जया—" वह क्या वैसी चाह थी बेटा ? यदि वैसा चाहते, यदि वे पत्थरसे मनुष्य हो जाते, तो क्या मैं फिर जाती, या उनको ही भेजती ?

माणिक—" कौन जानता है माँ, वैसी चाह नहीं थी । शायद लज्जाके मारे कुछ कहा नहीं । "

जया—" नहीं बेटा, वह बड़ा पुरवा पत्थर है । वह सहजमें गलनेवाला नहीं । यदि गलता तो । छातीमें रोक न सकता, निकल पड़ता सबको डुबा देता । "

माणिक—" न होता, ऐसेही रहते । हर्ज क्या था ? "

जया—" माणिक, मुझे उनपर ज़रा भी भरोसा नहीं होता । तू मेरे बड़े यत्नका धन है । ऐसे बाघके मुँहमें तुझे किस हृदयसे रखती । क्या मालूम उनके मनमें

क्या हो, तेरा मुँह बहुत छोटा हो गया है, तूने बहुत दुःख पाया है। तेरे उज्ज्वल मुखपर स्याही पुत गई है, तेरी आँखें आँसुओंसे डबडबाई हुई हैं। कौन जाने, रहनेपर और क्या क्या देखना पड़ता ? नहीं बेटा, उनका यहाँ रहना न हो सकेगा, उनको जाना ही होगा। और उनके जानेपर मुझे भी जानाही होगा।"

माणिक—" उनके जानेसे ही तुम्हें क्यों जाना होगा माँ ? वे तो कभी तुम्हारे न थे। अब भी तुम्हें नहीं चाहते।"

जमाः—" छिः बेटा, तुम ऐसी बात कहते हो ? वे नहीं चाहते, पाँवोंसे मुझे ठुकराते हैं, इससे क्या मैं उन्हें छोड़ सकती हूँ ? जगतमें उनका कोई नहीं है। उन्होंने किसीको कभी अपना बनाया नहीं है। आज मैं क्या परायेकी तरह उन्हें डुबा सकती हूँ ?"

सार्वभौमने कहा—" माणिक, क्यों माँ को रोकता है ? स्त्रीका जो प्रधान कर्तव्य है, जो प्रधान धर्म है, तुम्हारी माँ आज वही करने जा रही है। उस धर्म-पालनके कारण चाहे तुम्हारी माँ कितना ही कष्ट पाये, किन्तु धर्मके बलसे वह सब सह सकेगी क्यों तुम सब लोग इतना रो रहे हो ? जयाका यह दुःख, यह लाञ्छना तुम लोगोंके लिए दुःखकी बात नहीं, गौरवकी बात है। रोओ नहीं, हँसते हँसते, गौरवके साथ जयाका जयजयकार कर आज तुम लोग उसे बिदा करो। जाओ जया, आज सतीत्वके गौरवसे तुमने सीता-सावित्रीकोभी पराजित किया है। जाओ जया, जगदम्बाकी पुण्य भूमि काशीमें स्वयं जगदम्बा हो पतिकी सेवा करो। जगत्में तुम्हारा जयजयकार हो।"

गंगाने कहा-" जाओ जया दीदी, तुम सती लक्ष्मी हो, इसीसे पतिके साथ जा उनकी सेवा करना चाहती हो। भगवती करें, काशीमें, गंगाके किनारे, पतिके पाँव पर सिर रख हँसते हँसते स्वर्गको जा सको। स्वर्गभरमें तुम्हारी जयजयकार उठे।"

मेनकाने कहा-" आहा ननद, तुम मानो मृत्युके साथ जा रही हो। तुम ही सती साध्वी हो, हम लोग महापातकी हैं। मेरे पतिकी मृत्यु हुए कितने दिन हो चुके, किन्तु अबतक भी गृहस्थीके बन्धनसे बँधी हूँ। जाओ ननद। और देखो यदि काशीमें गंगाके किनारे पतिके पाँवों तले तुम्हें गति प्राप्त हो, तो अपने कपालका थोड़ा सा सिन्दूर मेरे मदन और माणिककी बहुओंके लिए भिजवाना।"

जयाने सार्वभौम और मेनका को प्रणामकर आशीर्वाद चाहा । फिर उसने गंगा-का हाथ पकड़कर कहा—" गंगा बहन, तेरी प्रार्थना पूरी हो । काशीमें, गंगाके किनारे, उनके पाँवों पर सिर रखकर जिससे मर सकूँ । बहन, माणिक मेरा रहा । उसे तुम्हीं को देती हूँ । तू जैसे यमुना की माँ है, वैसे ही माणिकको माँ है । माँ की तरह उसे देखना । बेटा मेरा माँ के सिवा और किसी को नहीं जानता । "

यह कहते कहते जयाका गला रुँध गया । वह आँचलसे मुँह छिपा रो उठी ।

माणिक भी माताको पकड़कर बहुत रोने लगा ।

जयाने रोते हुए प्रेमपूर्वक माणिकको छातीसे लगा लिया और उसकी आँखों के आँसू पोंछ कर कहा—" बेटा मेरा, सोनेका चाँद मेरा, रो नहीं । और मुझे न रुला । तू इस तरह रोयेगा तो मैं जा न सकूँगी । माणिक की माँ होनेसे मैं कितना सिर ऊँचा किये घूमती थी, आज मुझे क्या तू कलङ्किनी बनायेगा ? रो नहीं बेटा, ढाढ़स बाँध । सब सह सकेगा । मैं आज मर जाती तो भी तो सहता । समझ ले, आज मैं मृत्युके साथ जाती हूँ । "

माणिकने कहा—" माँ, तुम मर जाती तो सह सकता । समझता कि तुम स्व-र्गमें सुख से हो, इससे मर्मान्तिक दुःखमें भी हँसता । किन्तु यह तुम कहाँ जा रही हो माँ ? किस हृदयसे तुमको इस दुःख, इस लाञ्छना अपमानमें इस विषयके साग-रमें डुबा दूँ माँ ! "

जयाने धीर कंठसे उत्तर दिया—" मैं उनकी दासी हूँ, मुझे दुःख देनेका उन्हें अधिकार है, देंगे । लाञ्छना-अपमान करनेका अधिकार है, करेंगे । तू क्या करेगा बेटा ? "

माणिकने कहा—" तुम मेरी माँ हो । उस दुःख, उस लाञ्छना-अपमानका प्रतिकार करने का भी अधिकार क्या मुझे नहीं ? "

" नहीं बेटा, मुझपर उनसे अधिक और किसीका अधिकार नहीं । "

" क्यों फिर वृथा तुम्हारा पुत्र हुआ माँ ? "

"मनुष्य होकर मेरा मुख उज्ज्वल करेगा, इससे ? अब तक तूने ऐसा ही किया है, ऐसा ही कर। पुत्र हो मेरे धर्मका सहायक बन, मनमें दुःख पानेका खयाल कर विरोध न कर।"

माणिकने जरा सोचा। अनन्तर उसने मुँह ऊपर उठाकर कहा—"जाओ माँ फिर अब न रोकूँगा। चाहे कितना ही दुःख पाऊँ किन्तु तुम्हारे धर्म पालनका अब विरोधी न हूँगा। यदि तुम सह सकती हो माँ, तो तुम्हारा पुत्र हो मैं भी सब सह सकूँगा ?"

तब मदन, गंगा यमुना रंगिणी, हरगोपाल आदि सबने पारी पारीसे आगे बढ़ जयाको प्रणाम किया !

जयाने कहा—"सुख दुःखमें सब कोई मनुष्य की तरह रह मनुष्य-धर्मका निर्वाह करो। अपना मनुष्य जन्म सार्थक करो, मनुष्य-पदका गौरव रक्खो। भगवती दुर्गा तुम लोगों का मंगल करे।
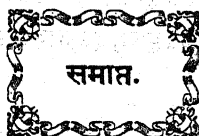
हिन्दी-गौरव-ग्रंथमाला ।

इस ग्रन्थमालाने थोड़े ही समयमें हिन्दी-संसारमें अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है । इसकी पुस्तकें भाव-भाषा-साहित्य, छपाई सफाई आदि सभी दृष्टिसे उत्तम और उपयोगी होती हैं । उनके चुनावमें खूब सावधानी रक्खी जाती है; और वे प्रतिष्ठित लेखकों द्वारा लिखाई जाती हैं । प्रत्येक हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जनको इस ग्रंथमालाका स्थायी ग्राहक बन कर मातृभाषाके प्रचारमें हमारी सहायता करनी चाहिए । आठ आने प्रवेश फीस लेकर स्थायी ग्राहक बनाये जाते हैं । स्थायी ग्राहकोंको ग्रन्थमालाकी तमाम पुस्तकें पौनी कीमतमें दी जाती हैं । ग्रंथमालामें अब तक नीचे लिखी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं ।

ग्रंथमालाकी नियमावली और सूचनायें ।

१ आठ आने 'प्रवेश-फीस' देनेसे प्रत्येक सज्जन हिन्दी गौरव-ग्रंथमालाके स्थायी ग्राहक बन सकते हैं । यह 'प्रवेश-फीस' लौटाई नहीं जाती ।

२ स्थायी ग्राहकोंको ग्रंथमालाके तमाम ग्रंथ—पूर्व प्रकाशित और आगे प्रकाशित होनेवाले—पौनी कीमतमें दिये जाते हैं ।

३ ग्राहक बननेके समयसे पहले प्रकाशित हुए ग्रन्थोंको लेना न लेना ग्राहकोंकी इच्छा पर है; परंतु आगे निकलनेवाले ग्रंथ उन्हें लेने पड़ते हैं ।

४ स्थायी ग्राहक ग्रंथमालाके ग्रंथोंकी चाहे जितनी प्रतियाँ, चाहे जितनी बार, पौनी कीमतमें ही मँगा सकते हैं ।

५ ग्राहकोंको अपना नाम, गाँव, पोस्ट और जिला साफ लिखना चाहिए । स्थायी ग्राहकोंको आर्डर भेजते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिए ।

६ बारह आनेसे कमकी पुस्तक मँगानेवालोंको डाकके टिकिट भेज देना चाहिए । बारह आनेसे कमका वी० पी० नहीं भेजा जायगा ।

७ यदि डाकमें या रेलवे पार्सलमें पुस्तकें खोई जायँगी, तो उनके उत्तरदाता हम न होंगे ।

हमारी ग्रंथमालाकी पुस्तकें ।

१—सफल गृहस्थ ।

अनुवादक—श्रीयुत खूबचंद सोधिया, बी. ए., एल. टी. ।

आर्थर हेल्पसकी महत्त्वपूर्ण निबन्धावलीका अनुवाद । इसमें दो भाग हैं। पहले भागमें ऐसे विषयोंका सिलसिलेसे संग्रह है जिनमें बतलाया गया है कि अपनी गृहस्थीमें कैसे सुखशान्ति रक्खी जा सकती है, कुटुम्बकी कैसी व्यवस्था की जाती है, संतानका लालन पालन कैसे किया जाता है, वह सुशिक्षित और उच्चचरित्रशील कैसे बनाई जा सकती है और प्रत्येक व्यक्ति अपनेको सुखी, शान्त, गंभीर और सच्चरित्र कैसे बना सकता है। दूसरे भागमें व्यापारसे सम्बंध रखनेवाले विषयोंका गंभीर पर सरल विवेचन है । व्यापार कैसे प्रारंभ किया जाता है, कैसे बढ़ाया जाता है, नौकर चाकरोंकी नियुक्ति कैसे की जाती है, किस तरह आढ़तियों तथा ग्राहकोंसे लेन देनका व्यवहार किया जाता है, एक कुशल व्यापारीकी शिक्षा कैसी होनी चाहिए जिससे वह बराबर अपने व्यापार-धन्धेमें सफलता लाभ करता चला जाय । हिन्दीकी प्रसिद्ध मासिकपत्रिका 'सरस्वती' के शब्दोंमें—" इसमें जो कुछ लिखा गया है उपयोग और व्यवहारकी दृष्टिसे बड़े कामका है।" छपाई-सफाई बड़ी सुन्दर । द्वितीयावृत्ति । मूल्य ॥।) आने ।

२—आरोग्य-दिग्दर्शन ।

मूलग्रंथकार—महात्मा गाँधी ।

अनुवादक—पं० गिरिधर शर्मा नवरत्न ।

आरोग्य विषयपर लिखे हुए बड़ेसे बड़े ग्रंथ आप पढ़ जाइए उनमें जो बातें आपको न मिलेंगी वे इसमें मिलेंगी । मैं एक गरीब गृहस्थ हूँ, मेरे बाल बच्चे बीमार हो गये, मैं खुद या मेरी स्त्री बीमार हो गई, पासमें इतने पैसे नहीं कि डॉक्टर या वैद्योंको बुला सकूँ । तब क्या मेरे घरमें आरोग्य न होगा? मैं अपने बालबच्चोंको फूलके जैसे प्रफुल्लित और घरको हरभरा देखकर इन मुरझाई हुई आँखोंको तृप्त न कर सकूँगा? ऐसी दशामें भी किसीको किसी प्रकार निराश

न होकर महात्मा गाँधीकी ' दिव्य देनगी ' उक्त पुस्तकका उपयोग करना चाहिए। इसमें निम्नलिखित विषयोंका विवेचन है—

आरोग्य, हमारा शरीर, हवा, पानी, खूराक, कसरत, स्त्री-पुरुषका सम्बंध, जल और मिट्टीके उपचार, कब्ज, संग्रहिणी, पेचिस, नसे आदिपर सरल प्रयोग, छूतके रोग—शीतला, चेचक आदि—प्रसव, बच्चोंकी सँभाल, सर्प बिच्छूका काटना, आगमें जलजाना, डूब जाना—आदि। पुस्तकको सर्व साधारणने बड़ा पसंद किया है, इसी कारण थोड़े समयमें इसके चार संस्करण निकल चुके हैं। पुस्तककी भाषा बड़ी सरल है। कागज बढ़िया, छपाई, सफाई, मनोमोहक। प्रचारकी दृष्टिसे मूल्य भी बहुत कम रक्खा गया है। पृष्ठसंख्या लगभग १२५। मू० ।=) आने।

' सरस्वती 'के शब्दोंमें—" इस पुस्तकके विचार बड़े पवित्र हैं। इसमें कही गई बातोंपर यदि ध्यान रक्खा जाय तो बीमार होनेका विशेष डर ही न रहे। और यदि बीमारी हो भी जाय तो बहुत शीघ्र दूर हो जाय। यह पुस्तक गृहस्थमात्रके रखने लायक है। "

३—कांग्रेसके पिता मि० ह्यूम।

अब नहीं मिलती।

४—जीवनके महत्त्व-पूर्ण प्रश्नोंपर प्रकाश।

अनु०—श्रीयुत खूबचंदजी सोधिया, बी० ए०, एल० टी०।

अँग्रेजीमें अध्यात्म विषयके लेखकोंमें जेम्स एलनका बड़ा नाम है। इस विषयपर आपने बीसियों—एकसे एक सुन्दर—पुस्तकें लिखी हैं। उन्हींमेंसे एक पुस्तकका यह अनुवाद है। बड़ी सुन्दर और सरल पुस्तक है। कितना ही दुःखी मनुष्य हो, चिन्ताशील हो, उदास हो, विपत्तियोंका मारा हुआ हो, घबराया हुआ हो, अस्थिर हो, अशान्त हो, इस पुस्तकके पाठसे उसे बड़ी शान्ति मिलेगी, सन्तोष होगा। अपनी वे भूलें उसे सूझ पड़ेंगी जिनके कारण कि उसकी उक्त दशा हो रही थी और फिर वह उनसे मुक्ति पानेका यत्न करेगा। अध्यात्म विषय बड़ा कठिन, जटिल और नीरस है, परन्तु ऐलन महाशयकी लिखनेकी सुन्दर और सरल हथौटीने उसे इतना सीधा सादा बना दिया

है कि साधारण पढ़ा लिखा भी बड़ी आसानीसे समझ सकता है। युवकोंके चारित्रगठनके लिए यह पुस्तक बड़ी महत्त्वकी है। जीवनका सबसे मूल्यवान् भाग सच्चरित्रता है और उसका लाभ इस पुस्तककी शिक्षासे प्रत्येक पुरुष उठा सकता है। इसमें जिन विषयोंपर विवेचन है उनमेंसे कुछके नाम ये हैं— प्रतिज्ञापालन, आत्माकी शक्ति, शान्तजीवनका लाभ, मनके विकारोंपर विजय, परिश्रमका महत्त्व, अनन्त प्रकाश, आदि। मूल्य ॥≈) आने।

सरस्वतीके शब्दोंमें—" बड़ी अच्छी पुस्तक हैं, मनन-योग्य है।"

५ विवेकानन्द (नाटक)

दूसरी बार छपनेपर मिल सकेगा।

६—स्वदेशाभिमान।

दूसरी बार छपनेपर मिल सकेगा।

७—एकाग्रता और दिव्यशक्ति।

अनुवादक—श्रीयुत संतरामजी, बी० ए०।

इस पुस्तककी लेखिका बड़े जोरदार शब्दोंमें प्रतिज्ञा करती हैं कि—" इन बातोंके चाहनेवालो ! पुस्तकमें बतलाये हुए मेरे नियमोंकी पालना करो, प्रत्येक पाठको अच्छी तरह पढ़ो, उसे याद करो और उसका मनन करो; फिर यदि तुम्हें दिव्यशक्ति, आकर्षणकी अद्भुत शक्ति प्राप्त न हो; यदि तुम अपने भीतर एक नव-प्राप्त आनन्दका अनुभव न करने लगो और तुम्हें यह मालूम न होने लगे कि अब तुम पहलेकी भाँति निर्बल पददलित प्राणी नहीं रहे जैसे कि पहले अपने आपको समझा करते थे, बल्कि तुम एक कीर्तिशाली, देदीप्यमान सुखी प्राणी हो, तो मैं कहती हूँ कि मेरा नाम ' ओ हष्णुहारा ' नहीं। मूल्य १।), कपडेकी जिल्दका १॥।) रु०। द्वितीयावृत्ति।

८ स्वराज्यकी योग्यता।

माडर्न रिव्यूके संपादक बाबू रामानंद चट्टोपाध्यायकी पुस्तकका अनुवाद दुसरी बार छपनेपर मीलेगी।

९—जीवन और श्रम।

अँगरेजीके सुप्रसिद्ध लेखक सेमुएल स्माइल्सके 'लाइफ एण्ड लेबर' का अनुवाद। दूसरी बार छपनेपर मिलेगा।

१० प्रफुल्ल।

(मूललेखक—महाकवि गिरीशचन्द्र घोष।)

दूसरी बार छपनेपर मिल सकेगी।

११ लक्ष्मीबाई (झाँसीकी रानी)

दूसरी बार छपनेपर मिल सकेगा।

१२ पृथ्वीराज (नाटक।)

दूसरी बार छपनेपर मिल सकेगा।

महात्मा गाँधी।

महात्माजीकी विस्तृत जीवनी और उनके लेखों तथा व्याख्यानोंका सर्वोत्कृष्ट और सबसे बड़ा संग्रह। लेखक और सम्पादक—बाबू रामचंद्र वर्मा।

हिन्दी साहित्यमें यह बहुत बड़ा और अपूर्व ग्रंथ है। इसके पहले खंडमें महात्माजीकी २०० पृष्ठोंमें विस्तृत जीवनी है जिसमें कई अपूर्व बातोंके सिवाय अब तकका सब हाल आ गया है। दूसरे खंडमें महात्माजीके लगभग १७१ महत्वपूर्ण व्याख्यानों और लेखोंका संग्रह है और उनमें ऐसे व्याख्यान बहुत है जिन्हें हिन्दी संसारने बहुत कम पढ़ा है। उनका संग्रह बड़ी सावधानीके साथ किया गया है। इस बातका पूर्ण ध्यान रक्खा गया है कि भारतसे संबंध रखनेवाले राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, शिक्षा, शिल्प आदि कोई विषय छूट न जाय, जिसपर महात्मा गाँधीनें प्रकाश न डाला हो। यह आपके हृदयमें अनंत 'आत्मबल' लाभ करनेकी अपूर्व भावना जाग्रत करेगा और आपको सुखमय सीधा—सरल मार्ग दिखलावेगा। प्रत्येक भारतवासीको इसका स्वाध्याय एक पवित्र धर्मग्रंथ समझकर करना चाहिए। दोनों खंडोंकी पृष्टसंख्या ८५० है। सुन्दर सुनहरी जिल्द बँधी हुई है। मूल्य पुस्तकके आकारको देखते हुए बहुत ही कम अर्थात् ४॥) रक्खा गया है।

१३ भारतभक्त ऐण्ड्रयूज ।

महात्मा गाँधीजीके परमभक्त और भारतको अपनी जननीसे भी अधिक पूज्य गिननेवाले इस अँगरेज महापुरुषका यह सबसे पहला और उत्कृष्ट जीवन-चरित है । लेखक, प्रवासी भारतवासियोंके परमबन्धु पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी । इसकी भूमिकामें महात्मा गाँधी लिखते हैं—" सी. एफ. एण्ड्रयूजसे ज्यादा सच्चा, उनसे बढ़कर विनीत और उनसे अधिक भारतभक्त इस भूमिमें कोई दूसरा देशसेवक विद्यमान नहीं । मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि उनके जीवनसे शिक्षा ग्रहणकर भारतीय युवक अपनी मातृभूमिकी अधिकाधिक भक्ति करनेके लिए उत्साहित हों । " इससे मालूम हो सकता है कि यह जीवनचरित कितना अवश्य पठनीय है । लेखकने मि० एण्ड्रयूजके पास कोई एक वर्षतक रहकर और उनके चरित्रका प्रत्यक्ष अनुभव करके इस अपूर्व ग्रन्थको लिखा है । मू० २।) सजिल्दका २॥।) रु० ।

१४—वैधव्य कठोर दण्ड है या शान्ति ?

(मूल ले०—महाकवि गिरीशचन्द्र घोष)

इस भावपूर्ण श्रेष्ठ सामाजिक नाटकमें इस बातका बड़ा ही मार्मिक और हृदयको हिला देनेवाला चित्र खींचा गया है कि भारतीय उच्चतम सतीत्वके आदर्शसे गिरानेवाले विधवा-विवाहके प्रचारसे समाजकी कैसी दुर्दशा होती है । इस बात पर भी प्रकाश डाला गया है कि विधवाका सच्चा हित किस बातमें है, उनका रहन सहन, आचार-विचार कैसा होना चाहिए, और अपने परम पुनीत सतीत्व धर्मकी अखंड रक्षा कैसे करनी चाहिए । भारतके उच्च आदर्शकी रक्षा करनेके लिये प्रत्येक विधवा-बहिनोंके हाथमें यह नाटक पहुँचानेका यत्न करना चाहिए । मुल्य ॥॥≶) आने, कपड़ेकी जिल्दका १।-)

१५—आत्मविद्या।

दूसरी बार छपनेपर मिल सकेगी।

१६—सम्राट् अशोक।

'छत्रसाल' के लेखक श्रीयुत बालचन्द नानचन्द शाह इसके भी लेखक हैं तब यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह उपन्यास किस श्रेणीका है। फिर भी यह कहना अनुचित न होगा कि इसकी जोड़का उपन्यास हिन्दी भाषामें शायद ही मिलेगा। इसमें जब आप सदा परहित-निरत महात्मा मोग्गलीपुत्र तिष्य और श्रेष्ठी उपगुप्तकी सुधास्यंदिनी कहानी पढ़ेंगे तब आपका हृदय परोपकारकी समुज्ज्वल भावनाओंसे भर जायगा। जब प्रमिलाके—एक स्त्रीके-अनेक आश्चर्योंसे पूर्ण क्रूर षड्यंत्रका हाल पढ़ेंगे तब दाँतोंतले उँगली दबा लेंगे और जब हिन्दू चक्रवर्ती सम्राट् अशोककी तेजोमयी उदारता और वीताशोककी भ्रातृभक्तिका हाल पढ़ेंगे तब भारतीय पुराने गौरवसे आपकी छाती फूल उठेगी—आँखोंमें आनन्दके अश्रु-बिन्दु झलकने लगेंगे और उस भारतकी आजके भारतसे तुलना करने पर सहानुभूतिके साथ आपकी आँखोंसे खूनके आँसू बहन लगेंगे। इसके सिवा इसमें जहाँ तहाँ प्रकृतिका जो सुन्दर वर्णन किया है उसे पढ़ कर आप मुग्ध हो जायँगे। इसकी भाषा बड़ी प्रांजल है। यह उपन्यासके साथ हिन्दीभाषाका एक उत्कृष्ट गद्य काव्य भी है अनुवाद सरस्वतीके भुतपूर्व सम्पादक श्रीयुत हरिभाऊ उपाध्यायने किया है मू० २॥।) रु०

१७—बलिदान।

(मूल ले०-महाकवि गिरीशचंद्र घोष)

विवाह-बंधन एक बड़ा ही पवित्र कार्य है, गृहस्थीके सारे सुखोंका इसी पर आधार है। परंतु जिन जातियोंमें वर-विक्रयकी प्रथा है उनकी इस प्रथासे कैसी भयंकर दुर्दशा हो जाती है, देखते देखते हरे भरे घर कैसे बर्बाद हो जाते हैं और अन्तमें अपना बलिदान देकर इस संसारसे उन्हें किस तरह पीछा छुटाना पड़ता है इन सब बातोंका अत्यंत कारुणिक सजीव चित्र इस नाटकमें खींचा गया है। पढ़ते पढ़ते हृदय रो उठता है। ऐसी अति निंद्य नीच प्रथाएँ जिन जातियोंमें

हैं उन्हें अपनी रक्षाके लिए ऐसे पवित्र सामाजिक नाटकोंका घर घर प्रचार करना चाहिए। जिन लोगोंमें कन्याविक्रयकी प्रथा है उन्हें भी इस नाटकको अवश्य पढ़ना चाहिये। मू० १।)

१८—हिन्दुजातिका स्वातन्त्र्यप्रेम।

एक उत्कृष्ट मौलिक पुस्तक। इसमें स्वतन्त्रता-प्राप्तिके लिए बलिदान होनेवाली हिन्दूजातिकी वीरताका ज्वलंत चित्र खींचा गया है, जिसे पढ़ कर आपका रोम रोम फड़क उठेगा। यह बतलाया है कि हिन्दू जाति सदासे स्वातंत्र्यप्रेमी रही है। इसके लिए इतिहासके भूरि भूरि प्रमाण दिये गये हैं। मू० १) सजिल्द १॥)।

१९—चाँदबीबी।

बंगालके प्रसिद्ध नाटककार क्षीरोदप्रसाद विद्या विनोद एम० ए० के नाटकका अनुवाद। इसमें बीजापुरकी वीर-नारी बेगम चाँद-सुलतानाकी अद्भुत वीरता और क्षमता, देशके उछरते हुए बालकोंका जन्मभूमिके लिए अपूर्व बलिदान और मराठे वीर रघुजीकी हृदयको हिला देनेवाली स्वामिभक्ति आदिकी वीर और करुण कहानीको पढ़ कर आपका हृदय भर आयेगा। मूल्य १।) रु०, पक्की जिल्दका १॥।) रु०

२०—भारतमें दुर्भिक्ष।

ले० पं० गणेशदत्त शर्मा। कई पुस्तकोंके आधार पर लिखा हुआ स्वतंत्र ग्रंथ। भारतमें जब अँगरेजोंका राज्य स्थापित नहीं हुआ था तब देशमें अन्न, वस्त्र, घी, दूध आदि सभी वस्तुएँ खूब सस्तीं—पानीके भाव—थीं: देशमें क्या गरीब, क्या धनी, सभी सुखी थे; दुर्भिक्ष, महामारी आदिके उपद्रव तब कभी कहीं नाम मात्रको हो जाया करते थे और जबसे अँगरेजोंका प्रभुत्व स्थापित हुआ तबसे देशके सब व्यापार-धन्धे विदेशियोंके हाथ चले गये; देशकी कारीगरी, कल-कौशल बड़ी क्रूरतासे बरबाद कर दिये गये; अन्न; वस्त्र, दूध, घी, आदिकी अभूतपूर्व मँगीने गरीब भारतीयोंको तबाह कर दिया; देशकी छाती पर दुर्भिक्ष-दानव लोमहर्षण तांडवनृत्य करने लगा। जिस भारतमें ७५० वर्षोंमें केवल १८ अकाल पड़े—सो भी देशव्यापी नहीं, प्रान्तीय—उसमें सिर्फ सौ वर्षोंमें ३१ दारुण अकाल पड़े और उनमें सवा तीन करोड मनुष्य काल-कवलित हुए!

देशकी इस रोमाञ्चकारी दुर्दशाको पढ़ कर पत्थरके जैसा हृदय भी दहल उठेगा। देशकी दुर्दशाको जाननेके लिए इसे अवश्य पढ़िए। मू० १ ॥।), सजिल्द २।)

२१—स्वाधीन भारत।

ले०—महात्मा गाँधी। भारत पराधीन है—गुलामीकी बेड़ियोंसे जकड़ा हुआ है। वह स्वाधीन कैसे हो सकता है, इसी विषय पर सत्यता, दृढता और निर्भीकतासे महात्माजीने इस दिव्य पुस्तकमें विवेचन किया है। इस पुस्तकका घर-घरमें प्रचार होना चाहिए। इसी विचारसे इसका मूल्य भी कम रक्खा गया है। मूल्य सिर्फ ।।।) आनें।

२२—महाराजा रणजीतसिंह।

ले० पं० नन्दकुमारदेव शर्मा। कोई २५–३० ग्रंथोंके आधार पर लिखा हुआ रणजीतसिंहका स्वतंत्र और महत्त्व-पूर्ण जीवनचरित। इसे पंजाबका सौ वर्षोंका इतिहास समझिए। पंजाबमें जब चारों ओर खून खराबी और मारकाटका बाजार गर्म था तब अपनी लोकोत्तर वीरता और बुद्धिसे थोड़े ही वर्षोंमें पंजाब-केसरी सारे पंजाब पर विजय करके उसे एकाधिपत्य शासनके छत्रतले ले आये। उनमें अद्भुत संगठन-शक्ति और शासनक्षमता थी। प्रत्येक देशाभिमानीको पंजाब-केसरीकी यह वीररस-पूर्ण जीवनी पढ़नी चाहिये। मू० १।।।) सजि० का २।) रु०

२३—सम्राट् हर्षवर्धन।

लेखक—श्रीयुत सम्पूर्णानन्द बी० एस-सी०। सम्राट् हर्षवर्धन भारतके अन्तिम हिन्दू चक्रवर्ती राजा हुए हैं। ये बड़े भारी वीर, विद्वान् और परम दानवीर थे। जिन महाकवि बाणभट्टकी कादम्बरीका नीचे जिकर है वे इन्हींकी सभाके श्रेष्ठ रत्न थे। इनके उदार चारित्रका पढ़कर भारतकी तत्कालीन शिक्षा, समाज, धर्म, राजनीति आदिके सम्बन्धकी बहुतसी अज्ञेय बातोंको आप जान सकेंगे। इस पुस्तकके विषयमें सरस्वतीने लिखा है कि—" इनके बाद फिर कोई ऐसा हिन्दू राजा नहीं हुआ जो भारत या उसके अधिकांश भाग पर अधिकार जमा कर देशके स्वातंत्र्यकी रक्षा करता।...पुस्तक संग्रह करने योग्य है।" मूल्य ॥) आने।

२४—कादम्बरी ।

हिन्दी अनुवाद । अनुवादक—श्रीयुत पं० ऋषीश्वरनाथ भट्ट बी० ए०, एल-एल० बी० । संस्कृतके गद्य-साहित्यमें इस ग्रंथका आसन सर्वोच्च है । महाकवि बाणभट्टकी अमृतमयी लेखानीसे यह शीतल, सुगंधित, मनोरम झरना बहा है। इसमें अवगाहन करनेके लिए सात समुद्र पार तकके बड़े बड़े विद्वान् भारतमें आते हैं और उसमें अवगाहन करके परम आनन्द लाभ करते हैं । आप चिन्तित होंगे, संकल्प-विकल्पमें होंगे, शोकमें होंगे, दुखी होंगे, व्याकुलतासे घिरे होंगे और ऐसी हालतमें कादम्बरी उठा कर पढ़ने लगेंगे तो तुरत आप सब शोक, दुःख, चिन्ता आदि भूल जावेंगे और क्षण भरके लिएं मानो अपनेको स्वर्गमें देखेंगे । पुस्तकके प्रारंभमें महाकवि रवीन्द्रनाथकी कादम्बरी पर की हुई एक मार्मिक और महत्त्व-पूर्ण समालोचना भी दे दी गई है । इसके अनुवादकी सुन्दरता और सरलताके विषयमें श्रीयुत पं० चतुरसेनजी शास्त्रीने अपनी सम्मति दी है कि " कादम्बरीका इससे सरल अनुवाद हो ही नहीं सकता । " कादम्बरी जैसे कठिन संस्कृत गद्यग्रन्थका इतना सुन्दर सरल अनुवाद अब तक शायद ही किसी भाषामें हुआ हो । हिन्दीमें यह सबसे पहला सम्पूर्ण अनुवाद है । अभी तक इसके सारांश मात्र छपाये गये थे । साहित्यप्रेमियोंको अवश्य पढ़ना चाहिए । मूल्य २॥।) रु०, पक्की जि० का ३।) रु० ।

२५—सत्याग्रह और असहयोग ।

हिन्दीके प्रतिभाशाली लेखक श्रीयुत पं० चतुरसेनजी शास्त्री द्वारा बड़ी ओजस्विनी भाषामें लिखा हुआ, नई कल्पना और नये विचारोंसे परिपूर्ण सर्वथा मौलिक ग्रंथ । यह ग्रन्थ आपको देशके नाम पर जूझ मरनेका ऐसा ढंग बतलायगा जिसमें आत्महत्या नहीं है, हिंसा नहीं है, अत्याचार नहीं है; पाप नहीं है, छल नहीं है;

और जिसका—

प्रत्येक अक्षर लोहेकी कलमसे लिखा गया है;
प्रत्येक अक्षरमें हृदयकी धधकती आग है;
प्रत्येक अक्षर निर्भय वीरताकी ओर गया है ।

हिन्दी ही नहीं, किन्तु किसी भी भाषामें इस विषय पर इतना बड़ा और ऐसा ओज-पूर्ण ग्रंथ नहीं छपा । जिसे देशके नाम पर मरनेको हौंस है उसे तत्काल ही एक प्रति अपने हाथमें कर लेनी चाहिए; फिर न जाने क्या हो ? मूल्य १॥।) रु० सजि० २।) रु०